कवि विद्यापति

लेखक
गङ्गाधर मिश्र

सरस्वती मन्दिर, वाराणसी।

मूल्य ४)

शुभाशीर्वचनम्

मैथिल-कोकिल महाकवि विद्यापति पर
काशी के विद्वान् लेखक आचार्य
पं० गङ्गाधर मिश्र की आलोचना
पठनयोग्य होगी, इसमें
सन्देह नहीं ।

निराला—

१७. ६. ६०

समर्पण

युगाराध्य महर्षिकवि, महिमामय आचार्य

तथा

युगान्तर-कान्तिदर्शी साहित्यकार

कीर्त्तिशेष

श्री पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

की

जन्मतिथि के पावन-पर्व पर पुण्य-स्मृति मे,

सादर, सविनय समर्पित—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

—लेखक

'युगाराध्य-निराला'

जन्मतिथि	मृत्यु
वसंत पंचमी	आश्विन
स० १९५३ वि०	शु० ६ सं० २०१८ वि०

निवेदन

कविता-कामिनी के कमनीय-कान्त कविवर विद्यापति ने साधनामयी प्रतिभा के पुण्यालोक से जिस युगान्तर-कारिणी कल्पना-सृष्टि की विविध राग-रागिनियो का रस-निर्झर-स्वर झंकृत किया है, वह परम्परा और युग के प्रतिनिधित्व की पूर्णता के साथ भी अपने अनुपम आकर्षण एवं प्रभाव के द्वारा चिरन्तन तथा सार्वभौम है। इसलिये विश्व की गण्य-प्रतिभाओं में इनका स्थान सर्वथा मान्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में समाज के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग उभय पक्षों का कवि की प्रतिभा ने किस प्रकार दृश्य-दर्शन कराया है और जन-जीवन को कितनी दूर तक अनुप्राणित किया है, इसका प्रमाणपूर्वक विश्लेषण किया गया है। ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन को सर्वथा विश्वसनीय तथा बोध्यगम्य प्रेपणीयता दी गई है। कवि-कल्पना की अपूर्वता के युगान्तर प्रभाव को हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक युग तक देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि भावुकता कितनी प्राणमयी तथा अभिव्यंजन चमत्कृति किस प्रकार निसर्ग-जीवन-व्यापिनी है।

श्रृंगार और अध्यात्म के प्रति कवि की सहृदयता ने जीव और जीवन के किस स्तर तक की प्रतीति करायी है, इसे बिना पूर्वाग्रह के नितान्त निष्पक्ष दृष्टि से देखने और समझने का प्रयत्न किया गया है। पक्ष-विशेष की निराधार तर्कों से पुष्टिमात्र नहीं हुई है। कवि की वस्तु-चेतना, भावुकता और कल्पना तीनों पर शास्त्रीय संगति के साथ समान दृष्टि रक्खी गई है। काव्य और संगीत के सम्बन्ध में भारतीय प्रतिभा के अद्भुत कृतित्व और विश्वास का ऐतिहासिक दृष्टि से प्रौढ़ परिचय दिया गया है।

कवि विद्यापति के ग्रन्थों को कई वर्षों तक पढ़ाने तथा आलोचकों की विचार-दृष्टि को परखने का अवसर मुझे मिला था। इच्छा थी, इन आचार्य-मनीषी कवि-पुंगव के अध्ययन, चिन्तन एवं अनुशीलन से

हिन्दी-प्रेमी जिज्ञासुओं के मानस-मन्दिर को ज्योतिष्मान् कर दूँ। "कवि विद्यापति" ग्रन्थ मेरी इसी श्रमनिष्ठा का उपहार है। आलोच्य-कवि की प्रातिभ-चमत्कृति को देखने का ही प्रयत्न किया गया है, निरर्थक वागाडम्बर तथा निस्तत्व भावुकता के उन्माद से ग्रन्थ का कलेवर नहीं सजाया गया है। विचार-प्रवाह मे प्रसंगानुरूप कुछ उद्धरण एक से अधिक बार आ गए हैं, इससे विषय-बोध की निर्विकल्पता की पुष्टि ही हुई है। "गुरुदेव 'निराला" की कृतियों के अध्ययन से इस ग्रन्थ के निर्माण मे अच्छी सहायता मिली है। अतः इस कृति को उनकी जन्मतिथि वसन्त-पंचमी के पुण्य-पर्व पर उनकी दिवंगत आत्मा के तृप्त्यर्थ समर्पित कर कृतार्थ हो रहा हूँ।"

"हमारे गाँव" "वैदिकभाषानुशीलन" एवं "कवि विद्यापति" इन पुस्तको की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए प्रादेशिक-सरकार ने इनके प्रकाशन मे जो सहयोग प्रदान किया है उसके लिए मैं विशेष आभारी हूँ।

श्री गौरीशङ्कर मिश्र एम० ए०, साहित्यरत्न के पूर्ण-प्रयत्न का यह सुफल है। उनकी इस योग्य सेवा से मुझे संतोष है।

अनुसन्धान-शील उच्च-श्रेणी के पाठकों को इससे पूर्ण सन्तोष होगा, ऐसा विश्वास है।

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद् व्यक्ति हेतवः।

त्रिलोचन, वाराणसी।
वसन्त-पञ्चमी, सं० २०१८ वि०

गङ्गाधर मिश्र
संस्थापक
श्रीराष्ट्र-भाषा विद्यालय

विषय-सूची

—:o:—

कवि विद्यापति

सामान्य-परिचय

सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि—सयम की माधुर्यानुभूति के मुक्त आकर्षण का चमत्कार पूर्ण दृश्य अंकित कर श्रीविद्यापति ठाकुर ने युग प्रतिनिधि महाकवि की प्रतिभा का मार्मिक परिचय दिया है। इसलिये सर्वप्रथम श्रीविद्यापति की कलामयी भाषा के ऐतिहासिक तथा नैतिक-स्वरूप का सामान्य-परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। उत्तर भारत मे उस समय मुस्लिम-शासन का आतंक चतुर्दिक व्याप्त हो चुका था। जातीयजीवन मे एक ओर दीनता और विवशता का अंधकार तीव्र-वेग से बढ रहा था, दूसरी ओर सहस्राब्दियो से दबाया हुआ यौवन का सहज उन्माद विजयिनी-मुस्लिम-सत्ता के कामुक-भावावेश से उत्तेजित-होकर सामान्य-जन-जीवन मे ही नहीं, मठो, मदिरो और विहारो मे भी बड़ी तेजी से बढने लगा था। एक ओर तुर्कों का छोटा सा बच्चा हिन्दुओं को भयभीत कर रहा था। मन्दिर तोड़कर उसके मसाले से मस्जिद तैयार हो रही थी तथा ब्राह्मण का यज्ञोपवीत चाण्डाल-हृदय को छू रहा था और दूसरी ओर जटाधारी योगियो का दल वेश्याओं के लिये आकुल था। लोग आते-जाते दूसरे की स्त्री का कंकण भंग कर रहे थे तथा संन्यासिनियाँ दूती का कार्य करने लगी थीं। युग-जीवन की इस आसक्ति-मूलक रौरव-गामिनी-बर्बरता तथा प्रतारणा-एवम् निर्जीव दाम्भिकता को संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि भाषाओं के प्रकाण्ड पाण्डित्य से उन्मुक्त गौरव-दृष्टि प्राप्त कर महाकवि विद्यापति ने अच्छी तरह देख लिया।

युगान्तरकारिणी-प्रतिभा :—मुसलमानो के व्यापक प्रभुत्व की आतक-वृद्धि तथा मजहबी कट्टरता के घातक-उन्माद के कारण वैराग्य-वर्द्धिनी निराशा के पश्चात् आसक्ति-जन्य विवशता मे पड़ी हुई, हिन्दु-जाति के व्यावहारिक-जीवन मे जो नवीन-तम उलझने बढती जा रही थी। उनकी ओर से आर्य-चिन्ता-धारा के दार्शनिक तत्वो के विश्लेषण मे डूबी हुई, सस्कृत की तपःपूत-विद्वन्मण्डलो प्रायः निर्लिप्त-सी थी। दैशिक-राज्य-शक्तियाँ अक्रामक मुसलमानो के क्रूर-संघर्ष मे पड़कर हीनता की करुणामूलक-विवशता बढ़ाती हुई सत्वर विलीन होती जा रही थीं। इसीलिये कविवर विद्यापति ने संस्कृत-प्रेमी जनता के लिये

व्यावहारिक-ज्ञान, चरित्र-बल एवम् सास्कृतिक-धारणा की सुपुष्टि तथा सुरक्षा के लिये जहाँ एक ओर 'विभाग-सार' 'भू-परिक्रमा' 'पुरुष-परीक्षा' लिखनावली, शैव-सर्वस्वसार तथा वर्षकृत्य आदि रचनाये सस्कृत-भाषा मे लिखी, वही दूसरी ओर अपभ्रंश तथा प्रचलित 'जन-भाषा' के प्रति अपनी निसर्ग-निष्ठा का परिचय दिया । युग-जीवन मे बढती हुई क्षयोन्मुख-विवशता के निर्जीव-पाखण्ड की सनातन-प्रेम के उन्मुक्त आकर्षण मे परिणति के लिये पुरुष और नारी की रागात्मिका-सत्ता का ज्योतिर्मय-सप्राण आकर्षण विद्यापति की पदावली मे मिलता है, उसमे उनकी कलात्मक-प्रतिभा का पूर्ण प्रकर्ष दिखाई देता है । दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी, गंगा-वाक्यावली, शैव-सर्वस्व-सार के रचयिता का कर्म-प्रवण विश्वास यहाँ प्रेम की सहज माधुरी से आर्द्र होकर निर्मद-भक्ति की गभीर-ध्वनि करता हुआ बह चला है । रागानुगभक्ति की मधुर ध्वनियो मे महाकवि की अनुपम तन्मयता एवम् सामञ्जस्य-विधायिनी जीवन-दृष्टि की अपूर्व-अनुभूति व्यक्त हुई है । इस प्रकार विद्यापति के महान्-व्यक्तित्व को हृदयंगम करने के लिये उनकी 'पदावली' के प्रातिभ-चमत्कार-सर्जन की रमणीयता पर ही विचार करेगे ।

पदावली में कवि का व्यक्तित्व :—पदावली में विद्यापति की अन्तरग जीवन-दृष्टि के सप्राण-प्रवर्त्तन का नितान्त मधुर एवं गभीर-स्वर मुखरित हुआ है । एक ओर युग-जीवन की नवीनतम परिस्थितियो तथा सप्राण-शास्त्रीय-स्वरो का यदि उन्होने साक्षात्कार किया है, तो दूसरी ओर उसमे आदर्श के नवीनतम-स्वरो का उन्मुक्त-आकर्षण भी भर दिया है । वासना-मूलक-प्रेम के उच्छृङ्खल-आकर्षण मे सनातन-संकल्प का जो सहज-माधुर्य उन्होने भर दिया है, वह युगान्तर की राष्ट्र-ध्वनि ही नही, विश्व-मानव और विश्वमानवी के अन्तस्तल की गौरवमय-ध्वनि है । अनुवाशिकता का क्रूर-दभ जिसने संसार के सभ्य कहलाने वाले राष्ट्रो की दिगन्त-व्यापिनी शक्ति को मानवीय विश्वास के क्षुद्रतर-अहकार-बोध की सीमा-भूमि मे विश्लिष्ट तथा कुण्ठित कर रक्खा है । जिसके कारण आज हम अपनी जातीयशक्ति को हजारो जातियो, उपजातियो तथा साम्प्रदायिक-विश्वासो मे विच्छिन्न तथा पारस्परिक-निरपेक्षता से दुर्गति की दुरन्त-परिधि मे चीत्कार करती हुई पाते हैं, पर इसके निराकरण के लिये शताब्दियों पूर्व कविवर विद्यापति ने युग-जीवन की युगान्तर-गौरव-परिणति का दृश्य अकित कर दिया है ।

युग का नैतिक-पतन:—नारी और पुरुष के पारस्परिक-आकर्षण अथवा यौवन के सहज-उन्माद की आदर्शात्मक स्वीकृति के राष्ट्रीय-विधानो की शिथिलता के कारण जातीय जीवनादर्शों पर जो प्रतिक्रिया हुई थी; उसे

पहले देख लेना चाहिये, क्योकि इसके विना विद्यापति की क्रान्तिदर्शी-जीवन-दृष्टि पर विचार करने मे न्याय की आशा कदापि नही की जा सकती है। बौद्ध-जैन आदि सम्प्रदायो की आर्थिक प्रभुता के कारण संयम की नींव दहल गई और सम्प्रदाय-केन्द्रो मे परमोज्ज्वल-त्याग के स्थान पर उच्छृङ्खल ऐन्द्रिय-तुष्टि की क्षयोन्मुख-नाट्यानुकृति व्याप्त होने लगी थी। सामाजिक-जीवन मे परावलम्बन की दास्य-भावना प्रौढ हो चली थी। मुसलमानो के घातक-दुःशील-अंधकार की समाज-व्यापी-व्याप्ति के कारण पूर्व-वर्त्तिनी क्षयोन्मुख-हीनता पराकाष्ठा पार करने लगी थी। परम्परा-पोषक अधिकार-भोगी वर्ग के प्रति-निधियो ने अबोध-विवाह का स्वर ऊँचा कर उसकी घातक-प्रतिक्रिया से लोक-जीवन को बचाने का जो नाट्यारम्भ किया, वह भी शिशुपतन का उत्तेजक होने के कारण कामुकता की वृद्धि का ही कारण बन गया। साहित्य सम्राट् गोस्वामी-तुलसीदासजी ने भगवान् शंकर के तृतीय नेत्र खुलने के अवसर पर सामाजिक-जीवन का जो चित्र दिया है, उससे तत्कालीन लोक-रुचि का यथार्थ परिचय मिल जाता है—

भये काम वस योगीश तापस पामरन्हि की का कथा।

कविवर विद्यापति की प्रेमिका (राधा) की वाणी का मर्म-व्यंग्य विचारणीय है:—

अहे सखि, अहे सखि लये जनि जाह,
हम अति बालिक आकुल नाह।

राधिका की सखि का भी युग के दाम्पत्य-जीवन की लज्जाजनक विषमता की ओर ऐसा ही संकेत है:—

बालमु बेसनि बिलासिनी छोट,
मेल न मिलए देलहु हिम कोटि।

यह नारी की विवशता और मनस्ताप का दृश्य-दर्शनीय है:—

पिया मोर बालक हम तरुनी,
कोन तप चुकलोह भेलोह जननी।

× × × ×

पिया लेली गोद कै चललि बजार,
हटिया क लोग पूछे के लागु तोहार।
नहि मोर देवर कि नहि छोट भाइ,
पुरुब लिखल छल बालमु हमार।

भाग्यवाद पर विश्वास रख कर युग-नारी जो दुर्गति भुगत रही थी। उसे विद्यापति ने अनेक स्मृति-चित्रों द्वारा स्पष्ट कर दिया है। वैवाहिक जीवन की कारुणिक विषमता की दुष्परिणति समाज-व्यापी व्यभिचार के रूप मे हुई। देखिये, राधा की सखी नायक कृष्ण का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर रही हैः—

माधव ई नहि उचित बिचार,
जनिक एहन धनि काम कला सनि
से किये करु व्यभिचार ?

× × × ×

भनइ विद्यापति सुनु मथुरापति,
इथिक अनुचित काज।
माँगि लायब वित से जदि हो नित,
अपन करब कोन काज ?

इस व्यभिचार की देश-व्यापिनी दुष्प्रतिक्रिया नारी-जाति की विवशता-जन्य निराशा मे हुई। विद्यापति की अधोलिखित ध्वनि राष्ट्र-नारी की इसी निराशा-जन्य विरति का स्पष्ट संकेत कर रही है :—

जनम होअए जनु, जौं पुनि होई,
जुबती भए जनमये जनु कोई।
होइ जुवति जनु हो रस-मति,
रसओ बुझये जनु हो कुलमति।

योगियों का प्रभाव :—नारी-जाति की इस निराशा जन्य विरति से लाभ उठाने के लिये योगमार्गी साधकों ने किस प्रकार वासना के निम्न-स्तर पर अपने को गिरा दिया था। इस बात का संकेत 'कीर्त्तिलता' के "वेश्याहिन करो पयोधर जटीक हृदय चूर" पंक्ति से मिल जाता है। "पदावली की ध्वनियाँ योगि-परम्परा के देशव्यापी अन्तः क्षोभ का संकेत करती हैं। बौद्धधर्म के सदाचार का बाह्य-दंभ अनाचार तथा अविचार के राक्षसी कुचक्र का कारण बन गया था। "पदावली" की ध्वनियो मे योगि-वेष का व्यवहार-कौशल दर्शनीय है। राधा योगि-वेष मे छिपकर आने वाले प्रियतम कृष्ण के छद्म व्यवहार पर मुग्ध हो रही हैं" :—

बड़ई चतुर मोर कान।
साधन विनहि भाँगल मझु मान।
जोगी बेस धरि आओल आज।
के इह समुझब अपरुब काज।

सास वचन हम भीख लइ गेल।
मझु मुख हेरइत गद्गद् भेल।
कह तब मान-रतन दह मोह।
समुझल तब हम सुकपट सोय।
जे किछु कहल तब कहइत लाज।
कोई न जानल नागर-राज।

नागर-राज के छद्म-कौशल की परिणति योगि-वेष तक ही नही रहती है। किन्तु झाड़-फूँक करने वाली योगिनी की रूप बदल कर भी वह अपना मतलब पूरा करते हैं। साहित्य-दर्पणकार ने "परिव्राजिकाओ" के दूती-कर्म की ओर संकेत करते हुये दैनिक-जीवन की इसी स्थिति का परिचय दिया है। "पदावली' की ध्वनियो से युग के इस यथार्थ का परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है :—

गोकुल देवदेयासिनि आओल,
नगरहिं ऐसे पुकारि।
अरुन बसन पेन्हि जटिल वेष धरि,
कान्ह द्वार माझ ठारि।

जटिला सास जब भुलावे मे आकर कुल-बधू को निर्जन मे उसके साथ कर देती है, तब झाड-फूँक का दृश्य दर्शनीय है :—

बहुखन अतनु मत्र पढ़ि झारल,
भागल तवसे हो देवा।
देवदेयासिनि घर सँय निकसल,
चातुरि बूझब केवा।

जटिला सास की भाव-भक्ति मे लोक-रुचि का दयनीय तथा उपहास्य-नाट्य कितना मर्म-स्पर्शी है। देश के अशिक्षित परिवारो मे आज भी यह स्थिति देखी जा सकती है :—

जटिला बहुत भगति करि हरखित,
कतक भीख आनि देल।
कह कवि शेखर भीख लिये तब,
से हो देयासिनी गेल।

सौन्दर्यानुभूतिः—वैदिक-ऋषियो की भाँति अकातर मर्म-वाणी का जो मधुर स्वर विद्यापति ने मुखरित किया है, वह भारतीय तटस्थ जीवन दृष्टि की तन्मयता का अनुपम चमत्कार ही नही, संसार के काव्य-साहित्य के लिये सप्राण-

गौरव की वस्तु है, सृष्टि का निर्माण करने वाली वह ज्वाला जो युग-युग से चेतन-सृष्टि को भस्म करती आ रही है, उपेक्षणीय नहीं कही जा सकती। राधा की अनुभूति की ध्वनियों में यह चिरन्तन सत्य कितना मर्म-स्पर्शी हो कर व्यक्त हुआ है, द्रष्टव्य है :—

सखि कि पुछसि अनुभव मोय,
से हो पिरति अनुराग बखानिये,
तिल-तिल नूतन होय।
जनम अवधि हम रूप निहारल,
नयनन तिरपित भेल।
से हो मधु बोल स्रवनहि सूनल,
स्रुति-पथ परस न भेल।

जीवन की शाश्वत्-अतृप्ति का यह मर्म-साक्षात्कार है। इसकी अनुभूति हृदय की आँखें खोल देती हैं, इसलिये "न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति।' हविषा कृत्स्नवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।"

अथवा

बुझइ न काम अगिनि तुलसी,
कहुँ विपय भोग बहु घीते।

के आदर्श को सार्थकता मिलती है। यही कारण है, कि विद्यापति ने जीवन के रूप-पक्ष के चरम-उन्माद की उपेक्षा न कर, उसकी निस्सीम उच्छृङ्खलता मे आदर्श की महज्ज्योति का साधनात्मक प्रत्यक्ष कराया है। यदि एक ओर नारी और पुरुष के सहज उन्माद की आकर्पक सृष्टि है, तो दूसरी ओर दोनो की अतृप्ति-जन्य-उछृङ्खलता तथा प्राण संकल्प की अनन्यता का ज्योतिर्मय सप्राण समन्वय भी है। प्रेम-सौन्दर्य की अभिव्यजना सशक्त तथा रूप वैभव के बाह्य-चमत्कार से परिपुष्ट है। नारी और पुरुष दोनों मे सामान्य रूप से उन्माद और अतृप्ति का सहज आकर्षण तथा अनन्यताजन्य-पूर्णता का मधुर-विश्वास मिलता है। इनकी राधा तथा कृष्ण दोनो के सनातन नारीत्व तथा पुरुषत्व के साथ युग के नारी और पुरुष जीवन के विनोदमय तथा उच्छृङ्खल रूपोन्माद के सजीव अनुभूति चित्र हैं।

जिस प्रकार राधा का सौन्दर्य-वैभव अपनी अपूर्वता मे अनुपमेय है, उसी प्रकार कृष्ण के सौन्दर्याकर्षण की प्रभविष्णुता भी अचूक है। राधा का महिमामय प्रभाव दर्शनीय है :—

देख देख राधा रूप अपार,
अपरुब के बिहि आन मिलाओल,
खितितल लावनि-सार।
अंगहि अंग अनंग मुरछायत,
हेरये पड़ये अथीर।
मनमथ कोटि मथन करु जे जन,
से हेरि महि-मधि गीर।
कत कत लखिमी चरन-तल नेओछये,
रगिनि हेरि विभोरि।
करु अभिलाष मनहि पद-पकज,
अहोनिसि कोर अगोरि।

राधा की सौन्दर्य-विभूति की यह महिमा है, जिसने अपनी अपूर्वता से ब्रह्मा को अपूर्व बना दिया है। जिसकी प्रभविष्णुता से मुग्ध होकर करोड़ों कामदेवो का मानमर्दन करनेवाले श्रीकृष्ण पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। जिस सौन्दर्य-शालिनी को देखते ही मुग्ध हो कितनी लक्ष्मियों को न्योछावर किया जा सकता है। विद्यापति की यह अभिलाषा है कि उनके चरण-कमल को दिन-रात गोद मे यत्न-पूर्वक आदरणीय बनाये रखे।

जिस प्रकार राधा के सौदर्य की अचूक प्रभविष्णुता से कृष्ण अनुप्राणित हैं, उसी प्रकार कृष्ण के रूप-वैभव पर राधा भी मुग्ध हैं :—

की लागि कौतुक देखलौ सखि
निमिष लोचन आध।
मोर मन-मृग मरम बेधल
विषम बान बेआध॥

श्रीकृष्ण की अनुपम सौदर्य-श्री का अद्भुत-चमत्कार है। जिसका क्षण भर के लिये आधी आँखो से साक्षात्कार होते ही प्रेम के तीव्र आकर्षण ने व्याध के क्रूर प्रहार की भाँति राधा के मृग रूप मन को मर्म-स्थल की चोट पहुँचा दी। आत्म-सपर्पण की इस मुग्धतावर्द्धिनी स्थिति का परिचय वह सखी को इस प्रकार दे रही हैं :—

ए सखि पेखलि एक अपरूप,
सुनइत मानबि सपन-सरूप।
कमल जुगल पर चाँद क माला,
तापर उपजल तरुन तमाला।

तापर बेढ़लि विजुरी-लता,
कालिन्दी-तट धीरे चलि जाता।

\+ + +

ऐ सखि रंगिनि कहल निसान,
हेरइत पुनि मोर हरल गिआन।

श्रीकृष्ण के रूप-वैभव का यह अमृताकर्षण है, जिसे देखते ही राधा अपनी चेतन-प्रबुद्धता खो देती हैं।

आश्रय और आलम्बन के परस्पर सप्राण-आकर्षण से विद्यापति के रूप-जगत का मधुर स्रोत निःसृत होता है। कलामयी नारी की मधुर-प्रकृति के अनिर्वचनीय-आकर्षण की सजीव झाँकी शैशव और यौवन के क्रीडा-विनोद के समय से ही इन्होने देना प्रारम्भ किया है। शैशव की निरीहता यौवन की अदम्य-लालसा एव शालीनता से किस प्रकार आँख-मिचौनी करती है। इसके लिये वयःसन्धि, सद्यःस्नाता, नख-शिख आदि प्रसंगो की चित्रमयी सजीव, संगीत ध्वनियाँ स्मरणीय है। जो आलोचक विद्यापति की रचनाओ मे अश्लीलता का दोषारोपण करते है, वे भ्रम में हैं। युगप्रवर्त्तक महाकवि 'निराला' जी ने ठीक ही लिखा है—

"कवि शेखर विद्यापति और कविकुलचूडामणि चण्डिदास दोनो महाकवि है। आकर्षण और पाण्डित्य कवि-शेखर मे कुछ अधिक मिला। कुछ लोग कविशेखर को अश्लील कहते हैं, उन नीतिज्ञ पुरुषो की कविता समझने की शक्ति पर मुझे सन्देह है।"

शृंगार-भावना:—"वीर-रस के लिये शृगार-रस की जितनी आवश्यकता पडती है, उतनी ही शृंगार रस के अमृत रूप-दर्शन के लिये वीर रस की आवश्यकता पड़ती है, और रात्रि को सिद्ध करने के लिये दिन की, उसी तरह वीर के लिये शृंगार और शृगार के लिये वीर रस की आवश्यकता है। × × × × रामायण के लंकाकाण्ड के मूल मे हैं शृगारमयी सीता देवी, श्रीरामचन्द्र की की शृगार-मूर्ति हर गई, कोमल भावना मे वीररस की प्रतिक्रिया होने लगी, उन्होंने अपनी शृंगार-मूर्ति का उद्धार किया। महाभारत के मूल मे इस तरह द्रौपदी विराजमान है। न पाण्डवो की शृंगार-मूर्ति द्रौपदी का अपमान हुआ होता, न कीचक के वध से आरम्भ कर दुःशासन के रुधिर से द्रौपदी के बालो को बाँधने और दुर्योधन के जंघो को भग्न करने की प्रतिज्ञा हुई होती, जो वीर है वह भोगी अवश्य होगा।"

इसीलिये कविवर विद्यापति ने भोग-लोलुप सामाजिक-चेतना के लिये भोग की उपेक्षा नहीं की है, बल्कि भोगोन्माद की चरम-प्रतिक्रिया की सजीव-सृष्टि के साथ त्याग अथवा संयम की गभीर-ज्योति का समन्वय कराया है। शशव के साथ यौवन का सम्मिलन होते ही नारी की निश्छल शिशु-माधुरी रूप-जगत मे कैसा अपूर्व चमत्कार भर देती है, इसकी सजीव झॉकी दर्शनीय है :—

खने खन नयन कोन अनुसरई।
खने खन बसन धूलि तनु भरई।
खने खन दसन छटा छुट हास,
खने खन अधर आगे गहु वास।
चउँकि चलए खने खन चलु मन्द,
मनमथ पाठ पहिल अनुबंध।

कामदेव की शिक्षा-शाला मे प्राथमिक प्रवेश से ही शिशु प्रकृति मे यौवना न्माद का आधिपत्य शनैःशनै बढने लगता है। शैशव और यौवन की इस ऑख-मिचौनी का सुन्दर परिचय निम्नलिखित पंक्तियॉ दे रही हैं। शैशव पर यौवन का मधुर भावोन्माद शनै शनैः अपना प्रभुत्व बढाने लगता है :—

शैशव यौवन दुहुँ मिलि गेल
श्रवण क पथ दुहुँ लोचन लेल।
वचनक चातुरि लहु-लहु हास
धरनिये चॉद कएल परगास।
मुकुर लई अब करई सिगार,
सखि पूछइ कइसे सुरत-बिहार।

शैशव और यौवन की संधि, लोचनो का आकर्ण-विस्तार, वाक्-चातुरी लघु-लघु-हास्य, धरा पर चॉद का प्रकाश, मुकुर लेकर श्रृंगार करना एव प्यारी सहेली से सुरत-बिहार की बात पूछकर स्वाभाविक यौवन चाचल्य प्रकट करना आदि बातो से यौवनोन्मेष की स्वाभाविक तरलता कविशेखर की कुशल लेखनी द्वारा कितनी सरलता से ढाल दी गई है। उनकी कविता मे यौवन की अमन्द दीप्ति का साक्षात्कर करनेवाली भावुकता की मात्रा भरपूर है। नारी-यौवन के अपूर्व आकर्षण की यह सजीव झॉकी कितनी मनोरम है :—

कि आरे नव-यौवन अभिरामा,
जत देखल तत कहए न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा।

हरिन, इन्दु, अरविन्द, करिनि, हेम,
पिक बूझल अनुमानी।
नयन, वदन, परिमल, गति, तन रुचि,
अओ अति सुललित बानी।
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल,
ता अरुझायल हारा।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल,
चाँद बिहिनु सब तारा।

नारी-प्रकृति की सर्वांग रूप-सृष्टि की यह अद्‌भुत छटा है। जहाँ हरिण, चन्द्र, कमल, हाथी, सुवर्ण और कोकिल-काकिली की एक साथ एकत्र उपलब्धि हो रही है। दोनो स्तनो का स्पर्श करते हुए खुलकर फैले हुए बालो से हार उलझ गया है, जान पडता है कि सुमेरु पर्वत के ऊपर चन्द्रमा को छोडकर समस्त तारागण चमक रहे हैं। रूपक और उत्प्रेक्षा के समन्वित चमत्कार से झाँकी नितान्त मधुर है।

रूप-माधुरी—नारी सृष्टि की रूप-माधुरी का अपूर्व-आकर्षण विद्यापति के अनेक पदो मे मिलता है। कला की मधुर-शक्ति-साधना सम्बन्धी उनका विश्वास सुनिये, कितना मनोहर है :—

सजनी, अपरुब पेखल रामा,
कनकलता अवलंबन ऊअल
हरिन-हीन हिम-धामा।
नयन नलिन दओ अंजन रंजइ
भौह विभंग विलासा,
चकित चकोर जोर विधि बाँधल
केवल काजर पासा।
गिरिवर गरुअ पयोधर-परसित
गिम गज मोति क हारा।
काम कम्बु भरि कनक-सभु परि
ढारत सुरसरि-धारा।
पएसि पयाग जाग सत जागइ
सोइ पावये बहु भागी।
विद्यापति कह गोकुल नायक
गोपी जन अनुरागी।

हे सखि ! उस अपूर्व रामा को देखा। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्णलता के योग से निष्कलंक चन्द्रमा सुधा-माधुरी की वृष्टि कर रहा है और कमल जैसे दोनो नेत्र अंजन से रंगे हुए हैं, तथा भौहो मे आनन्द की मस्ती छलक रही है। आश्चर्य-विमुग्ध नेत्र रूप चकोर के युग्म को ब्रह्मा ने केवल कज्जल के पाश मे बाँध दिया है। पर्वतराज जैसे गभीर पयोधरो को स्पर्श करते हुए गले मे गजमुक्ता का हार झूल रहा है, जान पडता है, कामदेव ग्रीवारूप शंख मे गगा की जल-धारा को भरकर स्वर्ण-शकर पर डाल रहा है। तीर्थराज (प्रयाग) मे जाकर सैकड़ो यज्ञो मे प्रबुद्ध होकर तप करने वाला सौभाग्यशाली ही उसे प्राप्त कर सकता है। कविवर विद्यापति गोकुल के स्वामी गोपियो से प्रेम करने वाले कृष्ण को ही उसका अधिकारी कहते हैं।

मानव-सृष्टि की रूप-माधुरी की यह अपूर्व झाँकी है। नारी-शक्ति के नित्य-क्रिय सामान्य-जीवन मे भी माधुर्योन्माद-वर्द्धक निस्सीम आकर्षण का प्रत्यक्ष विद्यापति ने किया है। स्नान करके भीगे वस्त्र पहनी हुई राधा का प्रत्यक्ष कविवर इस प्रकार कराते हैं :—

तितल वसन तन लागू,
मुनिहुँक मानस मनमथ जागू।

सृष्टि-सौन्दर्य की यह स्थिति है, जिसके प्रत्यक्षीकरण से साधारण जनो को कौन कहे, मुनियो का मन भी विक्षुब्ध हो जाता है। वायु के झोके से नायिका के शरीर का वस्त्र खिसक गया है, इसकी रूपजगत् मे कैसी प्रतिक्रिया हुई है:—

ससनु परस खसु अम्बर रे,
पेखल धनि देह,
नव जलधर तर संचर रे,
जनि बिजुरी रेह।

जान पडता है कि नवीन बादल के नीचे विद्युत की कोमल माधुरी फैल रही है। इस तरह नारी के रूप-श्री-वर्णन मे वाणी की अक्षमता स्वीकार कर कविवर विद्यापति ने उसके अतीन्द्रिय-आकर्षण के सम्बन्ध में अपना विश्वास इस प्रकार प्रकट किया है:—

चाँद-सार लए मुख घटना करु,
लोचन चकित चकोरे।
अमिय धोय आँचर धनि पोछल,
दह दिसि भेल अँजोरे।

\+ \+ \+

कामिनि कोने गढ़ली,
रूप सरूप मोय कहइत असंभव,
लोचन लागि रहली ।

की यह अनिर्वचनीय प्रभविष्णुता है, जिसके प्रत्यक्ष की तन्मयता मे
गाणी मूक हो जाती है ।

ता और सम्भोग पक्ष—प्रेम-प्रसंग, दूती एवं नोक-झोक
मे युग-जीवन की उच्छृङ्खलता-जन्य अतृप्ति का सजीव यथार्थ
है । जिसको देखकर अश्लीलता की दुहाई देने की अपेक्षा तत्कालीन
था उसके प्रवर्त्तन के गंभीर दायित्व की ओर ध्यान देने से ही इस
प्रति न्याय की आशा की जा सकती है । एक ओर विवशताजन्य
जातीयजीवन-शक्ति क्षणभगुरता के अंधकार मे विलीन हो रही थी ।
अतृप्ति की आग भीतर ही भीतर प्रज्ज्वलित होकर समस्त आचार-
खोखला बनाये जा रही थी । ऐसी दशा मे मानवीय प्राण प्रकृति
ा-निष्ठा की यथार्थ सृष्टि के बिना आचारात्मक-सुधारो की प्रतिक्रिया
ो अज्ञता की ही सूचक हो रही थी । इसलिये कविवर विद्यापति ने
पुरुष के पारस्परिक आकर्षणजन्य-उच्छृङ्खल-उन्माद के नैसर्गिक
मत्कार-पूर्ण उद्भावना की है । इसी कारण विद्यापति के राधा-
ो नारी और पुरुष-प्रकृति की उच्छृङ्खल-आसक्ति का जैसा यथार्थ-
है, वैसाही भारतीयसंस्कृति के नारीत्व और पुरुषत्व की अनन्य-
वत् सामजस्यपूर्ण आध्यात्मिक आदर्श भी हमे मिलता है ।
यवस्था के अनैसर्गिक, क्षुद्रतर सीमाबन्धनो के कारण युग-प्रव-
क के लिये उच्छृङ्खलता अनिवार्य है । उसके बिना युगान्तर की
लिये क्रान्ति का दूसरा मार्ग ही क्या हो सकता है ? इसीलिये
की स्पर्द्धा भरने वाली विद्यापति की दूती युग-प्रतिनिधि-प्रेमिका
कार निर्भय कर रही है :—

धनि धनि चलु अभिसार

\+ \+ \+

कुलवति धरम करम भय अब सब
गुरु-मन्दिर चलु राखि,
प्रियतम-संग रंग करु चिर दिन
फलत मनोरथ साखि ।

इतना ही नही :—

गुरुजन परिजन डर करु दूर।
बिनु साहस अभिमत नहि पूर।

दूती के इस अभय-प्रबोध से राधा ने किस प्रकार युग की सारी परम्पराओ का विध्वस करते हुए वीरता का परिचय दिया है :—

कुल-गुन गौरव सति जस-अपजस,
तृन करि न मानए राधे,
मन मथि मदन महोदधि उछलल
बूड़ल कुल मरजादे।

\+ + + +

बरिस पयोधर धरनि वारि भरि, रयनि महाभय भीमा।
तइओ चललि धनि तुअ गुन मन गुनि, तसु साहस नहिं सीमा।

\+ + + +

निअ पहु परिहरि आइलि कमल-मुखि,
परिहरि निअ कुल-गारी।
तुअ अनुराग मधुर मद मातलि,
किछु न गुनल बर-नारी।

इसी कारण सखी की शृंगार-साधना के लिये कवियो ने वीर उपाधि दी है। भावुकता की दुर्निवार्य गति ही तो सैनिक-जीवन की महत्वपूर्ण स्पर्द्धा समझी जाती है। राधा का दुर्निवार्य साहस द्रष्टव्य है :—

तपन क ताप तपत भेलि महि-तल
तातल बालू दहन समान।
चढ़ल मनोरथ भामिनि चलु पथ,
ताप तपत नहि जान।
प्रेम क गति दुरबार
नविन जौवनि धनि चरन कमल जिनि
तइओ कएल अभिसार।

प्रेम के इस दुर्निवार्य साहस के द्वारा ही नारी शक्ति-प्रवाह के सीमा-बन्धनो को विच्छिन्न कर उन्मुक्त आकर्षण का साक्षात्कार करा सकती है। जिसके विना जातीय शक्ति की विराट् आत्मीयता निष्प्रभ रहती है। इसलिये विद्या-

पति के प्रेमादर्श की प्रयत्नानुभूति एकागी अथवा साम्प्रदायिक नही है। जिस प्रकार राधाकृष्ण के लिये अनन्य-सम्मोहन मूर्ति हैं, उसी प्रकार कृष्ण राधा के लिये। राधा के साक्षात्कार के लिये कृष्ण के हृदय मे जो उद्विग्नता है, दूती के मुख से इस प्रकार सुनाई देती है :—

> सुन सुन ए सखि कहये न होए,
> राहि राहि कए तन मन खोए।
> कहइत नाम पेम भये भोर,
> पुलक कम्प तनु घरमहि नोर।
> गद् गद् भाखि कहए बर-कान,
> राहि दरस बिनु निकस परान।

राधा के सौन्दर्याकर्षण का यह अद्भुत प्रभाव है। कृष्ण की भाँति राधा के लिये भी कृष्ण के क्षण भर का वियोग अपार दुःख का कारण बन जाता है। कृष्ण की वैयक्तिक गौरवानुभूति की कल्पना की तन्मयता मे राधा की दशा कितनी करुणाजनक है :—

> करतल कमल नयन ढर नीर,
> न चेतए सभरन कुन्तल चीर।
> तुअ पथ हेरि हेरि चित नहि थीर,
> सुमिरि पुरुष नेहा दगध सरीर।
> कत परि माधव साधब मान,
> बिरहि जुवति माँग दरसन दान।

इतना ही नहीं कृष्ण की सयोग-माधुरी की स्मृति मे राधा भी पूर्णतया आत्म-विस्मृत हो जाती हैं। उनकी दशा का वर्णन दूती कृष्ण को सुना रही है :—

> सुनु मनमोहन की कहब तोय,
> मुगुधिनि रमनी तुअ लागि रोय।
> निसि दिन जागि जपय तुअ नाम,
> थर-थर कांपि पड़ए सोइ ठाम।

मान जन्य-वियोग की यह उद्विग्नता निरवधि वियोग की प्रखरतर अतृप्ति की ज्वाला मे पड़ कर निस्सीम हो जाती है। प्रेमी और प्रेमिका के यौवन का उच्छृङ्खल-उन्माद करुणार्द्र गंभीर-तन्मयता मे परिणत होकर, वासनाकलुषित

हृदय को सहज ही निर्मल बनाने लगता है। दोनो को प्रेम की इस वास्तविकता का अनुभव होने लगता है :—

एहि संसार सार वथु एक,
तिला· एक संगम जाव जिव नेह।

इस प्रकार दोनो के प्रेम की दुर्बलता मे उज्ज्वल अटूट संकल्प भर जाता है :—

सुजन क प्रेम हेम सम तूल,
दहइत कनक दिगुन होय मूल।
टुटइत नहि टूट प्रेम अद्भूत,
जइसन बढ़ये मृणाल क सूत।

वियोग-पत्त—इस प्रकार वियोगजन्य-वेदना प्रेमी और प्रेमिका के प्रेम की कसौटी बनकर चिरन्तन-आसक्ति की अनन्यताजन्य-आध्यात्म-ज्योति का साक्षात्कार करा देती है। राधा का वही कठोर हृदय जो कृष्ण के चरणो पर झुकते हुए भी विकल होना नही जानता था, वियोगजन्य विवशता से कितना करुणा-कातर हो रहा है :—

मधुपुर मोहन गेल रे
मोरा बिहरत छाती,
गोपी सकल बिसरलनि रे
जत छल अहिवाती।

अभाव की इस नितान्त दयनीय दशा में सौभाग्य का स्वप्न भी असफल हो गया है, इसलिये श्रृंगार के प्रसाधन उद्वेगजनक प्रतीत हो रहे हैं :—

चानन भेल विषम सर रे, भूषण भेल भारी।
सपनहुँ हरि नहि आएल रे, गोकुल गिरधारी।

"नैराश्य परम सुखं" के आधार पर राधा की यह जीवनव्यापिनी निराशा उनमे अनन्यता की गंभीर-साधनात्मक-ज्योति जगा देती है। सखी उनकी इस दशा का परिचय दे रही है :—

लोचन नीर तटिनि निरमाने,
करे रे कलामुखि तथिहि सनाने।
सरस मृनाल करय जपमाली,
अहो निसि जप हरि नाम तोहारी।

इस तरह राधा की गंभीर तन्मयता उन्हे प्रेम की पूर्णतम मधुर-ज्योति मे परिणत कर देती है, और वे आत्म-ज्योति के साक्षात्कार का सौभाग्य पाकर प्रेमिका से देवी बन जाती हैं। राधा की इस आत्म-ज्योति की तन्मयता की झाँकी सर्वथा अपूर्व प्रभावशालिनी है :—

अनुखन माधव माधव सुमिरत,
सुन्दरि भेलि मधाई।
अ निज भाव सुभावहि बिसरल,
अपने गुन लुबुधाई।

जिस प्रकार राधा के रागानुग-प्रेम की अनन्यता की यह झाँकी अपूर्व है, उसी प्रकार कृष्ण की राधा के प्रति अनन्यानुरक्ति भी अनुपम है। राधा के वियोग मे कृष्ण की तन्मयता दर्शनीय है :—

से बिनु राति दिवस नहि भावए,
ताहि रहल मन लागी।
आन रमनि सँय राज सम्पद मोयँ,
आछिये जइसे विरागी।

राधा की करुणार्द्र-विवशता कृष्ण की आँखो मे समा गई है और राज्याधिकार के वैभवपूर्ण जीवन मे भी राधा बिना उन्हे अपना जीवन बाधापूर्ण प्रतीत हो रहा है :—

अइसन नगर अइसन नव नागरि
अइसन सम्पद मोर।
राधा बिनु सब बाधा मानिए
नयनन तेजिए नोर।

इस प्रकार विद्यापति की राधा-कृष्ण की यह सृष्टि अपनी निर्बन्धता में जितनी समर्य्याद है, उन्मुक्तता मे उतनी सप्राण भी। उनकी युग-प्रवर्त्तिनी दृष्टि का यह ऐसा चमत्कार है, जिसकी नवीनतम प्रवर्त्तनात्मक परिणतियो से हिन्दू और मुसलमान दोनो जातियो के जीवन की सरसता आज तक सुरक्षित है। संस्कृत वाङ्मय के प्रकाण्डपण्डित होकर कविवर विद्यापति ने परकीया-भावना की अवैध प्रेमप्रकृति के साथ स्वकीया के वैधगौरवादर्श की समन्वयात्मक परिणति की ध्वनि जो हिन्दी के उषःकाल में सुनाई है, वह वर्ण, रक्त आदि के क्षुद्रतर भेद से क्षयोन्मुख संसार के प्रत्येक मानव मे मनुष्यता का पवित्र आकर्षण भर सकती है।

भारतीय काव्यपरम्परा और विद्यापति

काव्य और साहित्य की महत्ता, उन्मुक्त-सत्य की रमणीय अभिव्यक्ति मे ही मिलती है। वाङ्मय के अन्य किसी भी प्रवाह मे शक्ति-सौन्दर्य को व्यक्ति-सुलभ बना देने की शक्ति नही है। इसीलिए उन्मुक्त अथवा विराट् चेतनानुकृतियो से अनुप्राणित करने के लिए युगान्तर अनुष्ठान का यह कार्य काव्य अथवा साहित्य के द्वारा ही पूरा होता है। व्यक्ति की उन्मुक्तता, उदारता, सक्रियता, सर्वप्रियता एव तेजस्विता आदि सद्वृत्तियो के ओजः-संकल्प को इसी से प्राणप्रद शक्ति मिलती है, एवम् इसके ससर्ग से सामाजिक जीवन मे गौरव-शाली, विराट् सकल्प की अनन्त ज्योतिर्धाराओ का निर्भर भी प्रवाहित होता है। इसलिये भारतीय महर्षियो ने अनेक मत्रो मे "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू" के रूप मे कवि की महिमा का गान गाया है। विद्यापति की पदावली में रूप जगत के सप्राण-माधुर्य का चित्रमय-ध्वन्यात्मक साक्षात्कार होने के साथ युगान्तर क्रान्ति की मधुर, मन्द्र, गंभीर ध्वनि भी है। जिस प्रकार पुरुष-परीक्षा के तेजस्वी लेखक का पुरुषत्व के प्रति गौरव स्वर साद्यन्त मिलता है, उसी प्रकार परकीया प्रेम का मर्मस्पर्शी मधुर व्यग्य भी। इसलिए यदि एक ओर "भनइ विद्यापति रूप हे सखि मानुष जनम अनूप" के द्वारा मानवात्मा के प्रति उनका आदरणीय विश्वास मिलता है। नारी-आदर्श के सम्बन्ध मे यदि एक ओर "प्रथम प्रेम ओर धरि राखए सैह कलामति नारि" अथवा "तिला एक सग रभस सुख पाओल रहत जनमभरि लज्जित" अथवा "बडपुन गुनमति पुनमत पावे" के रूप मे महत् संस्काराकर्पण का महिमा गान है। तो साथ ही परकीया भाव के प्रेम क उन्मुक्तआध्यात्मिक पक्ष के राष्ट्रीय युगान्तर के लिए निर्बन्ध क्रान्तिकारी पक्ष भी है। उसकी उपेक्षा दैशिक जीवन की समस्त समस्याओ का ही मूल कारण नही, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय जीवन मे सकुचित स्वार्थमूलक अविश्वास का, (जिसका क्षयोन्मुख संघर्ष तीव्र वेग से बढता चला जा रहा है,) भी मुख्य कारण है। सभ्यता का दभ भरनेवाले संसार के अर्थसबल राष्ट्रो ने आज धन के अहंकार मे वेसुध होकर 'स्व' शब्द के आत्मा अथवा आत्मीय अर्थ को बिल्कुल तिरस्कृत कर दिया है। इसलिए नाम और रूप की मर्म-सौन्दर्योपलब्धि अस्ति भास्ति एवं प्रिय की उपेक्षा के कारण उन्हे दुर्लभ हो रही है। पारस्परिक परकीयत्व की भावना मे आत्मीयता के उन्मुक्त प्यार भरने के बदले वे अविश्वास के घातक कुचक्र का कारण बनकर मानवता के इतिहास को कलंकित कर रहे हैं। दो परस्पर विरोधी सस्कृतियो का घृणामूलक संघर्ष हमारे

देश के सास्कृतिक इतिहास मे सहस्राब्दियो पूर्व अभूतपूर्व वेग से बढने लगा था। सामाजिक क्षय का घृणित रूप-विस्तार निरन्तर उग्र होता जा रहा था। जिसकी ओर सकेत महाकवि विद्यापति के अवतार की चर्चा करते समय आरंभ मे ही हमने किया है।

नारी-शक्ति की कारुणिक अन्तर्व्यथा का जो स्वर उस युग मे सुनाई पडा, वह भारतीय इतिहास के लिए अश्रुतपूर्व था। सामान्य युग-जीवन मे व्यथा-व्यजक दीनता की निरन्तर वृद्धि हो रही थी। गौरवशाली यौवन के भास्वर क्षणो मे 'कीर्त्तिलता' का आरोपण करते समय इसकी मर्म-स्पर्शनी व्यंजना विद्यापति ने की है। "कीर्त्तिलता" मे युग-जीवन की प्रज्ज्वलित घृणा तथा आसक्ति के करुण चित्र अकित हैं। उस समाजव्यापिनी राक्षसी-घृणा तथा आसक्ति की अबाध उच्छृङ्खलता के विरोध अथवा सुधार की आशा शासनाधिकार-वंचित जाति के लिए किसी प्रकार भी नही रह गई थी। इसलिए यौवन की आसक्ति-मूलक अबाध उच्छृङ्खलता मे प्रेम की उन्मुक्त अनन्यता का आकर्षण भरने से ही 'स्व' और 'पर' के घृणामूलक अधकार के निवारण तथा राष्ट्रीयता का विषप्रवाह दूर करने के लिए आधुनिक-युग मे भी प्रयास हुआ है। कविवर 'निराला' जी ने 'अष्टम् एडवर्ड के प्रति' तथा 'प्रसाद' जी ने कार्नेलिया की ध्वनियो मे यौवन के उच्छृङ्खल आकर्षण से प्रेमजन्य अनन्यता की गौरवानुभूति करायी है। मध्ययुग के सभी हिन्दू और मुसलमान सहृदय कवियो ने दैशिक जीवन की व्यक्तिवादी परम्परा मे समन्वय का युगान्तर आकर्षण भरने के लिये परकीया भाव की नितान्त उच्छृङ्खल आसक्ति मे सतीत्व की अनन्यनिष्ठता की निर्मल व्यजना की है। भारत की यही उदार राष्ट्रीयता उसके सास्कृतिक-विजय का कारण रही है और भविष्य मे भारत की आसक्ति इसी निर्बन्ध अनन्यता की तत्वानुभूति द्वारा विश्व के क्रूरतम व्यक्तिवाद के कठोर बन्धनो को विच्छिन्न कर सफल नेतृत्व कर सकती है।

परम्पराबद्धता एवं अपूर्वता—विद्यापति ने सस्कृत-शब्द-परम्परा की दरबारी कला को उसकी मधुर प्रकृति मे युगान्तर की वास्तविकता का अपार ओज भरकर अपूर्व प्रभविष्णुता प्रदान की है। छन्द-बन्ध मे जकडी हुई शब्द-सुन्दरी को पदवाङ्मय की संगीतमयी उन्मुक्त चारुता देकर उन्होने राष्ट्र की युगान्तर काव्य-धारा का पूर्ण प्रतिनिधित्व किया है। चण्डिदास, गोविन्ददास, सूरदास, नन्ददास और मीराबाई आदि महत्ज्योतियो का साधना-पथ प्रशस्ती, करण विद्यापति ने ही किया है, जो स्पष्टतया प्रतिफलित है। भारतीय संगीत की गंभीरता को माधुर्य्य की उन्मुक्त परिणति देकर उन्होने काव्यजगत का ही

नही, भारतीय संगीत-धारा का भी युगान्तर प्रतिनिधित्व किया है। सिद्धो की भावमयी सगीत-ध्वनियो मे जीवनमयी कला का लोकोत्तर चमत्कार भरकर युग-प्रवर्त्तक कवि का अधिकार उन्होने सहज ही प्राप्त कर लिया है। महाकवि 'निराला' जी ने इनके सम्बन्ध मे इस प्रकार की विचारधारा व्यक्त की है:—

"विद्यापति की भगवान भूतनाथ पर अचल भक्ति थी। वे पूजा करते समय तन्मय हो जाया करते थे। उस समय उनको अपने शरीर का बिल्कुल ज्ञान नही रहता था। इस अपूर्व तन्मयता के कारण ही वे इतने बडे और सफल कवि हो सके। उपासना द्वारा जो सूक्ष्म-बुद्धि, स्थिरता और विषय-प्रवेश की शक्ति इन्होने अर्जित की, वह इनकी कविता के भीतर खूब प्रकट हुई है। जब यह परिपक्व हो जाती है उस समय चाहे जिस तरफ झुकाइये, यह अलौकिक शक्ति अद्भुत फल प्रसव करती है। कर्मयोग से सिद्धि की प्राप्ति का यही रहस्य है और यही योगियो की साधना कहलाती है। कविशेखर की मधुर पदावली को मनोविशेषपूर्वक पढ़िये, तो सहज ही मालूम हो जाता है कि यह कल्पना की अति उच्च भूमि पर विचरण करनेवाले महान से भी महान थे। इस दृष्टि से इनमे रस-ग्रहण की अद्भुत शक्ति थी। भावुकता के विचार से भी ये शीर्पस्थानी कवि हैं। इनके सौन्दर्य-पर्यवेक्षण का वर्णन जितना पुष्ट है, भावुकता भी उतनी ही प्रबल है ·· बंगाल मे प्रचलित सगीत के स्वर मे चण्डिदास की तमाम पदावलियाँ आ जाती हैं। उनकी कृति संगीतमय है, स्वर उनके प्राण हैं परन्तु विद्यापति मे सगीत भी है और वर्णात्मक पाठसुख भी। चण्डिदास में आवेश अधिक है और विद्यापति मे धैर्यपूर्वक सौन्दर्य-निरीक्षण। विद्यापति कवि प्रतिभा मे कालिदास, श्रीहर्ष, शेली और शेक्सपियर से किसी तरह भी घटकर नही थे। महाकवियो की कृतियो मे जो गुण होना चाहिये, वे सब उनकी सरस पदावली मे मौजूद हैं।"

युग प्रवर्तिनी प्रतिभा का सहजोन्मेष विद्यापति की प्रारभिक काव्यरचना 'कीर्तिलता' से ही मिल जाता है, जैसे इसमे मुसलमानो के विलासबर्बर आतक के अन्धकार मे अभयशील आर्य-संस्कृति के यौवन का विजयशाली उल्लास लहरा रहा है। बीस वर्ष की चढती युवावस्था मे राष्ट्र के शासकवर्ग के जागरण के लिए राष्ट्रगुरु का यह निरुपम प्रकाशमय साक्षात्कार है। काव्य की आरंभिक भूमिका मे ही इस कलाकर ने अपनी काव्यसृष्टि की अनुपम चारुता के प्रति गौरवपूर्ण विश्वास को इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है—

सुअण पसंसइ कब्ब मझु,
दुज्जन बोलइ मन्द।

कविवर विद्यापति ने मुसलमानो के आतकपूर्ण शासन और उसकी प्रतिक्रिया से जातीय जीवन मे हीनता और विवशता के बढते हुए दुःख तथा अंधकार की बढती हुई झॉकी देकर यौवन-सकल्प के विजयोन्मुख आह्लाद के प्रकाश को लहराया है। अधिकाश आलोचको ने इस नितान्त रमणीय एव ओजस्विनी अक्षर-सृष्टि के सप्राण अन्तःसौन्दर्य की उपेक्षा कर बाह्य विचारो पर ही दृष्टिपात करने मे अपनी निष्पक्ष विचारशीलता का दंभ बॉधा है, किन्तु यदि वे इसकी समाजव्यापी अन्तःक्षोभ की मर्मस्पर्शिनी ध्वनियो को हृदय की ऑखो से देखते तो उनमे इस प्रकार भ्रान्तिजन्य निरपेक्षिता की कमजोरी हम कदापि न पाते। कविवर विद्यापति की निःसंग जीवन दृष्टि का चमत्कार आतकवादी अहंकार की दुःशील वृद्धि तथा सामाजिक दीनता और विवशता के करुणार्द्र हाहाकार का साक्षात्कार द्रष्टव्य है :—

मत्त मगोल बोल जहि बुज्झइ,
षुन्दकार कारण रण जुज्झइ।

× × ×

गो बम्भन वध दोस न मानथि,
पर पुर नारि बन्द कए आनथि।

मतवाले मंगोल बोली नही समझते थे। कारण खोज कर स्वामी के लिए युद्ध मे जूझते थे। कभी कच्चे मास का भोजन करते थे, उनकी ऑख मदिरा के नशे मे लाल रहती थीं। गायो और ब्राह्मणो की हत्या को वे पाप नही समझते थे, शत्रु के नगर की स्त्रियो को कैद कर लेते थे। लूट की सम्पत्ति से पेट भरते थे, अन्याय से उनकी वृद्धि होती थी, न उनके पास मार्गव्यय था और न घर पर स्त्रियॉ थीं, न शत्रु की शका थी, न मित्र की लज्जा, न उनकी स्थिर वाणी थी, न उनका शुद्ध हृदय था, न साधुजनो का सत्संग, न उनमे प्रियजनो से प्रेम था और न युद्ध से पलायन ही था।

सहस्राब्दियो से घृणा और वैराग्य के बहुशः क्षुद्रतर आचारो मे उलझी हुई जातीय सस्कृति के लिए विजयिनी मुस्लिम-शक्ति का यह जघन्य आसुरी आतक ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा अभूतपूर्व था। इसीलिए इसको देखने के बाद जब हम आर्य-सस्कृति के ओजःसंकल्प के विजयशाली शर्मद प्रकाश का साक्षात्कार वदान्य कीर्त्तिसिह के साधना साफल्य मे पाते हैं जब उलझी हुई परिस्थितियो के भीतर से जीवन के निर्बंध आह्लाद के अभावजन्य घोर अन्धकार के भीतर से अविजेय प्रकाश का साक्षात्कार करते है। तब यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि

सुकवि विद्यापति की यह कृति विश्व-काव्य-कानन का श्रृंगार तथा भारतीय-काव्य की आदरणीय विभूति है। मुसलमानो के भयंकर आतंक से जीवन कितना त्रस्त था, यह द्रष्टव्य है :—

कतहुँ तुरुक बरकइ।
बाँट जाइते बेगार धर।
धरि आनए बांमन बटुआ
मथाँ चढावए गाइक चुडुवा।
गोरि गोमर, पूरिल मही
पैरहु देना एक ठाम नही।
हिन्दु बोलि दुरहि निकार
छोटेओ तुरका भभकी मार।
हिन्दू गोट्टओ गिलिअ हल तुरुक देखि होअ भान।

कही तुर्क बलपूर्वक रास्ता चलते हुए पथिक से बेगार लेता है। ब्राह्मण के लडके को पकड लाता है और उसके मस्तक पर गाय का सुरवा चढवाता है। चन्दन के तिलक को चाट लेता है और जनेऊ तोड देता है तथा ऊपर घोडा चढाना चाहता है। धोये हुये धान की मदिरा बनाता है। मन्दिर तोडकर मस्जिद तैय्यार करता है। कबरो और कसाइयो से पृथ्वी भर गई है। पैर रखने के लिये भी स्थान नही है। हिन्दू समझकर दुत्कार कर निकाल देता है, छोटा भी तुर्क गुस्सा होकर मार देता है। तुर्कों को देख कर ऐसा जान पड़ता है; मानो वे हिन्दुओं के समूह को निगल जायेगे। मुस्लिम-विजय की यह भयकरता है। इसके साथ ही अतृप्तिजन्य उन्माद की उच्छृङ्खलता भी विचारणीय है, वेश्याओ का नागरिक जीवन पर प्रभाव दृश्य कितना मार्मिक है :—

तान्हि करी कुटिल कटाक्षछटा कन्दर्प शर श्रेणी जन्वो।
नागरन्हि का मन गाड़ गो बोलि गमरन्हि छाड॥

राजपथ के समीप जाने पर वेश्याओ के अनेक घर दिखाई पडते है, जिसके निर्माण मे विश्वकर्मा को भी अधिक श्रम करना पड़ा होगा ''उनके कुटिल कटाक्ष की शोभा कामदेव के बाणो का समूह थी, जो नागरिको के मन मे गड़ जाती थी।

कवि प्रतिभा का उन्मेषः— समाजव्यापी घोर अन्धकार मे पितृ-घातक, राजहर्ता असलान के राक्षसी मद को दूर करने के लिए भारतीय सैनिक धर्म के मूर्तमान् प्रतीक कीर्तिसिंह का कृत-संकल्प देखकर जब भ्राता, गुरुजन, मत्री और मित्र प्रभृति आत्मीयजन उससे सुलह कर लेने की शिक्षा

देते हैं, उस समय उनकी विरोचित आवाज मे हम राष्ट्र के स्वाभिमान तथा मनुष्यत्व के गौरव का स्वर एक साथ सुनते है। वे कहते है:—माता ममता-वश कह रही हैं, मत्रीगण राजनीति कह रहे हैं, किन्तु मुझे तो केवल वीर पुरुप की मर्य्यादा ही प्रिय हैं।

इस प्रकार कृत-सकल्प होकर कीर्त्तिसिह अपने भाई वीरसिह के साथ बादशाह इब्राहिमशाह की राजधानी जौनपुर मे पहुँच जाते हैं। राजकुमारो के पहुँचने पर तिरहुत जाने के लिए किसी प्रकार शाही सेना तैय्यार हो जाती है। अब उसकी यात्रा का दृश्य दर्शनीय है:—

'पहाड़ स्थान छोडकर पृथ्वी पर गिरने लगे, नागराज का मन कँप गया। सूर्य का रथ और आकाश का मार्ग धूलि से भर गया, सैकड़ो तबले बजने लगे। कितनी रणभेरियाँ शब्द करने लगी। प्रलय के मेघ जैसे शोर से मनुष्य का शव्द ढँक गया।'' युद्धयात्रा का यह दृश्य युद्धस्थल की भयकरता को आँखो के सामने उपस्थित कर देता है। राजकुमारो द्वारा असलान का अविनय बादशाह से निवेदित करने पर उसकी सकल्पोन्मुखचेतना किस प्रकार प्रबुद्ध हो जाती है इसका सुन्दर दृश्यचित्र 'कवि शेखर' ने अकित किया है। इसके द्वारा कलाकार की निःसगदृष्टि और बादशाह की मनुष्यता तथा प्रभविष्णुता का परिचय एक साथ मिल जाता है।

''ऐसा सुनते ही सुलतान क्रुद्ध हो गया, दोनो भुजाये रोमाञ्चित हो गयी। दोनो भौंहो मे गाठे पड गई, ओठ काँपने लगे, नेत्रो ने लाल कमल की शोभा को धारण कर लिया। खान, उमराओ को उसी समय आज्ञा हुई, कि वे अपनी पूँजी और सबल लेकर तिरहुत प्रयाण करे। बादशाह गर्म हो गया, दरबार मे शोर मच गया, लोग इधर-उधर दौडने लगे और पृथ्वी भार से डगमगाने लगी।

बादशाह की इस भावुकता और महत्ता के साथ कवि-कंठहार ने उसकी उस कमजोरी को भी स्पष्ट कर दिया है, जो भविष्य मे मुस्लिम साम्राज्य के नाश का कारण हुई। राजकुमारो के सामने सेना को तिरहुत जाने की आज्ञा होती है, किन्तु वह तुरन्त बदल जाती है, और सेना पश्चिम की ओर प्रस्थान करती है। राजकुमार यह स्थिति देखकर 'किकर्त्तव्य विमूढ' हो जाते है। इस समय वीरसिह के मत्री ने 'दुष्खे सिज्झइ राजघर कज्ज' की वास्तविकता बतला कर किसी प्रकार ढाढस बँधाया। बेचारे राजकुमार उस अनियंत्रित सेना के साथ ठोकर खाने लगे, जो एक स्थान को लक्ष्य करके जाती थी। उस अराजकता

के अन्धकार मे इन्हे कैसी दुर्गति भुगतनी पड रही थी, इसका कारुणिक चित्र अत्यन्त मर्मभेदी है:—

पानु क सए सोना क टंका, चन्दन क मूल इन्धन बिका।
बहुल कौड़ि कनिक थोड़, घीवक बेचॉ दीअ घोड़।
कुरुआ का तेल ऑगे लाइय, वॉवड़ दासओ छपाइअ।
रण साहस बहु करिये।
बहुलं ठाम फल मूल भष्खिअ,
तुरुक संगे सचार परम कट्ठे आचार करष्खिअ।
संबल निरबल किरिस तनु अम्बर भेल पुराण,
जवन सभावहि निकरुण, तौण सुमरु सुर तान।

पान के लिये सोने का टका देना पड़ता था, ईन्धन चन्दन के मोल बिकने लगा। बहुत कौड़ी (मूल्य) देने पर थोड़ा कनिक (कदन्न) मिलता था, घोडा बेचने पर घी मिलता था। तुर्क सैनिक बॉदी और बडे-बड़े दासो का गवॉ कर कडू तेल शरीर मे लगाते थे। राजकुमारो ने अनेक जगह फल-फूल खाकर बडे कष्ट से आचार की रक्षा की। मार्ग व्यय चुक गया, शरीर दुर्बल हो गया, कपडे पुराने हो गये। यवन शुरू से ही स्वभाव के क्रूर होते है, इतने पर भी सुल्तान को याद नही किया।

इस प्रकार नितान्त करुणाजनक दुर्गति झेलते हुए राजकुमारो ने एक बार पुन. साहस किया और बादशाह से मिलकर उसकी अनुकूलता उन्होने प्राप्त की। किन्तु तिरहुत मे पहुँचने पर जब उन्होने बादशाह को असलान की शक्ति मे आतंकित तथा अन्यमनस्क देखा, तब आर्य जाति की अभयदायिनी अविजेय राष्ट्रीयता का विनयगर्भ विश्वास सक्रियता से उद्दीप्त हो गया। यहॉ कीर्त्ति-सिह के ओज सकल्प मे अशक्त-वैराग्य से मरणोन्मुख जातीय चेतना का विजयोन्मुख सिहनाद सुनाई देता है, जब वे कहते है:—

सब्बउॅ देप्खउॅ पिट्ठि चढि, हाब्बो लावब्बो रण भाण।
पाषरे पाषरे ठेल्लि कहुँ, पकलि दे ब्बो असलान।
अज्ज वैरि उद्धरब्बो, सत्तु जइ संगर आवइ।
जइ तसु पक्ख सपष्ख इन्द अप्पन बल लावइ।
जइ ता रष्खइ शम्भु अवर हरि बम्भ सहित भइ।

सब कोई देखे, घोड़े की पीठ पर चढकर मै युद्ध का समाचार लाता हूॅ घोडे की झूल की तरह चारो ओर से असलान को घेर कर पकड देता हूॅ। यदि शत्रु

आज युद्धभूमि मे आये, तो वैर का उद्धार करूँ। यदि उसका साथी होकर इन्द्र अपनी सेना उसके साथ लाये, या शकर, विष्णु और ब्रह्मा सग होकर उसकी रक्षा करे, यदि क्रोध कर वह शेषनाग और यमराज के धनुष को रक्षार्थ पुकारे, तब भी मै असलान को मारूँगा। अपमान के समय यदि जीव बचाकर वह पीठ दिखा न जाये तो उसका रुधिर लाकर पैर पर रख दूँ। इसके बाद युद्ध-भूमि की भयकरता के साथ कलाकार ने उसकी बीभत्सता की झाँकी दी है। अन्त मे युद्ध से भागते हुए असलान को जीवन दान देकर कीर्त्तिसिह ने क्षत्रियोचित आदर्श का पूर्ण परिचय दे दिया है।

अभिव्यक्ति-चमत्कारः—भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से विद्यापति "कब्ब कलाउ छइल्लु" (काव्य के 'छैला' अर्थात् मर्मज्ञ सहृदय) हैं। रूप सौन्दर्य के आकर्षण का भाषा की आलंकारिक शक्ति के द्वारा उन्होने अपार चमत्कृति दी है। राधा को अन्योक्ति-पद्धति से कृष्ण के अपूर्व-प्रेम का परिचय दूती इस प्रकार दे रही है—

जे फूल भमर निन्दहु सुमर,
बासि न विसरए पार।
जाहि मधुकर उड़ि उड़ि पड़,
सेहे संसार क सार।

प्रफुल्ल पुष्प-सी अपनी सुन्दरता के प्रति इन पंक्तियो द्वारा राधा कितनी उल्लसित हो जाती हैं, इसे इस उक्ति की प्रभविष्णुता द्वारा सहज ही पाठक समझ सकते हैं। आज के छायावादी कवियो ने भाषा की चमत्कृति के लिए अन्योक्ति, अप्रस्तुत-प्रशंसा एवं रूपकोतिशयोक्ति आदि अभिव्यंजना शक्तियो से खूब प्रभाव बढाया है। इसलिये प्रकृति के सौन्दर्याकर्षण पर मानव चेतना का आरोप कर मानव की आत्मीयता का क्षेत्र विस्तृत करने मे उन्हे अच्छी सफलता मिली है। इस रूपकोतिशयोक्ति मे यह चमत्कृति अच्छी तरह देखी जा सकती है। कृष्ण के आकर्षण के प्रभाव को राधा सखी से कह रही हैं —

ए सखि पेखलि एक अपरूप,
सुनइत मानवि सपन सरूप।
कमल-जुगल पर चाँद क माला,
तापर उपजल तरुन तमाला।
तापर बेढ़लि बिजुरी लता,
कालिन्दी तट धीरे चलि जाता।

राधा की रूपछटा की झाँकी कृष्ण को भी इसी प्रकार मिलती है :—

पल्लव राज चरन-जुग सोभित
गति गजराज क भाने।
कनक कदलि पर सिंह सभारल
तापर मेरु समाने।

इस प्रकार की अनेक रूपक-सृष्टि के द्वारा विद्यापति ने अपनी भाषाशक्ति का खूब परिचय दिया है। साम्याकर्षण के प्रबोध के लिये उपमा के अनेक चमत्कार इनमे मिलते हैं। उदाहरण के लिये ये पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

सुजनक प्रेम हेम समतूल।
दहइत कनक दिगुन होय मूल।
टुटइत नहि टुट प्रेम अद्भूत।
जइसन बढ़ए मृनाल क सूत।

उपमान से उपमेय की एकरूपता की सभावना मे विद्यापति की उत्प्रेक्षा का चमत्कार देखा जा सकता है :—

कुच जुग परसि चिकुर भुजि पसरल,
ता अरुझायल हारा।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल,
चाँद विहिनु सब तारा।

इस प्रकार की सूक्ष्म कल्पना इनकी उत्प्रेक्षा के चमत्कार को सर्वत्र बढाती है। जिस यमक अलकार को आचार्य मम्मट ने 'प्रभूततमम् भेदम्' के रूप मे गौरवान्वित किया है। उसका चमत्कार अनेक प्रकार से विद्यापति ने दिखाया है। उदाहरण के लिये इन पक्तियो की मर्म-स्पर्शिता देखी जा सकती है :—

सारंग बयन नयन पुनि सारँग.
सारंग तसु समधाने।
सारंग ऊपर उगल दस सारग,
केलि करथु मधुपाने।

उपमान की अपेक्षा उपमेय को अत्यधिक महत्व देकर कही-कही व्यक्तिरेक की इन्होने अपूर्व सृष्टि की है :—

कवरीभय चामरि गिरि कन्दर,
मुख भय चाँद अकासे।
हरिन नयनभय सर भय कोकिल,
गति भय गज वनवासे।

भावों की प्रकृति के अनुसार ओज, प्रासाद और माधुर्य का सहज आकर्पण, अलंकारों का चमत्कृतिजनक प्रयोग और लोकोक्तियों और मुहावरों के निसर्ग संकेत से इनकी भाषातत्वावगाहिनी शक्ति का पूरा परिचय मिल जाता है। भाषाशक्ति की विज्ञप्ति के लिये इन्होंने चमत्कारपूर्ण दृष्टिकूटों का भी प्रयोग किया है। इनकी लोकोक्तियों तथा मुहावरों में युग-जीवन एवं भविष्योद्-बोधन की ऐसी शक्ति है, जो युगान्तर की सक्रियता भर देती है। उदाहरण के लिये देखिये :—

अपन करम दोख अपनहि भुंजइ, जे जन परबस होइ।

अथवा 'वारि विहुन सर केओ न पूछ' आदि शत-शत प्रयोगों के साथ

'नहि मान धनष्खि भिष्खि भावइ,

अथवा

"दुखइ सिज्झइ राजवर कज्ज"

आदि का तथ्य-दर्शन भी है।

इस प्रकार यौवन के लिये वीर, करुण, भयानक, बीभत्स और शृंगार की मधुर-शक्ति उद्बोधिनी रस-धारा बहाकर वार्द्धक्य के नैराश्य की शान्ति के लिये विनय की ध्वनि भी इन्होंने दी है। इनके वन्दनात्मक गीतों में पूर्ण प्रभाव-शालिनी शक्ति है। शक्ति की वन्दना में तन्मय होकर जैसे इनका शिशु हृदय पुकार उठा है :—

जय-जय भैरवि असुर-भयाउनि,
पशुपति-भामिनि माया।

× × × ×

घन घन भनए घुंघुर कत बाजय,
हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक,
पुत्र विसरु जनि माता।

राधा के प्रति अपनी हार्दिक निष्ठा को अनन्यता की तन्मयता में इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

कत कत लखिमी चरन-तल नेओछए,
रंगिनि हेरि विभोरि।
करु अभिलाप मनहि पद पंकज,
अहोनिसि कोर अगोरि।

देश की सरस सास्कृतिक-ज्योतिर्दष्टि श्रीगंगाजी के प्रति इनकी अविचल अनुरक्ति विनय-विश्वास-पूर्ण है :—

कि करब जप-तप जोग धिआने,
जनम सफल मोर एक असनाने।

अपने अनन्याराध्य भगवान शंकर के जब समीप होते हैं, तब साधनात्मक-पूर्णता के प्रति इनका निस्सीम राग कितने विनय के साथ प्रबुद्ध होता है। दर्शनीय है:—

'कखन हरब दुख मोर हो भोलानाथ'

एक ओर भोगमय जगत की झाँकी युग-जीवन के यथार्थ के रूप मे इन्होने इस प्रकार दी है:—

बाहु पसारिए दुहु-दुहु धरु रे,
दुहु अधरामृत दुहु मुख भरुरे।
जाइतेहि स्मित नव-वदन मिलल रे,
दुहु पुलकावलि तें लहु लहु रे।
रस मातल दुहु वसन खसल रे,
विद्यापति रस-सिन्धु उछलल रे।

तो दूसरी ओर त्याग की विरक्तिवर्धिनीग्लानि के विनय पूर्ण विश्वास को भी प्रकट किया है:—

जावत जनम नही तुअ पद सेविनु,
जुवती - मति - मयॅ मेलि।
अमृत तजि हलाहल किए पीअल,
सम्पद अपदहि भेलि।
भनइ विद्यापति नेह मने गनि,
कहल कि बाढ़ब काजे।
साँझक बेरि सेवकाई मॅगइत,
हेरइत तुअ पद लाजे।
+ + + +
माधव हम परिनाम निरासा
तुअ जग तारन देव दयामय अतय तोहर विश्वासा।

इस प्रकार मानव-जगत की रागात्मिका सत्ता की अभिव्यक्ति के साथ प्रकृति से समन्वित जीवन की अनेक-रूपात्मक परिणति का दृश्य इन्होने अंकित किया है। अभाव और विवशता की दशा मे प्रकृति की निसर्ग सुषमा भी प्रलयंकरी प्रतीत होने लगती है, वैसे ही जैसे वियोगिनी के लिये :—

पूस खीन दिन दीघरि राति,
पिया परदेश मलिन भेल कॉति ।
हेर ओ चौदिस झँखओ रोय,
नाह बिछोह काहु जन होय।

जब प्रकृति की प्रभविष्णुता से इनका हृदय अनुप्राणित होता है, तब प्रकृति मानवीय-चेतन सत्ता से संयुक्त होकर नितान्त सेव्य रूप मे इनके लिये आदरणीय बन जाती है। वसन्त का चित्र इन्होने शैशव की मधुर-विवशता के रूप मे आकर्षक बनाकर चित्रित किया है। उसका जन्मोत्सव द्रष्टव्य है—

सुभ खन् बेरा सुकुल पक्ख हे,
दिनकर उदित-समाई ।
सोरह सम्पुन बतिस लखन सह,
जनम लेल ऋतुराई ।

तरुण वसन्त के ऐश्वर्य की अनुभूति इन्होने राजा के रूप मे कराई है। उदाहरण के लिये यह झॉकी दर्शनीय है:—

आएल रितुपति राज वसन्त,
धाओल अलि कुल माधवि पथ।
दिनकर किरन भेल पौगंड,
केसर कुसुम धयेल हेमदण्ड।
नृप आसन नव पीठल पात,
कंचन कुसुम छत्र धरु माथ।
सैन साजल मधु मखिका कूल,
सिसिर क सबहु कएल निरमूल।

इसके साथ ही वसन्त की माधुर्यानुभूति वणिकराज अथवा दूल्ह के रूपक सृष्टि द्वारा इन्होने कराई है। इस प्रकार भाषा द्वारा जीवनव्यापी मधुर ऐश्वर्य को अभिव्यक्ति देकर इन महाकवि ने युग के प्रतिनिधि और प्रवर्तक का पूरा दायित्व सभाला है। जो आलोचक दरबारी शृगारिकता से विद्यापति को कलकित करते है, उन जीवन के ऐतिहासिक-यथार्थ की उपेक्षा करनेवाले असहृदय विचारको से केवल इतना ही निवेदन है कि जगन्नाथ पुरी, भुवनेश्वर आदि मन्दिरो पर युगनद्ध स्त्री-पुरुषो की सहज नग्न-प्रतिमाओ का अनुलेखन सहज ही कैसे अविचार्य हो सकता है। फ्रायडवादी आलोचक भी यदि ऑख खोल कर देखेगे, तो उन्हे भारतीय प्रतिभा की निर्बन्ध-दर्शन-सृष्टि का अपूर्व परिचय मिलेगा।

गीतिकाव्य : विद्यापति

संगीत ही इस सृष्टि के सर्जन, नियमन, एव सहार का मूलाधार है। इसका आकर्षण एव प्रभाव असीम तथा अनन्त है। जड और चेतन दोनो पर इसकी प्रतिक्रिया समान रूप से होती है। जिस जाति, समाज और राष्ट्र को सगीत साधना शक्त्युन्मुख होती है, उसकी अभ्युदयशीलता कदापि हतप्रभ नही होती। हरिण जैसे चचल और सर्प जैसे विषधर प्राणी भी स्वर-संगीत के अनुपम आनन्द मे तन्मय हो जाते हैं। इसीलिए 'गीता' मे भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयमेव इसे 'वेदानाम् सामवेदोस्मि' की सज्ञा प्रदान की है। आत्मज्योति की तरलित ध्वनिमय धारा चैतन्य मे ही नहीं जड मे भी आकर्पण का उल्लास भर देती है। प्रकृतिव्यापिनी इसी रागात्मिका शक्ति के कारण भारतीय राग-रागनियो की अद्भुत चमत्कृति नितान्त काल्पनिक नही, पूर्ण सत्य है। स्वर की तरगे आकाश मे व्याप्त समष्टि सृष्टि मे अभिनव-सौन्दर्य का उद्बोधन भर देती हैं। अतीत के दुर्वह-चिन्ता भार से सहज ही मन मुक्त हो जाता है। अभिनव-सौन्दर्य की प्रतीति से नव जीवन की अशिथिल सक्रियता किसी जाति अथवा समाज मे कुछ क्षणो मे ही जग जाती है। जैसे दीपक राग गाने से दीपक जल उठता है, मल्हार राग गाने से वर्षा होने लगती है और भैरव राग गाने से पुरुषत्व का तेज उमडने लगता है। इसीलिए किसी देश अथवा जाति की विशुद्ध आत्मा का दर्शन उसके सगीत की स्वर-लहरी से ही प्राप्त होता है।

वैदिक मंत्रगीतो मे 'गायत्री' स्वर की अपूर्वता ने सर्वदा के लिए उसे सप्राण प्रभावापन्न बना दिया है। 'गायत्री' गाई हुई स्वरानुभूति की अभिव्यजना ही है। गायक के चरमभावावेश की आकुलता व्यजनो की स्थूलता को स्वरारोहावरोह की धारा मे विगलित कर रस-पेशल सूक्ष्मता प्रदान कर देती है। इसीलिए ज्ञान के अन्य आलोक प्रवाहो के प्रभाव की अपेक्षा गीत का प्रभाव अधिक तीव्रता से जीवन को अनुप्राणित कर देता है।

व्यक्तिनिष्ठ अन्तर्व्यथा अथवा आह्लाद का भावोन्माद गीतात्मक स्वरानुरूपता प्राप्त कर अपने अव्यर्थ-प्रभाव अथवा आकर्षण से प्राणि-मात्र से अभिन्न आत्मीयता प्राप्त कर लेता है। झरने की कलकल ध्वनि, कोकिल की काकली एवं भ्रमर की गुजार मे मनुष्य को मादक माधुर्य का अनुभव होता आ रहा है, इसलिए प्रकृति मे आत्मीयता की पूर्णोपलब्धि के लिए उसके स्वरो की तादात्म्य-प्रतीति के अभ्यास मे वह अनवरत अनुरक्त रहता आ रहा है। बादल की गर्जना तथा उदधि की उत्ताल तरगो की हलचल मे अपनी परिस्थिति

के अनुरूप मानव ने स्वरानुसन्धान किया है और भावना तथा कल्पना के तुल्ययौगिक मिलन से संगीत एव काव्य मे अभिन्नता स्थापित कर उसके प्रभाव को प्राणवत्ता प्रदान की है। इसीलिए किसी समाज अथवा राष्ट्र के हृदय-श्रुति से यदि उसके काव्यमय सगीत को तिरोहित कर दिया जाय, तो उसके जीवन-प्रवाह को सूखते देर नही लगती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सगीत मानवीय रागात्मक भावना की माधुर्यपूर्ण सजीव अभिव्यक्ति है।

ऐतिहासिक आधार:—भारतीय काव्य-परम्परा का विकास सगीत की मजुल समन्विति से ही हुआ है। आदि काव्य 'रामायण' के गान की अपूर्व-परिणति का संकेत स्पष्ट मिलता है। लवकुश ने गाकर जब रामाश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर इसे सुनाया, तो श्रोता प्रसन्न होकर वाह-वाह करने लगे, वहाँ मनुष्यलोक मे दुर्लभगान होने लगा, पर सुननेवाले तृप्त नही हुए, सुनने की उत्सुकता बढ़ने लगी, मुनि तथा पराक्रमी राजा उन बालको को बार बार देख रहे थे, मानो वे उन्हे पी रहे हो—

हृष्टा मुनिगणाः सर्वे पार्थिवाश्च महौजसः।
पिबन्त इव चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्म मुहुर्मुहुः॥
(वा० रा० ७।९४।१२)

महाभारत का सार-स्वर 'गीता' मे ही झकृत हुआ है। जिसके सम्बन्ध मे यह संस्तुति सर्वमान्य है :—

'गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।

हमारे जीवन की इस सगीतमयी रुचि की प्रवणता ने प्रबन्ध काव्य के उत्तरवर्त्ती-परम्परा को भी अनुप्राणित किया। वस्तुगुंफन की सघनता और गम्भीरता के स्थान पर मधुर कल्पना की संगीतमयी सरस उत्तेजनशीलता को प्रधानता मिली। वस्तुविज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेद, ज्योतिष, इतिहास आदि की रचनाये भी पद्यबद्ध-शैली मे लिखी गई। संगीत की अभिनव-चारुता वृद्धि के लिए विविध छन्दो की प्रयोग-चमत्कृति की ओर झुकाव बढा। कल्पना के सहज, स्वच्छन्द भावावेश की तरलता वैराग्य की अविचल गम्भीरताजन्य जडता मे नवजीवन-सौन्दर्य का आकर्षण भरने लगी।

कविवर कालिदास से लेकर जयदेव तक की संस्कृत काव्यधारा मे मनोहारिणी स्वरझकृति के साथ वर्णचमत्कृतिचारुता परावस्था तक पहुँच गई। संस्कृत-काव्य में वर्ण-सगीत की वैज्ञानिकता पर विचार "मेरे गीत और कला" निबन्ध मे

कविवर निराला ने लिखा है—'संस्कृत मे कालिदास अकेले "श-ण व-ल" स्कूल मे है, शब्दो से रूप चित्रण कालिदास का जितना अच्छा होता है उतना-चुस्त बैठता हुआ दूसरे का नही, इसीलिए 'उपमा कालिदासस्य' कहा है :—

गर्भाधानक्षणपरिचया नूनमाबद्धमाल :—

कालिदास का एक 'ण' सब वर्णो से ज्यादा बोल रहा है—प्रांशु लभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिव वामनः ।

सारा उच्चारण संगीत—प्राशु के शु, वामन के 'व' पर है ।

'उन्मद-मदन मनोरथ पथिक वधू जन-जनित विलापे ।

अलिकुल सकुल कुसुम समूह-निराकुल वकुल कलापे ।

स, म, ल ही बोल रहे है । श, ण, व, ल का पता नही, जयदेव आज इतना ऊँचे उठ गये हैं कि लोग तारीफ करने को विवश हैं .. श, ण और व के प्रयोग जयदेव मे भी हैं पर ये वर्ण इनकी रचना मे दबे हुये हैं—

'धीर-समीरे यमुना-तीरे वसति वने वनमाली :—

कैसी सुन्दरता है पर कालिदास वाले वर्ण नही । इसी तरह—

"वदसि यदि किञ्चदपि दन्त रुचि-कौमुदी
हरति दरतिमिरमतिघोरम्-अयि प्रिये ।"

यहाँ भी वर्ण-संगीत कालिदास का नही । पर झपताल मे जो भाव-सौन्दर्य व्यक्त है, वह जयदेव मे ही प्राप्त होता है अन्यत्र नही ।"

सगीतमयता:—सगीत स्वय आत्मा की सहज अभिव्यक्ति है। सगीत मे ही ऐसी शक्ति है कि आराधक अपने आराध्य को सहज वश मे कर लेता है। क्योकि स्वभावत. संगीत की धारा मधुर होती है, किन्तु जीवन की संकुल परिस्थितियो मे दिव्य ज्योति का भी दर्शन कराती है तथा निष्क्रिय जीवन मे सक्रियता का अमित-उत्साह भर देती है। हम अपने काव्य की छन्दशैलियो का वैविध्य जब देखते है तो सगीत-रुचि के नवनवोन्मेषशालिनी शक्ति का ही प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । भावो मे आकर्षण की सहज रमणीयता सगीत के द्वारा ही सम्पन्न होती है। सस्कृत-काव्य-धारा और वाङ्मय की गद्य-पद्य दोनो शैलियो मे सगीत की अभिरुचि भाषा मे गुणात्मक वैभव बन कर आई है । नैराश्य जीवन की तमिस्रा मे तृप्ति अथवा क्रियाशीलता मे संकल्प का उन्मेष सगीत के बिना अन्य किसी माध्यम से नहीं सम्पन्न होगा । इसीलिए हिन्दी के आदिकवि के काव्य का आरम्भ प्रकृति की सहज संगीत माधुरी के स्वर मे तरलित हुआ है। चण्डिदास, विद्यापति, गोविन्द-दास, सूरदास आदि ने काव्य की सगीतमयी साधना से ही अमृततत्व का प्रत्यक्ष

किया है । कविवर विद्यापति की गीतमयता काव्य की अपूर्व चमत्कृति से मिलकर चैतन्य महाप्रभु जैसे साधक को भी वशीभूत करने मे समर्थ हुई है ।

इस प्रकार कविवर विद्यापति के काव्य मे अनन्त चमत्कृतियो के साथ स्वरो की सगीतमयता ही भाषा मे सप्राण आकर्षण का आधार बनी हुई है । सगीत की इस अनन्त महिमा का अनुभव करते हुए यदि हम हिन्दी साहित्य के इतिहास की सगीतमयी धारा का विश्लेषण करे, तो गीततत्व के साथ ही अपने जीवन के उत्थान-पतन का प्रामाणिक परिचय भी हम प्राप्त कर सकते हैं । कविवर-विद्यापति मे एक ओर युग-जीवन के निसर्ग सौन्दर्य-प्रवाह की रसप्लाविनी झकृति मिलती है, तो दूसरी ओर दृश्यविधायिनी चमत्कृति का अपूर्व दर्शन भी मिलता है । काव्य और संगीत की सर्वजनरंजनकारिणी समन्विति का जो प्रकाश-वितरण इन अमृत गायक ने किया है, उससे तारुण्य के चरम माधुर्य और वार्द्धक्य के चरम गाम्भीर्य की जीवनव्यापिनी श्रुति मिलती है । सगीत की तरगो की तन्मयतापूर्ण समाधि मे नारी की रूपमाधुरी का अनुपम प्रत्यक्ष है । यहाँ भावुकता और कल्पना का लोकोत्तर मिलन है :—

चाँद-सार लए मुख रचना करु,
लोचन चकित चकोरे ।
अमिय धोय आँचर धनि पोंछलि,
दह दिसि भेल उँजोरे ।

एक ओर पुरुष-हृदय की तरल अतृप्ति का चिरन्तन भावावेश संगीत की मादक लहरो मे अपूर्व मोहकता के साथ इस प्रकार सुनाई देता है—

सजनी, भल कए पेखल न भेल ।
मेघ माल सयँ तड़ितलता जनि ,
हिरदय सेल दई गेल ।

दूसरी ओर नारी-सृष्टि की अभिन्न आत्मीयता की उपलब्धि का निश्छल अनुराग भी श्रुतिगोचर होता है :—

की लागि कौतुक देखलौ सखि,
निमिख लोचन आध ।
मोर मन-मृग मरम बेधल,
विपम बान बेआध ।

भावना के चरम-दिव्य भावावेश को तरंगायित करने में विद्यापति की कला द्रुत-हृदयस्पर्शिनी है :—

बिपत अपत तरु पाओल रे,
पुन नव नव पात।
बिरहिन नयन बिहल बिहि रे,
अबिरल बरिसात।

लोकगीतो मे नारी की विरह-वेदना का जैसा सजीव दृश्य अंकित करने मे कविवर विद्यापति को सफलता मिली, कदाचित् हिन्दी वाङ्मय मे अन्य कवियो को नही। विरहानुभूति की मार्मिकता का प्राणवान् चित्र प्रकृति के माध्यम से इन रससिद्ध कवि ने इस प्रकार अंकित किया है, मानो नारी-हृदय का सार एकत्र हो गया है। प्रकृति के मोहक समय मे विरहिणी की अन्तर्व्यथा उसके हृदय की वीणा मे इस प्रकार बज उठती है—

के पतिआ लए जाएत रे,
मोरा प्रियतम पास।
हिय नहि सहए असह दुख रे,
भेल साओन मास।
एकसरि भवन पिया बिनु रे,
मोरा रहलो न जाय।
सखि, अनकर दुख दारुन रे,
जग के पतिआय।

नारी हृदय का सनातन अनुराग ही अपने चरम भावावेश मे द्रवित होकर मानो बह रहा है। ग्राम्य-सस्कृति की अनुरूपता के साथ पौराणिक विश्वास की अनुवर्तिता ने गायक के स्वरो मे रस-पेशलता के साथ दिव्यभावोन्माद की अपूर्वता का अमृतमय-आकर्षण भर दिया है :—

मधुपुर मोहन गेल रे,
मोरा बिहरत छाती।
गोपी सकल बिसरलनि रे,
जत छल अहिवाती।

+ + +

कत कहबो कत सुमिरब रे,
हम भरिए गरानि।
आन क धन सो धनवंती रे,
कुबजा भेल रानि।

विरह प्रधान गीतो मे उपालम्भ की मर्मस्पर्शिता निसर्गतः वेधिनी है, विरहिणी की करुणा अनन्यासक्ति की माधुरी मे द्रवित हो रही है—

सब करि पहु परदेस बसि सजनी ,
आयल सुमिरि सिनेह ।
हमर एहन पति निरदय सजनी ,
नहि मन बाढ़य नेह ।

कविवर विद्यापति ने राधा को भारतीय नारी की विरहासक्ति के चरम-प्रकाश के रूप मे चित्रित किया है, वस्तुत वे आराध्या हैं । संगीत की स्वर-लहरी मे रमणी की दिव्य भावना-मूर्ति परम रमणीय हो गई है :—

माधव, देखलि वियोगिनि बामे,
अधर न हास विलास सखी सँग,
अहोनिसि जप तुअ नामे ।

गीतिकार कवि की कला की पूर्ण-सगीतमयता की प्रतीति विविध वाद्यो की अनुरणन-ध्वनि की अनुकृति से भलीभाँति हो जाती है, रास-लीला की इस दृश्यानुभूति मे गीत, वाद्य और नृत्य की अपूर्व झंकृति सुनाई दे रही है :—

बाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिमद्रिमिया ।
नटति कलावति माति श्याम संग,
कर करताल प्रबन्धक ध्वनियाँ ।
डम-डम डंक डिमिक डिम मादल,
रुनु झुनु मजीर बोल ।

वाद्य-ध्वनि की रसमयी प्रतीति अनेक गीतो की सुखद-श्रुति से सहज ही प्राप्त हो जाती है, नाद-सौन्दर्य की सजीवता ही सगीत का प्राण है, इसका प्रत्य-क्षीकरण प्रस्तुत गीत खड से पूर्णतया स्पष्ट है :—

रंगिनि गन सब रगहि नटई,
रन रनि कंकन किकिन रटई,
रहि रहि राग रचय रसवंत ।
रतिरत रागिनि रमन बसत ।।

गीतिकार कवि की सबसे बडी विशेषता यह हैं कि उसने लौकिक प्रेम-भावना को सौन्दर्य की माधुर्यानुभूति से समन्वित करने मे कहाँ तक सफलता पाई है । इस दृष्टि से कविवर विद्यापति ने ग्राम्य-प्रकृति के अनुकूल चौमासे,

बारह मासे की श्रुति मधुर रसधारा भी प्रवाहित की है। 'प्रार्थना' और 'नचारी' शीर्षक गीतो मे अनेक गीत ऐसे हैं, जिनमे सच्चे भक्त की आत्मा का स्वर सुनाई देता है। वार्द्धक्यमय जीवन की दीनता, हीनता, विवशता के साथ समर्पण की अनन्यनिष्ठता की स्वर-सुधा की उपलब्धि गायक को सामान्य-जन-जीवन का प्रतिनिधित्व प्रदान करती है, जब वह कहता है :—

कखन हरब दुख मोर,
हे भोलानाथ।
दुखहि जनम भेल, दुखहि गमाएब,
सुख सपनेहु नहि भेल, हे भोलानाथ ॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है, कि गीतिकार विद्यापति के पद गीतों मे निसर्ग जीवन-प्रवाह की मर्मस्पर्शिता है। यौवन और वार्द्धक्य की सीमा मे इनकी कोमल मधुर-रागिनी की सरिता तरल वेग मे बहती है। सर्वत्र अनन्यासक्ति मे शिशु-सुलभ निश्च्छलता है। इसलिए एक युग से इनकी स्वर-मन्दाकिनी सहृदय-हृदय को मुग्ध करती आ रही है।

रचना और प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी के आदिकवि और गायक के रूप मे विद्यापति का सर्व प्रथम स्थान है। मध्य युग के राजाश्रित कवियो की श्रेणी मे होते हुए भी जन-जीवन के प्रति इनमे पूरी जागरूकता मिलती है। यद्यपि संस्कृत मे भी इनकी गेयरचनाएँ मिलती हैं, पर इनकी पूर्ण निष्ठा की प्रतीति जन-भाषा की माधुरी मे ही प्रवाहित हुयी है। इनके इन गीतो का प्रभाव देश के पूर्वी प्रदेशो पर अपने समय मे ही व्याप्त हो गया। बगाल के चण्डिदास जैसे साधक गायक ने इनके गीतों को आदर्श के रूप मे स्वीकार किया है। इतना ही नही, इनकी भाषा को स्वीकार करने मे भी उन्हे तृप्ति मिली है।

जीवन-प्रवाह की अनुरूपता के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से गीत-काव्य के दो रूप स्पष्ट दिखाई देते है—कलात्मक तथा लौकिक। जहाँ लौकिक गीतो मे वासना के सहज भावोन्माद की धारा सुख-दुःख के कगारो को छूती हुई उमडती रहती है, वहीं कलात्मक गीतो मे भावना की मूर्ति-विधायिनी कल्पना शास्त्रीय वैधानिक-अनुरूपता के साथ प्राणमयी तथा मार्जित होती है। शास्त्रीयता की कठोर-प्रतिम्बन्धानुरूपता का मोह जब निष्क्रिय, विलास-बेसुध वर्ग मे सीमाबद्ध-रूढ़ हो जाता है, तब कलात्मक-गीतो को सहज प्राण-शक्ति की उपलब्धि लोक-गीतो से होती है। मैथिल-लोक-गीतो के प्रभाव का

रस-व्यंजक-स्वरानुसन्धान का गायक होने कारण ही मैथिल-कविजयदेव को पीयूषवर्षी की ख्याति मिली ।

जयदेव : विद्यापति :—कविवर जयदेव और श्रीविद्यापति ने नारी और पुरुष के यौवन के रहस्यमय आकर्षण की रसमयी अनुभूति कराई है । मिथिला की सगीतमयी प्रकृति के निसर्ग-आकर्षण की चारुता मे मुग्ध हो, कविवर जयदेव ने आरंभ मे नन्द की आज्ञा से राधा के द्वारा कृष्ण के घर पहुचाने का संकेत किया है । इससे यह स्पष्ट है, कि कृष्ण की अपेक्षा राधा अधिक व्यवहार-कुशला हैं और दोनो का साहचर्य शैशव से ही बढते-बढते आत्तजनो के लिये सर्वथा विश्वस्त हो गया है । कविवर सूरदास ने भी इसी प्रकार राधा के ऐकान्तिक अधिकार का नन्द के द्वारा परिचय दिलाया है, पर विद्यापति के राधा-कृष्ण के प्रेम-सम्वर्द्धन की मध्यस्थता दूती करती है । विद्यापति ने राधा की वयः सन्धि के साथ नारी के शैशव और यौवन की आँखमिचौनी का मधुर परिदर्शन कराया है और राधा के स्नान, बहिर्गमन आदि के अवसर पर कृष्ण को उनका दर्शन सुलभ कर कौतूहल वृद्धि का मर्मसाक्षात्कार दिया है । राधा के अभिसार, नखशिख और मान आदि के मधुर-दृश्याकन मे विद्यापति बेजोड है । उनका लक्ष्य नारी की शक्ति-ज्योति से लोक-हृदय को अनुप्राणित कर अविश्वास-कलुषित युग-जीवन मे शिवत्व का सचार करना जान पडता है ।

कविवर जयदेव ने गीत-गोविन्द के आरंभिक मगल परिचय में ही लिखा है, कि:—

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै—
नंक्त भीरुरय त्वमेव तदिम राधे गृह प्रापय ।
इत्थ नन्द निदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुम—
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः । (१।१)

यदि हरि-स्मरणे सरस मनो यदि विलास-कलासु-कुतूहलम् ।
मधुर-कोमल-कान्त-पदावली-शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् । (१।३)

मेघ से आकाश सान्द्र स्निग्ध है, तमाल वृक्षो से वनस्थली श्याम है, रात का समय है, यह कृष्ण भीरु स्वभाव के हैं, इसलिये हे राधे, तुम इन्हे घर पहुँचा दो । इस प्रकार नन्द की आज्ञा से जाते हुए राधा और माधव की यमुना के किनारे प्रत्येक मार्ग, कुंज और वृक्ष की रहस्यमयी क्रीडा सर्वाधिक मगलमयी है ।

(और) यदि हरि के स्मरण से मन हराभरा है, यदि विलास की कला के प्रति उत्सुकता है, तो मधुर-कोमल-कान्त पदवाली जयदेव की वाणी सुनिए ।

इसके बाद राधा और उनकी सखी की परस्पर बातचीत का दृश्य दर्शनीय है:—

वसन्ते वासन्ती-कुसुम-सुकुमारैरवयवैं—
भ्रमन्ती कान्तारे बहुविहित-कृष्णानुसरणम् ।
अमन्द कन्दर्प-ज्वर-जनित-चिन्ताकुलतया—
बलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी ।

वसन्त ऋतु मे माधवी-लता के पुष्प की तरह कोमल अंगो से वन मे अनेक रूप कृष्ण का अन्वेषण कर भ्रमण करती हुई, अत्यधिक कामदेव की पीडा से व्याकुल राधा से सखी ने यह सरस निवेदन किया। प्रथम वार जब कृष्ण का मिलन होता है तब :—

प्रथम समागमलज्जितया पटु चाटु शतैरनुकूलम् ।
मृदु मधुर स्मित भाषितया शिथिलीकृत जघन दुकूलम् ।

प्रथम मिलन के समय लज्जा के कारण अनेक कुशल प्यार की उक्तियो से अनुकूलता प्राप्त कर कोमल-मधुर हास्यपूर्वक भाषण के साथ जघे के वस्त्र को कृष्ण ने शिथिल किया। पुनः कृष्ण जब अपनी प्रेयसियो के बीच उपस्थित होते हैं, तब उनकी लीला दर्शनीय है :—

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामवि रमयति रामाम् ।
पश्यति सस्मित चारुतरामपरामनुगच्छति वामाम् ।
श्रीजयदेव भणितमिदमद्भुत-केशव-केलि-रहस्यम् ।
वृन्दावन-विपिने ललित वितनोतु शुभानि यशस्यम् ।

किसी का आलिंगन कर रहे हैं, किसी सुन्दरी के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, किसी प्रसन्नवदना परम सुन्दरी को देख रहे हैं और किसी वामागना के समीप पहुँच रहे हैं। श्रीजयदेव कवि ने वृन्दावन मे हानेवाली केशव की इस अद्भुत रहस्यमयी केलि का वर्णन किया है, जो सहृदयो के मगलमय, सुन्दर-यश की वृद्धि करे। रमणियो के प्रति कृष्ण का प्यार कितना मोहक है—

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनबलिताधरे ।
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ।
रमते यमुना-पुलिन-वने विजयी मुरारिरधुना ।

कामोन्माद से बेसुध, चुम्बन के लिए अधर को समुख किए हुई रमणियों

के मुख पर चन्द्रमा के बीच मृग की भाँति कृष्ण रोमाचपूर्वक कस्तूरी का तिलक अकित कर रहे है और सुखोपभोग का सुअवसर पाकर इस समय यमुना के तट पर वन मे क्रीडा कर रहे हैं। प्रियतमा का शृगार करने मे कृष्ण की तन्मयता नितात मधुर है :—

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलित तरुणानने।
कुरबक कुसुमं चपला सुषमं रतिपति मृग कानने॥

कामरूप मृग के वन मे बादल के समूह की भाँति मनोहर युवक-जन-रूप-कुब्जक-कुसुम के मुख को आनन्द से चचल कर देने वाले राधा के केशकलाप मे बिजली जैसे परम सुन्दर कटसरैया के फूल को लेकर श्रीकृष्ण शृंगार कर रहे हैं। राधा के मान करने पर कृष्ण किस प्रकार दास बनकर प्रणय-निवेदन कर रहे हैं:—

अधरसुधारसमुपनये भामिनि जीवय मृतमिव दासम्।
त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम्॥

हे कोपने प्रिये, अधरामृत के आनन्द का दान करो और मृतक जैसे इस सेवक को जीवित करो। मेरा मन तुम्हारे भीतर छिपा हुआ है और आनन्द-शून्य शरीर विरहानल से जल रहा है। राधा के वियोग मे कामदेव की उग्रता से क्षुब्ध होकर कृष्ण उनसे कह रहे है:—

हृदि विसलताहारो नायं भुजङ्गम नायकः
कुवलय-दल-श्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः।
मलयजरजोनेदं भस्म प्रियारहिते मयि,
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि॥

हे अनङ्ग, शङ्कर जी की भ्रान्ति से क्रोध से क्या दौड रहे हो? मेरे हृदय पर यह मृणाल लता का हार है, सर्पराज नही है। गले मे कमल की पखडियो की पक्ति है, विष की द्युति नही है। मस्तक पर चन्दन की धूलि है, यह भस्म नही है। राधा की प्रसन्न, दृष्टि के दर्शन से कृष्ण का जीवन-समुद्र किस प्रकार तरंगित हो रहा है :—

राधावदन-विलोकन-विकसित-विविध-विकार-विभङ्गम्।
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम्॥

राधा की मुखछवि के दर्शन से कृष्ण मे खिले हुए अनेक प्रकार के भावोल्लास की स्फूर्ति इस प्रकार दिखाई दे रही है, जैसे चन्द्रमण्डल के दर्शन से चञ्चल ऊँची तरङ्गो वाले समुद्र की शोभा दर्शनीय होती है। नारी और पुरुष के इस

रहस्यमय आकर्षण की मधुर झाँकी देने के बाद कवि ने युग की वैष्णव-भावना के विश्वास को चुनौती देते हुए लिखा है :—

यद्गन्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानञ्च यद्वैष्णवम् ।
यच्छृङ्गारविवेकतत्वरचना काव्येषु लीलायितम् ।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मन.
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोबिन्दतः ॥

'परिशोधयन्तु' शब्द द्वारा कवि ने काव्य-जगत् मे लीलामयी अभिव्यक्ति पानेवाली श्रृङ्गार-बोध की रहस्यमयी सृष्टि की ओर सुधीजनो का ध्यान आकृष्ट किया है । "कृष्णैकतानात्मन" (कृष्ण मे आत्मा को सर्वथा तन्मय किए हुए) तथा "पण्डित (सदसद्-विवेक-मर्मज्ञ-स्रष्टा) के द्वारा कवि ने स्वानुभूत-आत्म विश्वास के रूप मे आत्मनिर्णय के तथ्य को स्पष्ट किया है । 'गन्धर्व-कलासु' शब्द भी साभिप्राय है । वेदो मे गन्धर्व दो प्रकार के माने गए हैं—एक द्युस्थान के, दूसरे अन्तरिक्ष स्थान के । द्युस्थान के गन्धर्व से सूर्य की रश्मि, तेज, प्रकाश इत्यादि और मध्यस्थान के गन्धर्व से मेघ, चन्द्रमा, विद्युत आदि निरुक्त शास्त्र के आधार पर लिए जाते हैं, क्योकि 'गा' या 'गो' को धारण करने वाला गन्धर्व कहा जाता है और गा या गो से पृथ्वी, वाणी, किरण इत्यादि का ग्रहण होता है । इसलिये गन्धर्व कला से ज्योतिर्मयी कला और सगीतकला की मर्मस्पर्शिता का जहाँ परिचय मिल रहा है, वही 'वैष्णवम् अनुध्यानम्' से वैष्णव विश्वासानुकूल चिन्तन का भी सकेत मिल रहा है । इस प्रकार विष्णु के आकर्षणमय उन्मुक्त उल्लास का प्रत्यक्ष जहाँ कवि ने मानवचेतन के माध्यम से माधव, केशव, मुरारि, और कृष्ण इत्यादि शब्दो द्वारा कराया है, वही ऐश्वर्यमयी महाशक्ति की उन्मुक्त लीला का प्रत्यक्ष राधा शब्द के द्वारा कराया है ।

कवि विद्यापति ने राधा-माधव के इस रागानुग प्रेम की रहस्यच्छटा का परिदर्शन यौवन के मानवीय-आकर्षण द्वारा कराया है । वैष्णव-विश्वास की शक्ति-समन्वित उन्मुक्त तथा निःसंग ज्योति से अनन्यता का प्रत्यक्ष कराये विना उसकी आहार-बद्ध पंगुता का निस्सारण उस समय सर्वथा असभव था, इसलिये विहार-धर्म की प्रवर्तनात्मक आदर्श परिणति के लिए मानवीय रूप के यथार्थ का चित्रण इन युगस्रष्टा के लिये अनिवार्य हो गया । नाना-प्रकार की प्रस्तर-मूर्तियो मे उलझे हुए युग के आध्यात्मिक विश्वास को मानवीय चेतन से अनुप्राणित करने के लिए विरूप यथार्थ को इन दोनो ही महाकवियो ने नव-निर्माण की पृष्ठभूमि बनाया है । सहस्राब्दियो की निरुद्ध- अतृप्ति के उन्माद तथा विजेता मुसलमानो

की निर्बाध-यौन-उच्छृङ्खलता ने नारी-शक्ति के प्रति स्व-पर के जिस अनास्था-मूलक घृणाभाव की आत्मघातक प्रतिक्रिया को उग्रतर बना दिया था, उस पर मधुर मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा के बिना लोक-जीवन मे सप्राण प्रवर्तनात्मक ज्योति का प्रत्यक्ष बिलकुल असभव था। प्रस्तर मूर्त्तियो से भी दिव्य-ज्योति की स्मृति जगाने वाला मानव ही था। इसलिये मानव और मानवी के सौन्दर्य-बोध द्वारा जड-मोह के आवरण को विच्छिन्न करने के लिए कला की जिस अप्रतिम माधुरी का प्रत्यक्ष इन महान कलाकारो ने कराया है, वह युग की विभूति होते हुए भी युग युग के मानव समाज के लिए शक्ति-सौन्दर्य की अक्षय स्मृति है। वैदिक ऋषियो ने व्रात्यदेव की विजयिनी अनुपम ज्योति का प्रत्यक्ष कराते हुए भी उनकी चारो दिशाओ मे पुश्चली-प्रिया का स्पष्ट सकेत दिया है, उषा और सूर्य के जारभाव के प्रेम का सकेत अनेक मंत्रो द्वारा मिलता है। इसलिये परकीयभाव के अवैध-प्रेमाकर्षण की दिव्य-परिणति का जो प्रत्यक्ष इन महाकवियो ने दिया है, वह आर्य-चिन्ता-धारा की निर्बन्ध-आदर्श-परम्परा के विरुद्ध नही—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यततिसिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

हजारो मनुष्य मे कोई मनुष्य सिद्धि के लिये प्रयत्न करता है और उन अनेक प्रयत्नो के करने वालों मे कोई ही मुझे पूर्णतया जानता है। "गीता" मे भगवान कृष्ण की यह वाणी है। इसी सत्य को कविविद्यापति ने कितना मर्म-स्पर्शी बनाकर अभिव्यक्त किया हैः—

लाख लाख जुग हिय हिय राखल,
तइयो हिय जुड़ल न गेल।
विद्यापति कह प्रान जुड़ाएत,
लाख न मिलल एक।

इस लक्ष्य मे भी दुर्लभ जीवन-सौन्दर्य की आराध्य-परिणति का प्रत्यक्ष श्रीविद्यापति ने कराया है। इनके राधा-कृष्ण रूप-जगत् के माधुर्य विकास की नैसर्गिक चारुता का यदि अनुपम आकर्षण हैं, तो प्रेम की निस्संग तन्मयता के उन्मुक्त संकल्प की दिव्य ज्योति भी हैं। इसीलिए विद्यापति की संगीतमयी कला की यथार्थ पृष्ठभूमि और चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति सस्कृत भाषाप्रेमी विद्वज्जनो के लिए भी अलभ्य लाभ है। पीयूषवर्षी जयदेव की कलात्मक चमत्कृति विद्यापति की कला मे सर्वथा अनुपम आकर्षण प्राप्त कर निखर गई है।

कलात्मक तथा लोकगीत, दोनों में अभिव्यजना की स्वच्छन्दता, अपूर्वता

और प्रवाह-बद्धता की दृष्टि से दो रूप दिखाई देता है—मुक्तक और प्रबन्ध। मुक्तक गीतो मे अनुभूति की तीव्रता, भावना की सकुलता और दृश्य विधायिनी कल्पना की अनुत्तमता के साथ स्वर-तरंगे झंकृत होती हैं। व्यक्ति की अन्तश्चेतना समष्टि-प्राण-प्रकृति की एकरसता के उल्लास और वेदना की तन्मयता मे द्रवित हो जाती है। मुक्तक गीत-काव्य मे मधुर, ओजस्वी तथा गभीर तीन प्रकार के भावो के तीव्र आवेग की अभिव्यजना होती हैं। प्रबन्ध-गीत मे गायक-कल्पना की महृदयता सृष्टि-वैचित्र्य की अनन्तरूपता से समन्वित होती हैं। कथा के साथ कथोपकथन की भी परम्परा चलती है। अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता के अनुरूप जैसी परिस्थितियाँ होती हैं, स्वरधारा वैसी प्रभविष्णुता प्राप्त कर लेती है। रसात्मक-प्रसगो की सप्राण प्रभविष्णुता एकरसता की समन्विति द्वारा वस्तुपरिचयात्मक स्थलो मे भी सरसता की प्रतीति करा देती है। ग्रामीण-जन जब तुलसीदास के रामायण के पुष्प-वाटिका-वर्णन को गाते हैं, उस समय उनकी तन्मयता दर्शनीय होती है। गोस्वामीजी की रचनाओ की सगीतमयता ही उसके प्रति जन-रुचि के सबल आकर्षण का मूल-हेतु है। सगीतोल्लास के नूतनता प्रदर्शन की रुचि ने ही गीत-प्रबन्धो मे छन्दो की विविधता के सकल्प को अनुप्राणित किया है। हिन्दी के प्रारंभिक युग मे, 'बीसलदेव रासो' की रचना गीत शैली मे ही हुई है।

साधारण-जनता मे वीर-भावना का उल्लास भरने के कारण जगनिक की स्वर-साधना का समयानुरूप परिवर्तित रूप, उत्तर भारत की ग्रामीण जनता मे बरसात के दिनो मे आल्हा-गीतो की गर्जना मे सुनाई देता है। सूरदासजी के उमडते हुये संगीत-रत्नाकर की मनोहारिणी-तरंगे किसका हृदय मुग्ध नही कर लेती हैं। भक्तवर नाभादासजी ने सूरदास जी की सगीतमाधुरी की सस्तुति करते हुये कहा है:—

"सूर कवित्त सुनि कौन जो, नहिं यो सिर चालन करै।"

सहृदयो मे तो यह श्रुति व्यापक-रूप से श्रुतिगोचर होती है:—

"किधौ सूर को सर लग्यो, किधौ सूर को पोर।
किधौ सूर को पद लग्यो, रहि रहि धुनत शरीर।"

संगीत की सहृदयता का वह युग था, जब संगीत की स्वर-साधना से हिन्दू और मुसलमान दोनो हृदय एक ही आनन्द की मस्ती मे मग्न हो रहे थे। सूरदास जी की गोपियाँ कृष्ण की मुरली को निरंकुशता की सहृदयता-समाधि की मूल-शक्ति समझ कर कोसती हुई कहती हैं:—

अधर सुधा पी कुल व्रत टारी, नहीं सिखा नहि ताग।
तदपि 'सूर' या नन्द सुअन को, या ही सो अनुराग।

कहा जाता है कि तानसेन सगीत की शिक्षा पूरी करने के लिये ब्राह्मण से मुसलमान बन गये। आधुनिक-युग मे भी गायक कवियो ने वैज्ञानिक-युग की कठोर प्रतिक्रियाओ से उद्विग्न मानव के लिए सगीत की स्वर-लहरी से ही समष्टि-जीवन-विकास के आलोक-पथ को प्रशस्त बनाया है। प्रकृति की यही सहज साधना है। इसी वैशिष्ट्य के सत्प्रभाव से अनुप्राणित होकर रवीन्द्रनाथ-जी की "गीताञ्जलि" को विश्व मनीषियो ने सम्मानित किया है। हमारे ऐतिहासिक-गीत-प्रवाह पर मुस्लिम संस्कारो का अधिक प्रभाव पडा। इसका कारण उस समय के इतिहास की निराशावादिता, विलासप्रमुति, अतिशय-सहिष्णुता, घृणामूलक भेदीकरण की निस्सार-दाम्भिकता ही थी। भारतीय गीत-परम्परा मे गीति-कला की समष्टिव्यापिनी आनन्दमयी स्वरधारा आदिकाल से जो बहती आई थो, वह मुस्लिम शासन के आतक की बेहोशी मे अधिक अंशो मे उपेक्षित हो गई। आधुनिक युग मे विश्वकवि, महागायक प० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी ने भारतीय-गीत-शास्त्र की परम्परा के प्रतिनिधित्व तथा प्रवर्त्तन का महिमा-मय व्रत विश्वव्यापिनी सहृदयता के साथ अनवरत स्वरानुसन्धान की समाधि मे किया है। 'अणिमा' के एक गीत मे निराला जी ने लिखा है "वर्षाकाल मे जब बादल नये-नये रूप धारण कर आकाश को घेर लेते है, वन मे मयूर मधुर स्वर भरते हुए नृत्य करने लगते हैं। इसी प्रकार वसंत मे जब नई-नई कलियॉ प्रतिक्षण खिल कर विश्वमोहिनी स्पर्धा जगाती है। उसी प्रकार उन क्षणो मे मेरी वीणा के तार प्रतिपल चढे हुए संगीत का अप्रतिम-स्वर-वैभव भरते रहे हैं। तुम्हे सुनाने के लिए मैने थोडे गाने नही गाये है :—

बादल छाये,
ए मेरे सपने उमड़े मडलाये।
गरजे सावन के घन, घिर-घिर,
नाचे मोर वनो मे तिर-तिर,
चढ़े हमारी वीणा के भी तार,
तुम्हें सुनाने को मैने-नही कही कम गाने गाये।

भारतीय गीतशैली के साथ अन्ताराष्ट्रिय स्वर-प्रतियोगिता के प्रतिनिधित्व मे भी निराला जी आगे है। उनका मुक्त-छन्द अपनी गेयशीलता से ही युग की प्रतिनिधि सहृदयता की अभिव्यजन-शैली बन गया। मुसलमान कवियो

के गजल, लावनी आदि की स्वर-धारा का भी निराला जी ने "नये पत्ते" "बेला" "अणिमा" नामक रचनाओं के द्वारा विश्वमोहन चमत्कार दिखाया है। प्राचीन-गीतों की भावना नये स्वर-वैचित्र्य के साथ आधुनिक युग में श्रुति-गोचर हुई है।

विश्व की ही वाणी प्राचीन, आज रानी बन गई नवीन।
"निराला" गीतिका।

आधुनिक गीत-स्रष्टाओं के लिए देश-काल की सीमायें समाप्त हो गई हैं। इसलिये एक देश का संगीत दूसरे देश के संगीत से अछूता नहीं रह सकता है। सहृदयता की परीक्षा इसमें है कि उन्मुक्त-सहृदयता के साथ सबको गले लगाकर अपने पथ-प्रदर्शन की अप्रतिम विजयशीलता का प्रतीक तथा अपने परम्परा के विराट वैचित्र्य से समन्वित होकर लोक-चक्षु के समक्ष सब लोग दिखाई दें। निराला जी ने इस दृष्टि से आधुनिक युग के समन्वय-स्वर का अद्भुत अपूर्व-विराट-वैचित्र्य दिखाया है। आधुनिक गीतों में कल्पना की अपूर्व दृश्यविधायकता को अनेक आलोचक वैदेशिक प्राण से अनुप्राणित होने के कारण प्रगीतिप्रधान मानते हैं, पर निराला जी में गीतकार तथा प्रगीतिकार दोनों की पूर्णता है। प्रगीतियों में उन्मुक्त कल्पना की प्रधानता तथा नूतन स्वरानुसन्धान की प्रयत्नशीलता स्पष्ट मिलती है।

निष्कर्ष:—हिन्दी गीत-काव्य के आदिगुरु महागायक विद्यापति ही दिखाई देते हैं। इन्होंने अपनी स्वर-साधना के लिए राधा-माधव विलास का विश्वमनमोहक प्रसंग स्वीकार किया। उसीका सूर-सागर के साथ रीतिकाल के गायक कवियों की वीणा-वाणी में भी हम सुनते हैं। ब्रज-भाषा के आदि से लेकर अन्त तक गीत का आलम्बन राधा-माधव का स्वच्छन्द विलास ही है। संस्कृत, अवहट्ट तथा मैथिली इन तीन भाषाओं में विद्यापति की स्वर-झंकृति सुलभ होती है। सर्वत्र उनकी जीवन-दृष्टि और स्वर-समाधि अपूर्व, अनुपम तथा समन्वयपूर्ण है। इसलिये हिन्दी-काव्य कानन के आदि-गायक कवि होते हुए भी विद्यापति अनुपम गीत-कार के रूप में प्राणवान् हैं।

प्रकृति-दर्शन

भारतीय चिन्तन का स्रोत मानव और प्रकृति की अभिन्न आत्मीयता की प्रतीति का व्यंजक अपने परिचय के आदिकाल से ही है। तपोवनो की साधना से आविर्भूत भारत-भारती वनस्थली की सुषमा को उपेक्षित कैसे कर सकती है? वैदिक-साहित्य मे उषा, संध्या, रात्रि, नदी, वनस्पति, बादल, मातृभूमि आदि का मानव-कल्पना की आत्मीयता के साथ मंजुल दर्शन मिलता है। आदिकाव्य मे प्रकृति की सुछवि का अनेक रूपो मे आलम्बन के रूप मे दर्शन मिलता है। सीता के विरह से सतप्त राम वर्षा और शरद के मोहक दृश्यो से उद्विग्न दिखाई देते है। संयोग सुख की अनुरूपता मे जहाँ प्रकृति आनन्दमयी होती है, वही विप्रलम्भ के समय मे दुख की नितान्त-वृद्धि का कारण बनी दिखाई देती है।

कविवर कालिदास ने प्रकृति को चेतनरूप मे देखा है। उनके 'मेघदूत' की कल्पना प्रिया-विधुर यक्ष के मानसिक संताप, उल्लास तथा सौहार्द के साथ मेघ के द्वारा भेजे गए संदेश की अभिव्यंजना ही है। आश्रम से बिदा होती हुई शकुन्तला लताओ और हरिणियो से भी हृदय खोलकर मिलती है। 'कुमारसंभव' मे वर्षाकाल मे पार्वती जी की तपस्या की साक्षी बिजली रूपी नेत्रो से देखती हुई रात्रि बनती है। "रघुवश" मे राम लका से लौटते समय अपने जीवन के वियोग-काल का परिचय सीता से देते हुए कहते हैं—"पुष्पगुच्छो के भार से झुकी हुई इस कोमलागी अशोकलता का तुम्हारी प्राप्ति की बुद्धि से आलिगन करते समय रोते हुए लक्ष्मण ने मुझे रोका।" "ऋतु संहार" मे कालिदास ने षड्-ऋतुओ का प्रस्तुत एवम् अप्रस्तुत दोनो रूपो मे प्रत्यक्ष कराया है।

कालिदास के बाद से प्रायः सभी कवियो ने ऋतुओ के सौन्दर्यमय प्रभाव का प्रत्यक्ष आलंबन और उद्दीपन दोनो रूपो मे चित्रित किया है। 'शिशुपाल वध', 'किरातार्जुनीय' आदि प्रबन्धकाव्यो में ऋतुओ का मनोहरचित्र अकित मिलता है।

संस्कृत के उत्तरकालिक काव्य-रचनाओ का प्रभाव जन-भाषा की रचनाओ पर पड़ा। सदेशराशक, प्राकृतपैगलम्, पृथ्वीराजरासो, नेमिनाथ-चौपई आदि रचनाओ मे ऋतुओ का उद्दीपनमय दृश्य विरह की मर्मस्पर्शिता का अनुभव कराने के लिए ही दर्शित है। "षड्-ऋतु" और "बारहमासा" संबंधी रचनाओ की परम्परा हिन्दी-भाषा की विभिन्न-बोलियो के विकसित

रूपो मे सुस्पष्ट मिलती है। नेमिनाथ और नरहरि भट्ट ने विरह-व्यजक बारह-मासे का वर्णन किया है।

मानव-प्रकृति के साथ सामान्यप्रकृति की एकरूपता तथा एकरसता की प्रतीति के लिए कविवर विद्यापति ने काव्याभिव्यजन-परम्परा की अनुरूपता रखते हुए भी अपनी मौलिक प्रतिभा की चमत्कृति का पूर्णदर्शन कराया है। नारी की रूप-माधुरी की अपूर्वता का आकर्षण भरने के लिए आलकारिक रूप मे प्रकृति के अनेक रूपात्मक-वैचित्र्य का महाकवि ने मोहक दर्शन कराया है। नारी के यौवन मे प्रकृति के अनुपम सन्निकर्ष को देखकर सहृदय कवि मुग्ध हो जाता है :—

हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम,
पिक बूझल अनुमानी।
नयन वदन परिमल गति तन रुचि,
अओ अति सुललित वानी।

"हरिण, चन्द्रमा, कमल, हथिनी, सोना और कोकिल इन छहो का आँख, मुख, शरीर की सुगन्धि, मस्तानी चाल, देह की शोभा और मीठी बोली मे अनुमान किया जा सकता है।" नायिका ने दोनो हाथो से पयोधरो को छिपा लिया है। कवि की कल्पना सभावना के आकाश मे तुरत उसकी झाँकी देख लेती है :—

हेम कमल जनि अरुनित चंचल,
मिहिर तरे निन्द गेला।

प्रतीत होता है, लालिमा से पूर्ण सुवर्ण का चचल कमल सूर्य के नीचे आ जाने से नीद मे पड़ गया है। राधा के प्रति कृष्ण की अनन्यासक्ति का परिचय देती हुई दूती राधा से कहती है :—

मालति, सफल जीवन तोर।
तोर विरहे भुअन भम्मए,
भेल मधुकर भोर।
जातकि, केतिक कत न अछए
सबहिं रस समान।
सपनहू नहि ताहि निहारए।
मधू कि करत पान।

हे मालति! (राधे!) तुम्हारा जीवन सफल है, तुम्हारे विरह मे भ्रमर

(कृष्ण) समस्त संसार मे भटकता फिरता है। पारिजात और केतकी जैसे पुष्प भी कितने ही है और सबके रस भी बराबर ही है, फिर भी मधुपान कौन करता है? स्वप्न मे भी भौरा उन्हे नही देखता।

विलास के उन्मुक्त-पथ मे प्रकृति बाधक के रूप मे भी दिखाई देती है, पर प्रेम की सार्थकता बाधाओ पर विजय प्राप्त करने मे ही है। सत्य-सरक्षण की लज्जा अपार साहस भर देती है। नायिका अपनी सखी से कहती है :—

रयनि काजर बम भीम भुजगम
कुलिस परए दुरबार।
गरज तरज मन रोस बरिस घन
सँसअ पड़ अभिसार।
सजनी, बचन छड़इत मोहि लाज।
होएत से होओ बरु सब हम अगि करु
साहस मन देल आज।
अपन अहित लेख कहइत परतेख
हृदय न पारिअ ओर।
चाँद हरिन बह राहु कबल सह
प्रेम पराभव थोर।

रात्रि अन्धकार उगल रही है, भयानक सर्प की तरह कठोर वज्रपात हो रहा है, बादल गर्जन-तर्जन कर अपने मन मे क्रोध उत्पन्न कर मूसलाधार वृष्टि कर रहा है, जिससे अभिसार करने मे संशय उत्पन्न हो गया है। हे सखि, वचन-भग करने मे मुझे लज्जा आती है। जो कुछ होना होगा, उसे मै स्वीकार करूँगी, क्योकि आज मेरे मन मे साहस का पूर्ण संचार हो गया है। अपना अपकार प्रत्यक्ष रूप से कहना हृदय अस्वीकार करता है। राहु से ग्रस्त हो जाने पर भी चन्द्रमा हरिण को धारण किये रहता है। इसलिए ज्ञात होता है, किसी विघ्न-बाधा से प्रेम का नाश होता ही नही है। प्रकृति को प्रेम की कठोर परीक्षा की कसौटी के रूप मे कवि ने परिदर्शित किया है:—

तपन क ताप तपत भेल महि-तल
तातल बालू दहन समान।
चढ़ल मनोरथ भामिनी चलु पथ
ताप तपत नहि जान।
प्रेम क गति दुरबार।

सूर्य की उत्कट गर्मी से सारी पृथ्वी तप्त हो गयी, बालू अग्नि के समान जलने लगा, किन्तु आकांक्षा-रूपी रथ पर चढी हुई नायिका को गर्मी तनिक भी नही प्रतीत होती है। प्रेम की स्थिति अत्यन्त कठिन होती है। मिलन की निरवधिक विलास प्रसुप्ति का प्रकृति के द्वारा नियन्त्रण भी होता है। प्रातःकाल जब सारी प्रकृति प्रबुद्ध क्रियाशीलता का परिचय देने के लिए कर्म-रत हो जाती है, उस समय पति की विलासोन्मुखता का अवरोध करती हुई नायिका इस प्रकार प्रबुद्ध करती है:—

हे हरि, हेरि सुनिए स्रवन भरि
अब न विलास क बेरा।
गगन नखत छल से अबेकत भेल
कोकिल करइछ फेरा।
चकवा, मोर सोर कए चुप भेल
उठिए मलिन भेल चन्दा।
नगर क धेनु डगर कए सचर
कुमुदिनि बस मकरन्दा।
मुख केर पान सेहो रे मलिन भेल
अवसर भल नहि मन्दा।
विद्यापति भन ऐहो न निक थिक
जग भरि करइछ निदा।

हे मेरे प्राणो को हर लेने वाले, मेरे सर्वस्व, भलीभाँति कान खोल कर सुन लीजिए, अब रति-केलि का समय नही है। आकाश मे जो तारे थे, वे भी छिप गए, कोकिल फेरा कर अपनी ध्वनि सुना रही है। कोलाहल करके चक्रवाक और मोर भी शान्त हो गए और चन्द्रमा भी ऊपर उठ कर मलिन पड गया। गाँव की गाये भी अपनी राह जा रही हैं। कुमुदिनियो ने मकरन्द को अपने वश मे कर लिया। मुँह का पान भी रसहीन हो गया। यह अवसर काम-क्रीडा के लिए अच्छा नही, बुरा कहा जाएगा। कवि विद्यापति कहते हैं कि यह उचित नही है। इससे सारा ससार निन्दा ही करता है। इस प्रकार कई गीतो मे प्रकृति के जागरण का दृश्य दिखाकर, प्रेमिका विलास-क्रीड़ा से नायक को सावधान करती दिखाई देती है। राधा ने एक कटाक्ष मे ही कृष्ण को खरीद लिया है। प्रकृति गवाही देने वाली यहाँ दिखाई देती है:—

बड़ कौसलि तुअ राधे।
किनल कन्हाई लोचन आधे॥
ऋतुपति हटबए नहि परमादी।
मनमथ मधथ उचित मूलबादी॥
द्विज पिक लेखक मसि मकरंदा।
कॉप भमर-पद साखी चन्दा॥
नहि रति रंग लिखापन माने।

हे राधे! तुम बड़ी ही चतुर हो, कृष्ण को एक कटाक्ष मात्र मे तूने खरीद लिया। बुद्धिमान वसत व्यापारी और कामदेव दलाल बनकर उचित मूल्य ही कहता है। कोयल रूपी ब्राह्मण लेखक है, पराग की स्याही है, भवर का पैर कमल है और चन्द्रमा गवाह है। काम क्रीड़ा की बही बनी है और उसमे तुम्हारा मान वर्णन लिखा गया है।

मान की दशा मे अपने मनस्ताप का परिचय प्रकृति के माध्यम से देती हुई प्रेमिका अपनी सखी से कहती है—

चानन भरम सेवलि हम सजनी
पूरत सब मनकाम।
कंटक दरस परस भेल सजनी
सीमर भेल परिनाम॥

हे सखि! चन्दन के भ्रम मे वृक्ष की इसलिए सेवा की, कि मेरी सभी मनो-कामनाये पूर्ण होगी, किन्तु उसमे केवल कॉटो का ही दर्शन एवम् स्पर्श हुआ। परिणाम मे सेमल का वृक्ष ही आया। कृष्ण को अपनी ओर से उदास देख कर राधा सोचती हैं—

की हम सॉझक एकसरि तारा।
भादव चौठकि ससी।
इथि दुहु माझ कओन मोर आनन
जे पहु हेरसि न हॅसी॥

क्या मै सन्ध्या काल की अकेली तारा हूँ। या भादो शुक्ल चतुर्थी का चन्द्रमा! मेरा मुख इन दोनों मे क्या है? जो प्रिय उसे प्रसन्न होकर नही देखते। प्रेम मे दूती का अवरोध नही रहता है:—

गगन गरज मेघ शिखर मयूर।
कत जन जानसि नेह कत दूर॥

की हम साँझ क एकसरि तारा।
भादव चौथ ससी॥

इस प्रकार कवि की विलासमयी कल्पना प्रकृति से अभिन्नता रखती दिखाई देती है। विपरीत रति मे प्रलयकालिक प्रकृति का कवि ने दृश्यानुभव कराते हुए लिखा है:—

अम्बर खसल धराधर उलटल
धरनी डगमग डोले।
खरतर वेग समीरन संचरु
चंचरिगन करु रोले।
प्रनय–पयोधि जले तन झाँपल
इ नहि जुग अवसान।

रति के झोके मे शरीर पर से वस्त्र गिर पड़ा, स्तन उलट गए एवं नितम्ब डगमग डोलने लगे। अत्यन्त वेग से निःस्वास चलने लगा तथा कंकण-किंकिणी की आवाज होने लगी। प्रेमरूपी समुद्र के जल मे सारा शरीर मग्न हो गया। किन्तु इसमे युगान्त नही है। इस प्रकार प्रकृति की कल्पनामयी सृष्टि कवि की रसव्यजक अनुभूति द्वारा नितान्त मनोहारिणी है।

सामान्यतया काव्यो मे प्रकृति चित्रण दो रूपो मे मिलता है। प्रथम आलम्बन या वर्ण्य विषय के रूप मे, दूसरे उद्दीपन रूप मे। कविवर विद्यापति ने दोनो हीं रूपो मे प्रकृति-दर्शन के चित्र अकित किए हैं। कवि की चित्रमयी सजीव-सृष्टि अचेतन प्रकृति पर मानव की मधुर चेतना के आरोप द्वारा हुई है। यौवन वसन्त का शिशु-रूप मातृ-प्रकृति को किस प्रकार व्यथित करता है और सृष्टि की सजीवनी-शक्ति आत्मरस से उसका किस प्रकार सवर्द्धन करती है। इसकी सजीव झाँकी के साथ विद्यापति ने वसन्तागमन का चित्र खीचा है। शिशु वसन्त के जन्म का दृश्य अपूर्व है। "माघ मास की वसन्त पंचमी को मातृ-शक्ति नव मास पाँच दिन व्यतीत होने पर पूर्णगर्भा हो गयी। गम्भीर वेदना से उसे अत्यन्त दुःख भोगना पड़ा। इसलिये उसे सहानुभूति के रस से तृप्त करने के लिए हरी-भरी वनस्पतियाँ उपमाता बन गईं। शुक्ल पक्ष के अरुणोदय की शुभ-बेला मे सोलह अगो तथा बत्तीस लक्षणो से पूर्ण ऋतुराज ने जन्म लिया। शिशु बसन्त के जन्म से आह्लादित हो युवतियाँ नृत्य करने लगी। मंगल की मंजुल ध्वनि चारो ओर गूँजने लगी। मानिनी सुन्दरियो का मान दूर हो गया। शीतल मंद वायु से

शिशु की रक्षा आवश्यक समझ कर नये बादल चारो ओर छा गए। माधवी लता के फूल मुक्ता-तुल्य हो गये, उनसे उत्सव द्वार की बन्दनवार बनाई गई। पीअर और पॉडर के फूल महुअर का स्वर भरने लगे।"

कविवर विद्यापति ने प्रकृति-सौन्दर्य चित्रण मे मानवीय व्यापारो का सजीव दृश्य गोचर कराते हुए अपना भाव इस प्रकार व्यक्त किया है—

माघ मास सिरि पंचमी गॅजाइलि,
नवम मास पंचम हरुआई।
अति घन पीड़ा दुख बड़ पाओल,
बनसपति भेल धाई हे।

+ + + +

सोरह सम्पुन बतिस लखन सह,
जनम लेल ऋतुराई हे॥

प्रकृति की रूपकात्मक सौन्दर्य-योजना ने कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। शिशु-वसन्त के जन्मोत्सव से लेकर उसके यौवन का कितना नयनाभिराम चित्र कवि ने प्रस्तुत पद गीत मे सॅजोया है :—

नव नव पल्लव सेज ओछाअल,
सिर देल कदम्ब क माला।
बैसलि भमरी हरउद गाबए,
चक्का चन्द निहारा।
कनअ केसुअ सुति-पत्र लिखिए हलु,
रासि नछत कए लोला।
कोकिल गनित-गुनित भल जानए,
रितु वसन्त नाम थोला।

शिशु-जीवन के छाया-दृश्य के साथ वसन्त के आविर्भाव की बडी मनोहारिणी व्यजना इस गीत मे हुई है। अब राजकीय वैभव के साथ उसका पावन आकर्षक दृश्य दर्शनीय है। वसन्त का राजरूप चित्र कविवर जयदेव तथा विद्यापति दोनो का देखा जा सकता है।

मदन महीपति कनक दण्डरुचि केसर कुसुम विकासे।
मिलित शिलीमुख पाटल पटल कृतस्मर तूण विलासे।
(गीत-गोविन्द)

आएल रितुपति राज वसन्त,
धाओल अलिकुल माधवि पंथ।
दिनकर किरन भेल पोगंड,
केसर कुसुम धयेल हेम दंड।
नृप आसन नव पीठल पात,
कांचन कुसुम छत्र धरु माथ।
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताय,
समुखहि कोकिल पंचम गाय।

यहाँ विद्यापति की कला अधिक लोकोन्मुखी है। यौवन वसन्त के गौरवाभिनन्दन का दृश्य राज-शक्ति के गौरवाभिषेक-रूप मे इन्होने दिखाया है। यहाँ मानव की सास्कारिक चेतना जैसे व्यापक प्रकृति मे आत्म-सौन्दर्य बोध द्वारा तन्मय हो रही है। 'माधवी के झुरमुट मे ऋतुराज के सौभाग्य दर्शन के लिए भौरो का समूह दौड रहा है, सूर्य की किरणे कुछ तेज हो गयी हैं, केसर के फूल का स्वर्ण दंड सजाया गया है, नवीन पिठवन के पत्र से राजसिहासन सुसज्जित है, ऋतुराज ने चम्पा के फूल का छत्र धारण किया है, आम की मंजरियो से उसका मुकुट बनाया गया है, कोकिल पचम स्वर से उसे संगीत सुना रही है। वसन्त की राजश्री के स्वागत का यह दृश्य दिखाकर कवि ने मधुर विजय का प्रत्यक्ष इस प्रकार कराया है :—

सैन साजल मधु-मखिका कूल,
सिसिरक सबहु कएल निरमूल।
उधारल सरसिज पाओल प्रान।
निज नव दल करु आसन दान।

प्रकृति के वर्ण्य-विषय की व्यापकता एव व्यामोह ने उसके उभयनिष्ठ पक्षो मे साम्य उपस्थित कर दिया है, वसन्त की विजयिनी राजश्री की भाँति उसके विवाह की झाँकी देकर कविवर-विद्यापति ने यौवन की सहज मधुर-स्मृति को सजीव मूर्तिमत्ता प्रदान की है। वैवाहिक जीवन की छाया-स्मृति का यह प्राकृतिक विभूति से समन्वित दृश्य दर्शनीय है :—

लता तरुअर मण्डप जीति,
निरमल ससधर धवलिए भीति।
पउँअनाल अइपन भल भेल,
रात परीहन पल्लव देल।

देखह माइ हे मन चित लाय,
वसन्त-विवाहा कानन थलि आय।
मधुकरि-रमनी मंगल गाव,
दुजबर कोकिल मत्र पढ़ाव।
करु मकरन्द हथोदक नीर,
विधु बरिआती धीर समीर॥

लता और वृक्षो ने मण्डप की शोभा को जीत लिया है, निर्मल चन्द्रमा ने दीवाल को उज्ज्वल कर दिया है। पद्मनाल विवाह-स्थली का सुन्दर मागलिक चित्र बन गया है, नई कोंपलो का लाल वस्त्र उसे पहनने को दिया गया है, हे सखि ! मनोयोग पूर्वक देखो, वसन्त ने वनस्थली मे आकर विवाह किया है। भ्रमरी स्वरूपा सुन्दरियाँ मंगल गान कर रही हैं, ब्राह्मण रूप कोकिल मत्रपाठ कर रहा है, संकल्पादि के लिए मकरन्द रूप जल उसने धारण किया है। इस प्रकार वसन्त की माधुर्य-व्याप्ति के साथ परिणय की मागलिक बेला की यह प्रभविष्णु व्यजना है। विवाह की मागलिक बेला का यह दूसरा दृश्य कितना मनोहर है:—

माइ हे आज दिवस पुनमन्त,
करिए चुमाओन राय वसन्त।

हे सखि, आज का दिन नितान्त पुण्यमय है। दूलह रूप वसन्त का चुम्बन करो, आदि के द्वारा कवि ने विविध वैवाहिक उपकरणो की योजना प्रकृति के माध्यम से करायी है। वणिक् राज का चित्र कविवर विद्यापति ने यौवन के चरम उच्छृङ्खल उन्माद के रूप मे चित्रित किया है। हेमचन्द्र के "राणा सव्वे वाणिआँ जैसल वड्डुउ सेठ" (सब राणा बनिया हो गए है, जिनमे जयसिह सबसे बड़े सेठ हैं) के अनुसार युग की यथार्थ-छाया स्मृति का बड़ा मनोहर वर्णन है। उदाहरण के लिए यह पद द्रष्टव्य है:—

नाचहु रे तरुनी तजहु लाज,
आएल बसन्त रितु बनिक राज।
हस्तिनि, चित्रिनि, पदुमिनि नारि
गोरी सामरी एक बूढ़ि बारि।

युवतिजन, लज्जा छोडकर नृत्य कीजिए। वाणिक्राज वसन्तऋतु आया है। हस्तिनी, चित्रिणी, पद्मिनी, गौरी, श्यामा, वृद्धा और युवती स्त्रियो ने आनन्द की एक ही मस्ती मे अनेक प्रकार से शृगार किया है। वासन्तिक जीवन के इस निसर्ग-दर्शन के साथ राधा को कृष्ण की छायात्मा का दर्शन भी

प्रकृति की गौरव माधुरी मे ही प्राप्त हुआ है। वे अपनी सखी से कह रही हैं—

ए सखि पेखल एक अपरुप
सुनइत मानवि सपन-सरूप।
कमल जुगल पर चाँद क माला
तापर उपजल तरुन तमाला॥

+ + + +

तापर चंचल खंजन जोर,
तापर साँपिनि झाँपल मोर।
ए सखि रंगिनि कहल निसान,
हेरइत पुनि मोर हरल गियान।

हे सखि, मैने एक विलक्षण रूप देखा, सुनकर तुम स्वप्न-स्वरूप ही समझोगी। दो कमल रूप चरणो पर चन्द्रमा की माला रूप नख की पंक्ति शोभा दे रही थी, उसके ऊपर कृष्ण शरीर रूपी तमाल वृक्ष उत्पन्न हुआ था, उसके चारो ओर विद्युल्लता रूप पीताम्बर लिपटा हुआ था। वह यमुना के किनारे धीरे धीरे चला जा रहा था। तमाल रूपी शरीर की शाखारूपी बाहुओ के अग्र भाग मे चन्द्रमा रूपी नख की पंक्ति सुशोभित हो रही थी। उसमे लाल आभावाली नवीन कोपलो जैसी हथेली और शोभा बढा रही थी। सुन्दर बिम्बाफल रूप दोनो अधरोष्ठ खिले हुए थे। उसके ऊपर शुक रूपी नासिका स्थिरतापूर्वक निवास कर रही थी। उसके ऊपर खंजन के जोड़े रूपी दो नेत्र चञ्चल हो रहे थे। उसके ऊर्ध्व देश मे मोर मुकुट रूपी मयूर सर्पिणी-केश को आच्छादित किए हुए था। हे अनुरागमयि सखि, यह परिचयात्मक सकेत मैने दिया है, इसे देखते ही मेरी बुद्धि का सारा अहंकार दूर हो गया, अर्थात् मै इसके अनुराग मे बेसुध हो गई।

यह कृष्ण की मोहिनी शक्ति के मधुर आकर्षण की अनुपम झाँकी है। अरूप की इस रूपात्मक चमत्कृति के साथ अन्योक्ति शैली से भी प्रकृति के द्वारा मानव चेतना का सौन्दर्य-बोध विद्यापति ने कराया है। दूती राधा के प्रति कृष्ण की अनन्यानुरक्ति का परिचय देकर उन्हे अपनी अभीष्ट-पूर्ति के लिए प्रभावित कर रही है। यह निवेदनमयी कातरता इस प्रकार श्रुतिगोचर हो रही है:—

चातक चाहि तिआसल अम्बुद,
चकोर चाहि रहु चन्दा।

तरु लतिका अवलम्बन करिए,
मझु मन लागत धन्दा ॥

भाव स्पष्ट है, कि तृषित मेघ आज पपीहे की ओर देख रहा है, चन्द्रमा चकोर को चाह रहा है, वृक्ष लता का आलम्बन कर रहा है। (इन विरोधी व्यापारों को देख कर) मेरे मन में संशय हो रहा है। तात्पर्य यह है, कि जैसी व्याकुलता आज तुममें होनी चाहिये थी, वह श्रीकृष्ण में है। इतना ही नहीं, अपनी विदग्धता से वह राधा में उनके अनुपम सौन्दर्य के उद्बोधन द्वारा निसर्ग सहृदयता भर देना चाहती है, वह राधा से कहती है—

जे फुल भमर निन्दहु सुमर,
वासि न विसरए पार।
जाहि मधुकर उड़ि उड़ि पड़,
सेहे संसार क सार।

जिस फूल को भ्रमर नींद में भी स्मरण करता है, जिसकी सुगन्ध को भूलने में वह असमर्थ है, वही पुष्प संसार का सार है—उसी का खिलना सार्थक है। इस कथन से दूती का यह आशय है, कि तुम्हें कृष्ण नींद में भी याद करते हैं, तुम्हारी स्मृति भूलने में असमर्थ हैं। इसलिए संसार में तुम्हारा ही जीवन सार्थक है। इसी तरह मधुर भाव की कल्पनात्मक व्यंजना में विद्यापति सर्वथा अनुपमेय है।

कवि ने प्रकृति के मधुर एवं उग्र दोनों ही रूपों का चित्रण बड़ी ही सहृदयता से किया है। प्रकृति के उद्दीपन-विभाव का चित्र विरह-वर्णन में दर्शनीय है, सुखात्मक भावों की व्यंजना में प्रकृति को इस कलाकर ने सदैव अपनी सहचरी के रूप में चित्रित किया है। सादृश्य योजना, रूपकात्मक वस्तु-विन्यास आदि के साथ आन्तरिक प्रकृति एवं प्रवृत्ति का पूर्ण मिलन है। अतएव यह स्पष्ट है, कि कविवर विद्यापति ने भारतीय काव्य परम्परा के साथ प्रकृति की अभिनव रूप-माधुरी का निसर्ग-दर्शन सर्वत्र कारयित्री-प्रतिभा के रूप में कराया है। कवि की कला में प्रकृति के अनेक रूपात्मक वैचित्र्य के साथ मानव-सौन्दर्य-कल्पना की झाँकी भी मिलती है।

'शृंगार और अध्यात्म'

कवि-परिचय तथा मूल्यांकन—जीवन-प्रवाह मे अस्ति-नास्ति के स्श्लेष और विश्लेष का क्रम शाश्वत् है। निरपेक्ष रूप मे किसी एक की संस्तुति साम्प्रदायिक विषमता अथवा मजहबी कट्टरता की हीनता का कारण होती है। इसीलिए भारतीय कवि-प्रतिभा दोनो की रमणीय समन्विति का प्रत्यक्ष सार्वजनीन तथा सार्वभौम दृष्टि से कराती आ रही है और श्रेय तथा प्रेय की पूर्णता ही काव्यानुभूति का सर्वस्व समझी गई है।

उपनिषद् के ऋषि ने भारतीय जीवन दृष्टि की इस समग्रता की प्रतीति कराने के लिए ही लिखा है—

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते।
ततो भूयः इव ते तमो, ये उ विद्यायां रताः॥
अन्धं तमः प्रविशन्ति ये असम्भूतिम् उपासते।
ततो भूयः इव ते तमो, ये उ सम्भूत्यां रताः॥

जो ज्ञान से भिन्न केवल कर्म की उपासना करते है, वे गहरे अन्धकार मे प्रवेश करते हैं। उससे अधिक अन्धकार मे वे प्रवेश करते हैं, जो ज्ञान मे ही डूबे रहते है। जो आत्मा से भिन्न केवल शरीर की उपासना करते हैं, वे गहरे अन्धकार मे प्रवेश करते हैं, उससे अधिक अन्धकार मे वे प्रविष्ट होते है, जो आत्मा मे ही निमग्न हैं।

जीवन-साधना की इस एकाङ्गस्पर्शिनी दृष्टि के दु:खद उन्माद को दूर करने के लिए ऋषि ने दोनो की समन्विति पर इस प्रकार अनुरोध करते हुए कहा है:—

विद्यां च अविद्यां च, यस्तद् वेद उभय सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा, विद्यया अमृतम् अश्नुते॥
सम्भूति च विनाशं च यस्तद् वेद उभय सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा, सम्भूत्या अमृतम् अश्नुते॥

जो उस ज्ञान तथा कर्म दोनो को साथ ही जानता है, वह कर्म से मृत्यु (चित्त की कलुष वृत्ति) को पार कर ज्ञान से अमृत को प्राप्त करता है। जो उस आत्मा तथा नश्वर शरीर दोनों को साथ ही जानता है, वह शरीर से रोगो को पार कर आत्मा से अमृत जीवन को प्राप्त करता है।

इस प्रकार सत्-असत् की समन्वयात्मक-प्रतीति की उपलब्धि ही भारतीय चिन्तन-दृष्टि से जीवन का चरमध्येय है। कवि-प्रतिभा वासना के असत्-प्रवाह की परिणति का प्रत्यक्ष सत्य की लोकमगलकारिणी रमणीयज्योति मे कराती है। ऐसी स्थिति मे किसी कलाकार की कला को शृंगार अथवा अध्यात्म की किसी दृष्टि-विशेष से देखने का आग्रह उसके प्रति उचित न्याय कदापि नही कहा जा सकता है। इससे कवि की सर्वाङ्ग-प्रतिभा का विश्वसनीय परिचय प्राप्त होने मे बाधा उपस्थित होती है। कविवर विद्यापति की प्रतिभा का मूल्याकन करते समय हमे उनकी लोकरंजनकारिणी शक्ति की समग्रता तथा सप्राणता पर ध्यान देना अधिक उचित है। लौकिक वासना-प्रवाह से निरपेक्ष होकर वे रचना नही कर सकते थे और कोई भी सच्चा कवि नही करता है, क्योकि लौकिक जीवन का रजन एवं परिष्कार ही कवि-प्रतिभा का अभीष्ट होता है। जहाँ तक कोई कवि निसर्ग लौकिक-वासना का प्रतिनिधित्व करता है, वहाँ तक उसकी युग-रजन-कारिणी शक्ति की प्रतीति होती है, पर कवि-प्रतिभा का लक्ष्य इतना ही नही होता, वह निसर्ग-लोकवासना की परमानन्द मे परिणति दिखाकर रसात्मकता की भी अनुभूति कराता है। रस को अमृत और विष दोनो ही कहा गया है। लोक-मगल की दृष्टि से हम देखते है, कि किसी प्रतिभाशाली कलाकार की कल्पना वासना के विष से मूर्च्छित करती है, अथवा आनन्दमयी चारुता की प्रतीति द्वारा सहृदय-मानस को उल्लसित करती है। तभी हमारी दृष्टि विवेक-संगत हो सकती है, अन्यथा किसी कवि की कल्पना को शृगारिक अथवा आध्यात्मिक कहने से उसकी कला का प्रामाणिक परिचय नही मिल पाता है। सामान्यतया कोई वासना अपने सहज रूप मे उद्दीपन बनकर रसात्मक दशा को नही प्राप्त करती है, जब कवि की सहृदयता उसमे लोकोत्तर आनन्द की प्रतीति करा देती है, तभी उसे काव्य की सार्थकता प्राप्त होती है। इस प्रकार लोक-वासना की अध्यात्म भाव मे प्रतीति ही रस तत्व का रहस्य जान पड़ती है, इसलिए लोक-वासना की प्रतीति मात्र को श्लाघ्य कवि-कर्म कदापि नही कहा जा सकता है। जिन्हे हम शृंगारिक कवियो मे स्थान देते हैं, उन सबको शृंगार रस का कवि समझना भयकर भ्रांतिमात्र है। रस तो अमृत रूप मे प्रतीति का विषय बन कर ही सार्थकता प्राप्त कर सकता है, विष विमूर्च्छा का प्रसारक भाव रस की पूर्णता का प्रत्यय कदापि नही करा सकता है। ऐसी स्थिति में कविवर विद्यापति शृगार मे ही अपनी पीयूषवर्षिणी प्रतिभा का प्रत्यक्ष नही कराते हैं; अपितु वीर, करुण आदि रसो मे भी उनकी पीयूषवर्षिणी शक्ति का सप्राण प्रत्यक्ष होता है। इस-लिए रस-व्यंजक काव्य-परम्परा मे किसी कवि को देखने के लिए उसकी अमृत-

वर्षिणी अथवा विषवर्षिणी-शक्ति का भी विवेचन परमावश्यक है। आज वह समय आ गया है, जब किसी कवि की प्रतिभा के चमत्कार को देखने के लिए उसकी भावना-मूर्ति की परिपार्श्विक-परिस्थितियो तथा सर्वाङ्ग-सान्दर्य-विभूतियो का लोक-मंगल की दृष्टि से मूल्याकन किया जाय। कविवर विद्यापति की कला जिन रसव्यञ्जक प्रतीको का प्रत्यक्ष कराती है, उससे युग-जीवन की वासना और संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। लोक-वासना की आसक्ति को लोक-मगल कारिणी अनासक्ति मे किस प्रकार इन्होने परिणति दी है, इसे इनकी रचनाओ के अन्तर्साक्ष्य द्वारा भली भाँति समझा जा सकता है।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि :—इतिहास साक्षी है कि व्यक्ति की अन्तःशुद्धि-साधना के आदर्श-प्रतिनिधि सिद्ध-योगी आदि ७ वी ८ वी शती से ही लोकप्रतिनिधित्व की ओर बढे। लोक-जीवन बहुत दिनो के वासना निरोध के विद्रोह मे निरंकुश वासना के अधकार का दास बन गया था। इसलिए इन साधको के लिए भी निरंकुश वासना की तृप्ति ही मुख्य ध्येय बन गयी थी। चाहे बौद्ध, सिद्ध, अथवा योगी हो, चाहे जैन आचार्य-सभी वासना की निरकुश अतृप्ति मे तन्मय हो रहे थे। सिद्धो की भाषा मे ऐसे उद्गार प्रकट हो रहे थे :—

एक्कण किज्जइ मंत्र ण तत।
णिअ घरणी लइ केलि करंत।
णिअ घर घरिणी जाव न मज्जइ।
ताव कि पंच वर्ण विहरिज्जइ।

इन सिद्धो के निरकुश भोगोन्माद का आतक जन-जीवन मे इतना व्याप्त हो चुका था, कि घर की वृद्धाये नवयुवतियो को सावधान करती रहती थी—

मारिअ सासु नणद घरे शाली।
माअ मारिआ कण्ह भइअ कवाली॥

यहाँ प्रेमी के लिए कपाली कृष्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। मुसलमानो के आक्रमण के समय बिहार, बगाल और उडीसा का भूभाग विलासिता के चरम उन्माद से पूर्ण हो गया था। भावना की वासनामयता के आवेग मे अनेक मदिरो पर स्त्री-पुरुषो की चौरासी आसनो मे युगनद्ध नग्न मूर्तियाँ अकित की जाने लगी थी।

जैन सहृदय आचार्य कवियो की कल्पना मे भी मैथुनिक भावावेश की तरलता स्पष्ट मिलती है। आचार्य हेमचन्द के संगृहीत दोहो मे ऐसे दोहे

भी मिलते हैं, जिनमे इस तथ्य का उदाहरण देखा जा सकता है। रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग को भारतीय धर्म-परम्परा मे वर्जित माना गया है, परन्तु यहाँ रसिक का हृदय व्याकुल है। वह कहता है :—

सोयेवा पर वारिआ पुप्फवईहि समाणु।
जग्गेवा पुणु को धरइ जइ सो वेउ पमाणु।

यदि वह वेदप्रमाण है और रजस्वला स्त्रियो के साथ शयन करना उसके द्वारा वर्जित है, तो फिर उसके साथ जागने को कौन रोक सकता है ?

श्यामा नायिका के कटाक्ष का प्रहार झेलकर घायल नायक उसकी सखी से कहता है :—

जिवँ जिवँ वंकिम लोअणहुँ निरु सामलि सिक्खेइ।
तिवँ तिवँ कम्महुँ निअय सर खर-पत्थर तिक्खेइ।

ज्यो-ज्यो वह सॉवली स्त्री कटाक्षपूर्ण नेत्रो से निरुपम सौदर्य को सीखती है, त्यो त्यो कामदेव अपने बाणो को खरे पत्थर पर तीव्र करता है।

सयोग शृगार की भॉति वियोग की वेदना का बीज भी उनके दोहो मे मिलता है। प्रिय के प्रवास-दिन का हिसाब लिखते-लिखते विरहिणी नायिका के नाखून घिस गये। अपनी इस कारुणिक दशा का परिचय देती हुई वह सखी अथवा दूती से कह रही है :—

जे मइ दिण्णा दिअहड़ा दइए पवसन्तेण।
ताण गणन्तिये अगुलिउ जज्जरिआउ नहेण।

प्रियतम ने प्रवास पर जाते हुएँ जो दिन मुझे दिये थे, उन्हे गिनती हुई अगुलियॉ जर्जरित हो गई।

मनुष्य की वासना की उद्दीपनता की दृष्टि से ही प्रकृति का चित्राङ्कन हुआ है। उदाहरण के लिए सोमप्रभाचार्य के वसंत का दृश्य दर्शनीय है :—

"जहि रत्त महहि कुसुमिअ पलास
न फुट्टए पहिवगण हियय मास।
सहयारिहि रेहहि मंजरीओ
नं मयण जलण जालावलीयो।

जहाँ रक्त कुसुमित पलाश शोभित हो रहे हैं, मानो पथिकगण के हृदय के मास फूटे हैं। आमो मे मंजरियॉ विराजती हैं, मानों मदनरूपी अग्नि की ज्वालावलियॉ हो।

राधा-कृष्ण के विनोदमय जीवन का भी परिचय मिलता है :—

> हरि नच्चाविउ पगणइ विम्हइ पाडिउलोउ ।
> एम्बहि राह पओहरहं ज भावइ त होउ ।

हरि को प्रागण मे नचाने तथा लोगो को आश्चर्य से चकित कर देने वाले राधा के पयोधरो को जो उचित जान पड़े, वही हो ।

'प्राकृत-पैंगलम्' चौदहवी शती से पूर्व की रचना है, जिसमे राधाकृष्ण के प्रेमविनोद के साथ कृष्ण के ईश्वरत्त्व की भी व्यजना हुई है:—

> जिणि कस विणासिअ कित्ति पयासिअ,
> मुट्ठि अरिट्ठ विणास करे गिरि हत्थ धरे ।
> जमलज्जुण भजिय पअ भर गजिय,
> कालिय कुल ससार करे जस भुवण भरे ।
> चाणूर विहंडिअ, णिय कुल मंडिअ,
> राहा मुह महु पान करे जिमि भ्रमर वरे ।
> सो तुम्ह नरायण विप्प परायण,
> चित्तह चितिय देउ वरा भयभीत हरा । ३२४।२०,

युग की इस सास्कृतिक-चेतना-धारा का संगीतमयी मनोहारिणी अकृति 'गीतगोविन्द' मे हुई है । याद हरि के स्मरण से मन हरा-भरा है, यदि विलास की कला के प्रति उत्सुकता है, तो मधुर कोमल कान्तपदावली जयदेव की वाणी सुनिए—

> 'यदि हरिस्मरणे सरस मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।
> मधुर-कोमल-कान्त-पदावलीं शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम् ।।

मन्दिरो और मठो के विश्वास के साथ उनकी लोक-मगल निरपेक्ष गुह्य-साधना निरक्षर जनजीवन के अन्धविश्वास का आधार थी । इस साधनामयी वासना की धारा के अन्धकार की दिव्य-भाव के आलोक मे परिणति ही लोकादर्श के मधुरसंकल्प का निसर्ग प्रतीक बन सकती थी । कविवर विद्यापति की प्रतिभा का वरदान इसी की उपलब्धि मे दिखायी देता है । कवि विद्यापति की कला का समन्वयात्मक-चमत्कार इनके योगि-विलास के दर्शन मे दिखाई देता है । यहाँ निसर्ग-यथार्थ का ऐतिहासिक आदर्श से अपूर्व मधुर-मिलन स्पष्ट दिखायी देता है—

गोकुल देवदेयासिनि आओल,
नगरहि ऐसे पुकारि।
अरुन वसन पेन्हि जटिल वेष धरि,
कान्ह द्वार भाझ ठारि।

गोकुल मे झाड-फूँक करनेवाली स्त्री आयी है, यह बात नगर मे फैल गयी। लाल वस्त्र पहने हुए योगिनी का वस्त्र धारण कर कृष्ण राधा के द्वार पर खडे हुये है. इन योगिवेष-धारी पुजारिन जी की छद्म-विलास लीला का रहस्य सब लोग नहीं समझ सकते है। मत्र-तत्र के साथ वाद्यगीत कला मे भी ये कुशल है:—

कर धरि मन्त्र-तन्त्र सँवारत
को इह लखइ न पारि।

हाथ मे वीणा लिये हुए उसके तार को सँभालते वहाँ पहुँचे। घर की वृद्धा सासु जी इन्ही योगेश्वर से वधू को बीज-मन्त्र देने के लिये प्रार्थना करती है, तदनुकूल एकान्त प्राप्त कर अपना मधुर-सकल्प वे पूर्ण करते हैं।

जटिला कह आन देव कहाँ पाओब,
तुहु बीज कर इह दान।
एत सुनि दुहु जन मदिर पइसल,
दुहु जन भेल एक ठाम।
मनमथ मत्र पढ़ाओल दुहु जन,
पूरल दुहु मन काम।

जटिला सासु ने कहा— तुम्हारे ऐसा देवता फिर कहाँ पाऊँगी। तुम इसे बीज-मत्र दो, इतना सुनते ही दोनो घर मे घुसे और एक जगह हो गये। दोनो ने कामदेव रूपी मत्र का पाठ किया और दोनो की कामना पूर्ण हो गई।

पुनु दुहु जन मन्दिर सयँ निकसल,
जटिला सयँ कह भाखी।
जब इह गौरि अराधन जाओब,
विधवा जन घर राखी।
एत कहि सबहु चललि निज मन्दिर,
जोगी चरन परनाम।
विद्यापति कइ नटवर सेखर,
साधि चलल मन काम।

जब दोनो घर से बाहर निकले, तो योगी ने जटिला से स्पष्ट कहा, कि जब यह गौरी की आराधना के लिए वन को जाय, तो विधवा स्त्रियो को साथ न करना, इतना कह कर सब योगी को प्रणाम कर अपने-अपने घर को चली गई। कवि विद्यापति कहते हैं—श्रीकृष्ण इस प्रकार अपनी मनःकामना सिद्ध कर वहाँ से चल पडे। कभी-कभी योगिवर्य का शुभ दर्शन प्राप्त कर जब वधू की झाड-फूँक के लिए कहा जाता है, तब वे अपनी एकान्त साधना सिद्धि के सम्बन्ध मे इस प्रकार विश्वास व्यक्त करते हैं—

निरजन होइ मंत्र जब झाड़िए
तब इह होएब भाल।

भाव यह है, कि निर्जन स्थान मे जब इसे मत्र से झाडा जाय, तब यह अच्छी हो सकती है। उन्हे जब साधना सिद्धि का अवसर मिलता है, तब वे अपूर्व कौशल का परिचय इस प्रकार देते हैं:—

बहु खन अतनु मत्र पढ़ि झारल,
भागल तब से हो देवा।
देवदेयासिनि घर सयँ निकसल,
चातुरि बूझब केवा।

कृष्ण ने बहुत देर तक कामदेव के मत्र से उसको झाड फूँक कर उपचार किया। नकली देवदासी जब घर से निकली, उसकी चातुरी का पता किसीको नही लगा। योगिवर्य पुजारी जी इस अवसर पर भिक्षादान से अच्छी तरह पुरस्कृत किये जाते हैं:—

जटिला बहुत भगति करि हरषित,
कतक भीख आनि देल।

जटिला ने बहुत भक्ति की और प्रसन्न होकर उसके लिए अत्यधिक भिक्षा ला दी। धीरे-धीरे नायिका भी योगेश्वर जी के कपट को समझ जाती है—

जोगी बेस धरि आओल आज,
के इह समुझब अपरुब काज।
सास बचन हम भीख लइ गेल
मझु मुख हेरइत गद्-गद भेल।
कह तब-"मान रतन दह मोह",
समझल तब हम सुकपट सोय।

आज श्रीकृष्ण योगी का वेष धारण कर आये, उनके इस अपूर्व कार्य को कौन समझेगा, मै सासु जी की आज्ञा से भिक्षा लेकर गई। वे मेरे मुख को देखते ही प्रसन्न होगए, जब मुझसे कहने लगे कि मुझे मानरूपी रत्न दो, तब मैने उनके कपट वेष को पहचाना। जब कभी कपट-कुशल योगेश्वर जी निश्चित समय पर उपस्थित नही हो पाते है, तब उन्हे चोरी के अपराध से कलंकित होना पडता है। पर वे शिवाराधना के व्याज से उससे बचने का प्रयत्न करते हैं:—

पुजलौ पसुपति जामिनि जागि।
गमन विलब भेल तेहि लागि॥

यह देवोपासना की बुद्धि शृङ्गाररस के अन्य कवियो की समकक्षता मे विद्यापति की कला की अनुपम महिमामयी विशेषता का प्रत्यय कराती है। उपासक जी के रति-विलास के प्रस्ताव की चर्चा भी इसी रूप मे होती है। राधा की रूप-सौन्दर्यमाधुरी का प्रत्यक्ष कराते समय भी महाकवि की शिवतत्व निष्ठा उपेक्षित नही हुई है। हवा के झोके से अकस्मात् उनके शरीर के वस्त्र खिसक जाते है और दोनो हाथो से अपने स्तन को ढॅक लेती हैं, ऐसे अवसर की झॉकी देते हुए कवि ने दृश्य विधान का रूपक इस प्रकार बॉधा है:—

अम्बर बिघटु अकामिक कामिनि,
कर कुच झॉपि सुछन्दा।
कनक-सम्भुसम अनुपम सुन्दर,
दुइ पकज दस चन्दा॥

स्नान के बाद जब चन्दन से अपने पयोधर को वे अनुलिप्त करती हैं, उस समय मोती के हार से मिलकर उसकी सुछवि इस प्रकार दर्शनीय बन जाती है—

चन्दन चरचु पयोधर रे,
थिम गजमुकुताहार।
भसम भरल जनि संकर रे,
सिर सुरसरि जल-धार।

इसी सुछवि की दूसरी झॉकी इस प्रकार दिखाई देती है—

गिरिवर गरुअ पयोधर परसित,
थिम गज मोतिक हार।
काम कम्बु भरि कनक-संभु परि,
ढारत सुरसरि धार।

इन दृश्यो मे महाकवि की सौन्दर्य-सृष्टि के साथ दिव्य-निष्ठा की मनो-हारिणी समन्विति है। विलासोन्माद की एकागदर्शिता ही नही है। मान-विरह के समय विलासोन्माद की तीव्रता से सन्तप्त राधा काम को इस प्रकार फटकारती हुई दिखाई देती है। वे समझती हैं, कामदेव मुझे शिव समझ कर अपने पुराने वैर का बदला चुकाना चाहता है। इसलिए कहती हैं:—

कत न वेदन मोहि देसि मदना,
हर नहिं बला मोहि जुवति जना।
विभुतिभूषन नहिं चानन क रेनू,
बघछल नही मोरा नेतक वसनू।
नहि मोरा जटा भार चिकुर क वेनी,
सुरसरि नहिं मोरा कुसुम क स्रेनी।

योगिराज कृष्ण के असन्तुष्ट हो जाने पर राधा योगिनी का वेष धारण कर उनके ढूँढने का सकल्प करती दिखाई देती है:—

धरब योगिनियाँ के भेस रे,
करब मै पहुक उदेश रे।

प्रवास-विरह की वेदनामयी वेला मे भी राधिका अपने प्रिय की उपासना-निष्ठा का स्मरण करती हुई कहती है —

माधव मास तीथि भयो माधव,
अवधि कइए पिया गेला।
कुच-जुग सभु परसि कर बोललन्हि,
तें परतिति मोहि भेला॥

विरहिणी राधा की जो झाँकी महाकवि ने दी है, उसकी रूपकात्मक व्यजना मे यज्ञनिष्ठ-उपासना-सकल्प की प्रतीति स्पष्ट मिलती है :—

लोचन नीर तटनि निरमाने।
करए कलामुखि तथहि सनाने।
सरस मृनाल करइ जपमाली।
अहोनिसि जप हरिनाम तोहारी॥

यहाँ नायिका की उपसना पूरी साधना के साथ दिखाई दे रही है। नदी के तट पर स्नान कर जपमाली के द्वारा वह रात-दिन जप कर रही हैं, वेदिका पर अग्नि जल रही हैं, समिधा, कुश, फल आदि सभी अपेक्षित वस्तुओं का का उपयोग हो रहा है। कवि की कल्पना यहाँ शृंगार और अध्यात्म की

अपूर्व समन्विति की परिचायिका है। विरह वेदना के कारण जब नायिका मूर्च्छित हो जाती है, तब उसके स्वास्थ्य का उपचार धार्मिक विश्वास की विधि से भी होता है :—

केओ बोल मंत्र कान तर जोलि।
केओ कोकिल खेद डाकिनि बोलि।

स्वय विरहिणी भी विरह-वेदना से मुक्ति के लिए जिस साधना दशा मे रहती है, उससे उसकी उपासना-निष्ठा की प्रतीति स्पष्ट मिलती है :—

मीन केतन भए सिव सिव सिव कय,
धरनि लोटावए देहा।
करे रे कमल लए कुच सिरिफल दए,
सिव पूनए निज गेहा।

इस प्रकार कविवर विद्यापति की शृगार-व्यजना अन्य शृंगार-रस के कवियो के कला की तुलना मे जिस सामाजिक पृष्ठ-भूमि और रसानुभूति का प्रत्यक्ष कराती है, वह सर्वथा अपूर्व है। यहाँ शृगार-रस का गायक कवि संयम के उन्मुक्त गौरव बोध का उपेक्षक नही है, जीवन की परिवर्तनशीलता की प्रतीति ही समाजशील-निरपेक्ष विलासोन्माद को उत्तेजित करती है। इसलिए राग और विराग के भावोन्माद के आवेश को विद्यापति की दूती एकसाथ उत्तेजन प्रदान करती दिखाई देती है। वह नायिका से कहती है :—

यौवन रूप ताबे धरि छाजत,
जाबे मदन अधिकारी।

इसलिए अभिसार के लिए राधा को वह इस प्रकार समझा कर निर्भय करती है :—

कुलवति धरम करम भय अब सब,
गुरु मन्दिर चलु राखि।

समाज की शतशः रूढियो में बँधी हुई राधा अपना उन्मुक्त पथ प्रशस्त करने के लिए प्रस्तुत हो जाती हैं :—

कुल-गुन-गौरव सति जस अपजस,
तृन करि न मानए राधे।
मन मथि मदन-महोदधि उमड़ल,
बूड़ल कुल मरजादे।

यह आत्म-प्रतारणा का उन्माद आत्मग्लानि का कारण बनता है :—

झाँपल कूप देखहि नहि पारल,
आरत चललहु धाई।
तखन लघु-गुरु किछु नहिं गूनल,
अब पछिताबक जाई।

सामाजिक अपमान की ज्वाला मे जली हुई प्रेमिका आत्मग्लानि की समाधि मे इस प्रकार तन्मय दिखाई देती है :—

कुल कामिनि छलौ कुलटा भए गेलौ।
तिनकर वचन लोभाई।
अपने कर हम मूँड मुँड़ाएल।
कानु से प्रेम बढ़ाई।

यही आत्मग्लानि प्रेमोपासना की अनन्यता का आधार बनती है। राधा की त्याग-भावना दिव्यज्योति का अनुपम चमत्कार प्रदर्शित करती है :—

अनुखन माधव-माधव सुमरइत,
सुन्दरी भेलि मधाई।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि कवि विद्यापति की कला मे शृंगार और अध्यात्म की पीयूषवर्षिणी समन्विति है, उस युग मे शृगार और अध्यात्म दोनो की ही परिणति सामाजिक अधोगति का मूल बनी हुई थी। कविवर विद्यापति के कर्मनिष्ठ ब्राह्मण-हृदय ने दोनो की समन्विति रजकता तथा मनः-सशोधनशीलता मे की।

इतिहास की बिखरी हुई असंबद्ध प्रतीतियो का कुनबा तैयार करने से विद्यापति की आविष्कृत प्रतीतियो की उपेक्षा नही की जा सकती है। सहज-वासनामयता और उपासना-निष्ठा की जैसी कलात्मक अभिव्यंजना विद्यापति मे मिलती है, वह सर्वथा अपूर्व एव अनुपम है। आत्मग्लानि के प्रसंगो मे अपनी कर्मनिष्ठ प्रायश्चित्त-दृष्टि को स्पष्ट भी कर दिया है:—

अपन करम-दोप आपहि भुजइ,
जे जन परबस होई।
पेम क कारन जीउ उपेखिए,
जग-जन के नहि जाने।

ऐसी दशा मे विद्यापति की कला को शृगार अथवा अध्यात्म की कोई कोटि-विशेष प्रदान करना कवि के साथ न्याय नही है, उनकी क्रातिदर्शिता

भावना के युगान्तरीकरण मे है, जिसे हम उनकी समन्वयशालिनी कला मे देखते हैं। राधा की समर्पण-निष्ठा की अनन्यता कृष्ण को भी राधा-निष्ठ बना देती है। वे दाम्भिक लम्पटता से ऊपर उठ राजनैतिक अधिकार की जब गौरव-भूमि मे पहुँचते हैं, तब विलासिता के अपार प्रलोभनो मे उन्हे त्याग की दीक्षा प्राप्त हो जाती है:—

आन रमनि सयँ राज सम्पद मोयँ,
आछिए जइसे विरागी।

रागानुग प्रेम'—नैतिकता के कठोर नियम के होते हुए भी हमारे देश के इतिहास मे रागानुग-प्रेम का स्वच्छन्द स्रोत कभी सूखने नही पाया है। इसलिए परवर्त्ती नीतिवादियो ने भी "अहल्या, द्रोपदी, तारा, कुन्ती, मन्दोदरी तथा, पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातक नाशिनीम्" की मंत्रवत् पुण्यजनकता को स्वीकार किया। कवि विद्यापति का युग अधकार के सहज-उच्छृङ्खल-उन्माद से क्षुब्ध था ; इसलिए अधकार के अबाध आवेश की परिणति जीवन की मधुर-दिव्य-ज्योति मे दिखा कर ही युगान्तर नारी-चेतना के महदाकर्षण से लोकहृदय को अनुप्राणित कर सकते थे, यही उन्होने किया भी। जो आलोचक परम्परागत-निहित-स्वार्थ के दाम्भिक-अन्ध-समर्थन के दुराग्रही हैं, उन्हे यह समझना चाहिए, कि कला मे प्रकाश के रहस्यमय सप्राण आकर्षण की जो ध्वनि होती है, उसकी उपलब्धि अन्धकार की रहस्यमयी अनुभूति के बिना सर्वथा असंभव है। जिन कबीर, जायसी आदि सन्त-कवियो को युग के आलोचक का गौरवाधिकार भोगने वाले-बुद्धिजीवियो ने रहस्यद्रष्टा के रूप मे उद्घोषित किया है, उनके अहकार का अभयोन्माद भी निरंकुश ही है। महात्मा कबीर दास की प्रेमिका बाबा से कहती है :—

बाबल मोर बियाह कराव, अच्छा बरहि तकाय,
जौ लौ अच्छा वर न मिलै, तुमही लेहु बियाह।

सूफी-हृदय-सम्राट् जायसी की पद्मावती गुरु-रूप हीरामन से कहती है :—

सुनु हीरामन कहौ बुझाई,
दिन-दिन मदन सतावै आई।
जोबन मोर भयउ जस गंगा,
अंग-अंग हम लागि अनंगा।

अतएव अध-आदर्शवादिता से भ्रान्त-आलोचको को साहित्य-सम्राट् श्रीमत्तुलसीदास ने इस प्रकार सावधान किया है :—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास,
निर्गुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास।

कविवर विद्यापति ने सगुणवाद के उन्मुक्त मधुर-आकर्षण द्वारा सृष्टि के सनातन-सौंदर्य-बोध की अनुभूति कराई है, अनुभूति का जो मधुर तथा सजीव चित्र इन्होंने अंकित किया है, उसके आनन्द की प्राप्ति सहृदय-सापेक्ष्य है। साम्प्रदायिक-नीति-नीरस व्यक्ति के लिए यह सर्वथा दुर्लभ है। स्वयं कवि ने रसमयी अभिव्यक्ति की मर्म-स्पर्शिता के सम्बन्ध में इस प्रकार अपना विश्वास व्यक्त किया है :—

विद्यापति कवि गाओल रे, रस बूझ रसमत।

इनके प्रेम का प्राथमिक आकर्षण कितना रसमय एवं अनिर्वच है इसे अपनी सखी से सुपुरुष की अचूक-प्रभविष्णुता का परिचय देने वाली राधा के स्वरों में सुनना चाहिये —

ए सखि पेखल एक अपरूप,
सुनइत मानवि सपन सरूप।
कमल जुगल पर चाँद क माला।
तापर उपजल तरुन तमाला।
तापर बेढ़लि बिजुरी लता,
कालिन्दी तट धीरे चलि जाता।
कवि विद्यापति एह रस भान।
सुपुरुष मरम तुहूँ भल जान।

विद्युल्लता रूपपीताम्बर से आवृत तमाल-वृक्षरूप-कृष्ण को यमुना के तट पर जाते हुए देखकर राधा को जो अपूर्व तन्मयता प्राप्त हुई। उसकी झाँकी देकर कविवर विद्यापति ने राधा से कहा है, कि सुन्दर पुरुष का रहस्य तुम अच्छी तरह जानती हो, इस पद में मरम (मर्म) शब्द द्वारा इन्होंने अपने रहस्य-दर्शन का स्पष्ट संकेत दे दिया है। 'पदावली' में इस शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है, इस अर्थ में अधिक प्रयुक्त होने वाला दूसरा गुपुत (गुप्त) शब्द है, मरम शब्द का पाँच बार प्रयोग हुआ है और गुपुत शब्द का प्रयोग ग्यारह बार। इसी प्रकार भेद और निभृत शब्द के प्रयोग मिलते हैं।

विद्यापति के प्रेम की पृष्ठ-भूमि यौवन के रागात्मक चेतना का सहज उन्माद है। जिसके सम्बन्ध में कवि ने स्पष्ट कह दिया है कि—

परनारि पिरित क ऐसन रीति।
चलल निभृत पथ न मानय भीति।

अतः इस प्रेम मे आदर्शात्मक परकीया-भाव होने के कारण युग का परम्परागत नैतिक अनुशासन मान्य नही है।

हमारे सामाजिक जीवन मे शक्ति का सघर्ष निरन्तर प्रवाहमान है। जब तक शक्ति की चेतना प्रबुद्ध रही है, तब तक विजातीय अथवा परकीय शक्ति का हमारी राष्ट्रीयता की स्वशक्ति से गौरवमय-मधुर-समन्वय होता रहा है, उस समय भी नारीशक्ति के प्रति लोगो का यह मंगलमय विश्वास सुरक्षित रहा 'कि नारियो के अपमान से प्रकृति की पराजय होती है,' इसलिए सामान्य नारी-शक्ति के प्रति इस प्रकार आदर की भावना के कारण नैतिक-पतन मे पहुँची हुई नारी के प्रति भी लोक-जीवन मे विश्वास शून्यता नही आने पाई, किन्तु—

पृथिव्यां कुलटा याश्च, स्वर्गे चाप्सरस: मता:।

कुलटा को भी पूज्य बनाने वाले समाज का यह शक्तिमय उदार विश्वास था, कि—

स्वकीयं बलिनां सर्व दुर्वलानां न किचन।
स्वीया च परकीया च भ्रमोऽयं मदचेतसाम्।

उदाहरण के लिये बृहस्पति की स्त्री तारा से चन्द्रमा के प्रेम का दृश्य दर्शनीय है। देवी भागवत मे लिखा है—

"गुरोस्तु दयिता भार्या तारा नामेति विश्रुता,"

तारा का चन्द्रमा के साथ प्रेम द्रष्टव्य है—

ताराशशी मदोन्मत्तौ कामवाण-प्रपीडितौ,
रेमाते मदमत्तौ तौ परस्पर स्पृहान्वितौ।

तारा और चन्द्रमा काम की वेदना से व्यथित तथा यौवन की मस्ती मे बेसुध होकर एक दूसरे को चाहते हैं। जब बृहस्पति के मागने पर चन्द्रमा ने तारा को देना अस्वीकार किया, तब भयकर देवासुर-सग्राम हुआ और अन्त मे विवश होकर चन्द्रमा ने पुनः बृहस्पति की गर्भवती प्रिया भार्या तारा को उन्हे दिया।

नारी-शक्ति के प्रति यह उदार-विश्वास जब भारत ने खो दिया, तभी से पराधीनता का कलुष बढने लगा। राधाशक्ति की कल्पना 'स्व' और 'पर' के सकुचित सीमावरोध को दूर करने वाली ऐश्वर्यमयी महाशक्ति के रूप मे हुई है। इनकी महिमा का अनेक रूपो मे अभिनन्दन पौराणिक ऋषियो ने किया है। इनकी आराधना के विना कृष्ण की अर्चना सफल नही होती है। वैष्णव सम्प्रदायानुयायिओ के लिये तो राधा की अर्चना अनिवार्य कही गयी है।

"कृष्णार्चायां नाधिकारो यतोराधार्चनं बिना,
वैष्णवैः सकलैः तस्मात्कर्त्तव्य राधिकार्चनम् ।।"

इन्ही महाशक्ति के अनुशासन मे रहकर भगवान् श्रीकृष्ण अपना प्रभाव दिखाते हैं। इसीलिए देवीभागवत मे कहाः—

"कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यत" ।

भगवान् श्रीकृष्ण की राधा के साथ आत्मीयता दोनो को आपस मे अभिन्न वना देती है और स्वामिनी बनकर राधा ही कृष्ण-भक्तो की अभीष्टपूर्ति करती हैं:—

रासेश्वरी नस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति ।
राध्नोति सकलान्कामांस्तस्माद् राधेति कीर्त्तिताः ।।

शिवपुराण मे राधा जी को वैश्य प्रकृति की देवी कहा गया है। वाणिज्य प्रकृति लेनदेन की होती है। हमारे देश के वर्णाश्रम-धर्म के इतिहास को देखने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि नवी, दशवी शताब्दी के लगभग वैश्यवर्ग ही किसी न किसी रूप मे ऐश्वर्यमय रह गया था, तथा ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व दोनो ही हतप्रभ हो रहे थे। इसलिए मुसलमानो से पराजित होने के पश्चात् राधा शक्ति के द्वारा ही आत्मीयता के सीमावरोध को दूर करना स्वाभाविक प्रतीत हुआ। राधा की वैश्य-प्रकृति का परिचय शिवपुराण मे इस प्रकार है—

वृषभानस्य वैश्यस्य कनिष्ठा च कलावती, ।
भविष्यति प्रिया राधा तत्सुता द्वापरान्ततः ।।

वास्तव मे राधा का कृष्ण से प्रेम 'स्व' और 'पर' भाव का ही है। इस लिए राधा को अपना दान सामाजिक-परम्परा को उपेक्षित करते हुए स्वच्छन्द रूप में संभालना पडता है। मनुस्मृति के आठ प्रकार के विवाहो मे यह स्वच्छन्द प्रेम के वासनामय सहज-उन्माद का आवेश-पूर्ण दिव्य दर्शन मिलता है। अथर्ववेद मे नारी के प्रति पुरुष की ज्वलनशील-आसक्ति का यह क्षुद्रतर संकल्प द्रष्टव्य है—

शुभा विद्धा व्योषया शुष्कस्याभि सर्प मा ।।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ।

तू दाहक और दुःखदायक काम के वाण से विद्ध एव व्याकुल होकर मेरे पास आओ। प्रेमी पुरुष की भाँति प्रेमिका स्त्री के यौवनोन्माद की भी क्रूर तथा हीन परिणति के चित्र मिलते हैं। वह भी प्रेमी पुरुष के ध्यान मे तन्मय होकर इस प्रकार की कल्पना करती हैः—

निशीर्षतो नियत्तत आध्योऽनि तिरामि ते।
देवाः प्रहिष्णुत स्मरमसौ मामनुशोचतु।

सिर से लेकर पैर तक मै तुम्हारे शरीर मे कामपीडा उत्पन्न करती हूँ। हे देवताओ, इसे इतना काम विह्वल कीजिए, कि यह मेरा स्मरण कर शोकयुक्त हो जाये। नागरिक रमणियो के विलासेच्छु हृदय के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कालिदास के 'मेघदूत' मे विरही यक्ष ने मेघ से इस प्रकार कहा है—

गच्छन्तीनां रमणवसति योषितां तत्र नक्तम्,
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
सौदामिन्या कनक निपक स्निग्धया दर्शयोर्वी—
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरीमास्मभूर्विक्लवास्ताः।

हे मेघ! उस उज्जयिनी मे रात्रि के समय अपने प्रियतम के पास जाने वाली प्रेमिकाओं को राजमार्ग के घने अन्धकार मे अपनी विद्युत की चमक द्वारा प्रकाश दीजिएगा। उस प्रकाश की मधुरता कसौटी पर कसी सुवर्ण की रेखा के समान है। मार्ग दिखाते समय गर्जन-ध्वनि के साथ वृष्टि न कीजिएगा, क्योंकि वे रमणियाँ अत्यन्त भीरु स्वभाव की हैं। नारी की यह प्रेमासक्ति सामाजिक दृष्टि से अपराध है, पर विश्वास की अनन्यता और निश्छलता दोनो ने मिलकर इसे परम पूज्य बना दिया है। हमारे देश के लाखो मनुष्य हजारो वर्षो से राधा-कृष्ण का नाम स्मरण करते हुए अनेक चिन्ताओ के भार को समाप्त करते आ रहे है। राधा-कृष्ण के इस छिपे हुए प्रेम का परिचय शिवपुराण मे इस प्रकार दिया गया है—

कलावती सुता राधा साक्षाद्गोलोकवासिनी।
गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्ण पत्नी भविष्यति।

यही भावधारा कविवर जयदेव, के साथ विद्यापति की कला मे भी अभिव्यक्त हुई है, कवि की हार्दिक निष्ठा ने राधा की महनीया मूर्ति की झाँकी इस प्रकार दी है :—

लाल-लाख लखमी चरन तल नेओछये।
रंगिनि हेरि विभोर।

भारतीय प्रेमाख्यान काव्यो की परम्परा मे विरह वर्णन के प्रसंग मे दूती का विशेष महत्व है। कविवर विद्यापति के काव्य मे दूती राधा से युग की नव-नीति-प्रतिष्ठा तथा स्वयंवरण के उन्मुक्त पथ पर कदम बढाने के लिए

वै से ही आकर्षण भर रही हैं, जिस प्रकार 'पद्मावत' मे हीरामन शुक ने पद्मावती के नख-शिख-शृंगार का वर्णन कर रत्नसेन को नौ लाख विवाहिता पद्मिनियो के त्याग के लिए प्रस्तुत किया है। युग के चार्वाक जीवन की नैसर्गिक गौरव परिणति के लिए इसके सिवाय दूसरा मधुर साधना पथ हो भी नही सकता था।

एतदर्थ दूती राधा मे प्रोत्साहन भर रही है, कि—

गुरुजन परिजन डर करु दूर,
बिनु साहस अभिमत नहि पूर।
एहि ससार सार बधु एक,
तिला एक सगम जाव जिव नेह।

यौवन के सहज क्षणिक आवेश की शाश्वत् आकर्षण के रूप मे परिणति के लिए नारी-पुरुष का अविचल प्रेम युग की मर्य्यादा से निरपेक्ष रहकर भी सर्वथा लज्जारहित नही है, राधा के प्रेमोन्माद-जन्य आनन्द को रोप से छिपा रखने के लिए सखी समझा रही हैं:—

सुनु सुन्दरी नव मदन-पसार,
जनि गोयह आओब बनिजार।
रोस दरस रस राखब गोए,
धएले रतन अधिक मूल होये।

प्रेम का यह अन्तर्गोपन राधा की अन्तश्चेतना को क्षुब्ध कर देता है, जिसके लिए वे सखी से कहती हैं—

की लागि कौतुक देखलौं सखि,
निमिष लोचन आध।
मोर मन-मृग मरम बेधल,
विषम बान बेआध।

हे सखि, सौन्दर्य का यह अपूर्व दृश्य क्षण भर के लिए अधखुले नेत्रो से मैने क्यो देखा ? प्रियतम रूप व्याध के कुटिल कटाक्ष रूप वाण ने मेरे मन-रूप मृग के मर्म स्थल को घायल कर दिया। प्रेमिका के मन के मर्म स्थल की यह वेदना राधा को किस दशा मे पहुँचा देती है ? इसे देखिए और कबीर, जायसी आदि के पूर्वानुराग के विरह से तुलना कीजिए:—

तनु भेल जर-जर भामिनी अन्तर,
चित वाढ़ल तसु-प्रीत।

निरस कमल-मुख कर अवलंबइ,
सखि माँझ बइसलि गोइ।
नयन क नीर थीर नहि बाँधइ
पंक कयल महि रोइ।
मरम क बोल बयन नहिं बोलइ
तनु भेल कुहु-ससि खीना।
अवनि उपर धनि उठए न पारइ
धएलि भुजा धरि दीना।

राधा के हृदय मे पूर्वानुराग की विरह-जन्य-वेदना इस प्रकार बढ गई है, कि उनका शरीर वृद्धावस्था जैसा दुर्वल तथा असहाय हो गया है। कमल जैसे मुख को हाथ का सहारा देकर उदास होकर सखियो के बीच अपने को छिपा कर बैठी हुई है। नेत्र से आँसुओ का अविरल प्रवाह बह रहा है, पास की जमीन आँसुओ के जल से गीली हो गई है। वाणी से हृदय मे अतीन्द्रिय आकर्पण भर देने वाली आवाज नही निकल रही है। शारीरिक कृशता इतनी वढ गई है, कि राधा अमा के चन्द्रमा की भाँति बहिर्जगत मे अस्तित्व-शून्य हो गई हैं। उठने मे असमर्थ होने के कारण दीनतापूर्वक हाथो से पृथ्वी का सहारा लेकर बैठ जाती हैं।

आसक्ति की यह अनिर्वच तन्मयता जिस प्रकार राधा मे मिलती है, उसी प्रकार कृष्ण मे भी। निर्गुणियो की भाँति उनके प्रेम का आकर्षण एकाङ्गी नही, किन्तु उभय पक्ष-परिपुष्ट है। राधा के प्रति कृष्ण की अनुरक्ति की तन्मयता ऐसी ही है, दूती राधा से कह रही है कि :—

तोहरे चिन्ता तोहरे कथा,
सेजहु तोहरे चाव।
सपनेहु हरि पुनु पुनु कए,
लए उठए तोर नाव।
आलिगन दए पाछु निहारए,
तोहि बिनु सून कोर।
अकथ कथा आपु अबथा
नयन तेजए नोर।

कृष्ण हर समय तुम्हारी ही चिन्ता मे मग्न रहते हैं, तुम्हारी ही कथा कहते और शय्या पर भी तुम्हारे लिए उत्सुक रहते हैं। स्वप्न मे भी बार-बार तुम्हारा

नाम पुकार उठते हैं, तुम्हारे बिना ही सूनी गोद का आलिंगन कर पीछे देखने लगते हैं। उनकी अवस्था इस समय वर्णन से बाहर है, हर समय नेत्रों से आँसू बहा रहे हैं।

राधा की भाँति ही कृष्ण के प्रेमाकर्षण की वेदना भी निस्सीम है, इस स्थिति की ओर संकेत "अकथ कथा" शब्द द्वारा कवि ने कराया है। नारी और पुरुष के निस्सीम अन्धकार की ये रहस्यमयी झाँकियाँ हैं। प्रौढ संस्कार वाले आर्यशिक्षा-केन्द्रों के नष्ट हो जाने के कारण देश मे अन्धकार का उन्माद इतने वेग से व्याप्त हो गया था कि "नासदीय सूक्त" के "तम आसीत तमसा गूढमग्रे" (सृष्टि के आरंभ मे सर्वत्र रहस्यमय अन्धकार ही भरा हुआ था) की रहस्यमयी ध्वनि का प्रत्यक्ष सहज संभव हो गया। जब तक विश्व मानव के लिए आर्य-संस्कार के प्रौढ-शिक्षा-केन्द्र सुलभ नही हो जाते है, तब तक नारी-शक्ति की दिव्यतत्वानुभूति तथा पुरुष की ऐश्वर्यानुभूति के लिए इन महाकवि की वाणी की महानीयता अनुपेक्षणीय है।

प्रेम का यह रागानुग-प्रवाह इस गति से आगे बढता है, कि इसका मर्म किसी को ज्ञात नही होता है :—

दुहु जन चीत रीत हेरि सहचरि,
छन छन गगनहि चाय।
रजनि पोहाओल सब जन जागल,
से उर अधिक डराय।
सेखर बुझि तब करि कत अनुभव,
दुहुँ सँग भंग कराव।
निज-निज मन्दिर गमन करल दुहु
गुरुजन भेद न पाव।

सखी को देखकर राधा और कृष्ण दोनो का हृदय हलका हो गया है, वे प्रतिपल आकाश देख रहे हैं। रात बीत गई है, सब लोग सो कर जाग गये हैं, इससे हृदय अधिक भयभीत हो रहा है। मन मे अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प करके दोनो एक दूसरे से अलग हुए और दोनो ने अपने अपने घर के लिए प्रस्थान किया। इस मधुर मर्माकर्षण का थाह गुरुजनो को नही लग सका।

इस गुप्त-प्रेम का भेद खुल जाने का समाचार सुनकर राधा भयभीत होती हैं, तब सखी राधा को समझाती है, कि:—

भनइ विद्यापति सुन वर जौबति
ई सभ राखल गोई।
ननदी सयँ रस-रीति बढ़ावह
गुपुत बेकत नहि होई।

हे युवती-गौरव-दायिनि राधे ! इन सब बातो को पहले छिपा रखिए। ननद के साथ आनन्दमय प्रेम का व्यवहार समृद्ध कीजिए, फिर तुम्हारा गुप्त प्रेम प्रगट नहीं होगा। राधा भी अब सतर्क हो गई हैं, इसलिए इस प्रेम को गुप्त रखने के लिए कृष्ण से कहती है :—

अरुन किरन किछु, अम्बर देल।
दीप क सिखा मलिन भए गेल।
हठ तज, माधव जएबा देह।
राखए चाहिअ गुपुत सनेह।

आकाश लाल किरणे फैला रहा है, दीपक का प्रकाश मद पड गया है। हे माधव, हठ छोडिये, जाने दीजिए। प्रेम को छिपा कर रखना चाहिए। इस मर्ममय-गुप्त-प्रेम क दृश्य दर्शन के साथ ही जायसी की भाँति नख-शिख की रूप-सृष्टि के द्वारा भी रहस्यानुभूति, विद्यापति ने कराई है। उदाहरण के लिए राधा की अपूर्व-सौन्दर्य-शक्ति को देखा जा सकता है :—

जहाँ जहाँ पग-जुग धरई।
तहि तहि सरोरुह झरई।
जहाँ-जहाँ झलकत अंग।
तहि-तहि बिजुरि-तरंग।

+ + +

जहाँ जहाँ नयन विकास।
तहि-तहि कमल प्रकास।
जहाँ लहु हास सँचार।
तहि-तहि अमिय विकार।

राधा जहाँ-जहाँ दोनो चरण रखती हैं, वहाँ-वहाँ मानो प्रफुल्ल कमल बिखर जाते है, जहाँ-जहाँ उनके शरीर की आभा फैलती है, वहाँ-वहाँ विद्युत की लहर फैल कर लोगो को विस्मय विमुग्ध कर लेती है। जहाँ-जहाँ नेत्रो की प्रसन्न-ज्योति फैलती है, वहाँ-वहाँ विकसित कमल की आभा फैल जाती है।

जहाँ उनके मन्द स्मिति का सञ्चार होता है, वहाँ सुधा-माधुरी का अनुपम आकर्षण लोगो को सहज ही आकृष्ट कर लेता है। राधा के चन्दनानुलिप्त-स्तन पर गजमुक्ता का हार झूल रहा है। कवि ने इसकी झाँकी इस प्रकार दी है :—

चन्दन चरचु पयोधर रे,
ग्रिम गज मुकुता हार।
भसम भरल जनि सकर रे.
सिर सुरसरि धार।

नारी-शक्ति की यथार्थोन्मुख रहस्यमाधुरी की यह अप्रतिम झाँकी है, जहाँ शक्ति और शिव का निरुपम समन्वय सहज सम्भव हो गया है। नारी और पुरुष की दुरत्यया अतृप्ति से लाभ उठाने के लिए इन्होने काल्पनिक-उन्माद की ही सृष्टि नही की है, अपितु अनुभूति की तन्मयता मे मानव जीवन के यथार्थ का प्रत्यक्ष भी कराया है। विरहिणी राधा की दशा कितनी मार्मिक है :—

लोटइ धरनि, धरनि धरि सोइ।
खने खन साँस, खने खन रोइ।
\+ \+ \+
केओ केओ जपय वेद दिठि जानि।
केओ नव-ग्रह पुज जोतिअ आनि।
केओ केओ कर धरि धातु विचारि।
विरह विखिन कोइ लखइ न पारि।

राधा पृथ्वी पर पडी हुई तड़प रही हैं, क्षण भर के लिए सावधान रहती हैं, क्षण भर मे आखो से आँसू बहने लगते हैं। कुदृष्टि से विभ्रान्त जानकर कोई वेद-मन्त्र का जप करते हैं, कोई ज्योति जगाकर नव ग्रह की पूजा करते हैं और कोई हाथ पकड कर नाडी का विचार करते है, किन्तु उसकी विरह-जन्य दयनीय आकुलता को कोई नही समझ पाते हैं। यह आकुलता सनातन है—

जनम-अवधिहमरूप निहारल, नयन न तिरपित भेल।

अपनी विरह-व्यजक ध्वनियो में जीवन के अनेक स्तर से इसी स्वरानुसन्धान को गायक कवि ने झकृति दी है। सर्वत्र जीव ही नही जीवन भी है। गोस्वामी-तुलसीदास, सूरदास की भाँति जीव और जीवन का अभिन्न सश्लेष है। जीववादी तर्काचार्यसुधी कबीर जायसी, आदि की साधना धारा मे नही देख सकते

हैं। पौराणिक जीवन की अनुरूपता माधुरी को स्पष्ट कर देती है। "प्रार्थना और नचारी" शीर्षक गीतो मे आत्मग्लानि, निवेदन, समर्पण और सस्तुति आदि की हृदयस्पर्शी व्यंजना हुई है। युग के आराध्य प्रतीक के आराधना वैषम्य की समन्विति को अभेद विनय-भाव-निष्ठा की निसर्ग सहृदयता के साथ अभिव्यक्ति दी है। ऐसे कवि युग का प्राण-सगीत बनकर युग-युग को आत्म झंकृति होते है।

विद्यापति जैसे समग्र जीवन के आचार्य कवि को कोरे शृङ्गारी कवियो की श्रेणी मे देखना असहृदयतापूर्ण ही होगा। उनके निवेदन-गीत "प्रार्थना और नचारी" मे ही नही "दुर्गा-भक्ति-तरगिणी, 'शैव सर्वस्व सार" आदि मे भी झकृत हे। पौराणिक भक्ति का रस विद्यापति मे सर्वत्र दिव्याभिव्यक्ति के साथ मिलता है। शृङ्गार रस की कल्पना मे उनकी प्रतिभा को बेजोड अवश्य कहा जा सकती है, पर इन्हे शृङ्गारी कवि घोषित करना इनके जीवनमय समस्त अभिव्यजन व्यक्तित्व के साथ अक्षम्य अपराध कहा जायगा।

कीर्त्तिलता-काव्यानुशीलन

अपभ्रश-भाषा की प्रबन्ध-काव्य-परम्परा मे "कीर्त्तिलता" का स्थान सर्वथा अद्वितीय है। इस काव्य की रचना मे कविवर विद्यापति की चिन्तन-दृष्टि का निष्कर्ष जिस रूप मे हमे प्राप्त है, वह उपर्युक्त तथ्य के सर्वथा अनुरूप है। विद्यापति से पूर्व संस्कृत और प्राकृत भाषाओ मे ऐतिहासिक-प्रबन्ध-काव्यो की रचनाये होने लगी थी, पर उनमे ऐतिहासिक-तथ्य-निरूपण के स्थान पर कवि-कल्पना की अतिरजना का प्रभाव अधिक था। इसलिए उनके द्वारा जीवन के ऐतिहासिक-स्तर पर हम ठीक-ठीक नही पहुँच पाते हैं। यह काव्य परम्परागत-प्रबन्ध-काव्यो की कथानक रूढियो को अशतः ग्रहण करते हुए भी युग जीवन के सजीव दृश्य-दर्शन मे सर्वाधिक प्रमाणिक प्रतीत होता है। कवि ने लिखा है, कि सस्कृत-भाषा अधिकाश लोगो को प्रियतर नही प्रतीत होती है। प्राकृत-भाषा रस के रहस्य को हृदयंगम कराने मे असमर्थ जान पडती है। इसलिए सब लोगो के हृदय को मुग्ध करने वाली देशी वाणी "अवहट्ठ" मे अपने काव्य की रचना कर रहा हूँ।

> सक्कय वाणी बहुअ न भावइ,
> पाउँअ रस को मम्म न पावइ।
> देसिल बअना सब जन मिट्ठा,
> तँ तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥

वस्तुतः अवहट्ठ भाषा अपभ्रश भाषा का ही एक विशिष्ट रूप है, जिसकी अपूर्वता मे कवि विद्यापति का व्यक्तित्व निखरा हुआ हमे प्राप्त होता है। इस अवहट्ठ की भूमि मैथिली भाषा की सामान्य-जन-बोली से मिली हुई है, साथ ही सस्कृत और प्राकृत भाषाओ से इसको रमणीय वैभव की उपलब्धि हुई है। इस प्रकार विद्यापति की अवहट्ठ भाषा सामान्य अपभ्रश से अपनी कला-चारुता मे असाधारण रूपसे ऊपर उठी हुई है।

ऐतिहासिक दृष्टि से जिन मुस्लिम सस्कारो का प्रभाव दैशिक जीवन पर पड रहा था, उसे कवि विद्यापति ने नितान्त स्वभाविक रूप से चित्रित करने के लिए वैदेशिक भाषा की ध्वनियो को भी प्रचुर मात्रा मे अङ्गीकार किया है। कथा के वक्ता और श्रोता भृङ्ग और भृङ्गी हैं। मानवेतर प्राणियो की प्राचीन-प्रबन्धकाव्यो मे इस प्रकार पात्र के रूप मे स्वीकृति रूढि के रूप मे चली आ रही थी, पर

विद्यापति के भृङ्ग और भृङ्गी कथानक के पात्र के रूप मे हमे नही मिलते है। वे तटस्थ-रूप से ही दृश्य-रूप को व्यक्त करते-करते दिखाई देते हैं। इस प्रकार यह काव्य इतिहास के पूर्णतया अनुरूप होते हुए भी महाकवि की मौलिक-प्रतिभा के लोकोत्तर-चमत्कार से सर्वथा निरपेक्ष नही है। यशःधन क्षत्रियजाति की जीवन साधना की पूर्णता के विश्वास को कीर्त्तिसिंह के खड-जीवन का परिचय कराते हुए कवि ने जगाया है। इसलिए वे इतिहास के एक विशिष्ट-व्यक्ति होते हुए भी जीवन के सनातन-विश्वास के आदर्श प्रतीक भी हो सकते हैं। पुरुषत्व की पूर्णता की प्रतीति कराने के लिए ही कवि ने इस काव्य की भूमिका पूर्ण-आत्म-समानमय-विश्वास के साथ प्रस्तुत की है। विद्यापति के पूर्ववर्त्ती प्रबन्ध-काव्यो के रचनाकारो की दृष्टि चरितनायक के वैवाहिक विलास के उन्माद के साथ सघर्ष और नैराश्य-जन्य-शान्ति की व्यजना मे ही सीमित थी। अतएव लोकमगल की पूर्णता का पक्ष उनमे दब-सा गया था, किन्तु विद्यापति पुरुषत्व को काव्यगत-जीवन की सार्थकता का चरमादर्श मानते हुए ही हमे दिखाई देते है—

पुरिसत्तणेन पुरिसओ नहि पुरिसओ जम्ममत्तेन।
जलदानेन हु जलओ न हु जलओ पुंजिओ धूमो॥

पुरुष-त्व-शून्य मनुष्य को पुच्छ विहीन-पशु के रूप मैं कवि ने अनादरणीय समझा है:—

सो पुरिसो जसु मानो सो पुरिसो जस्स अज्जने सत्ति।
इअरो पुरिसाआरो पुच्छ-विहूना पसू होइ।

भूमिका की इस निरुपम-ओजस्विता के कारण ही कदाचित् महाकवि को अपने युग के कला-रसिक-सहृदयो से अनुरूप प्रोत्साहन नही प्राप्त हुआ। जिसकी ओर सकेत खलो की निंदा करते समय कवि ने किया है :—

खल खेलाछल दूसिहइ सुअण पसंसइ सब्ब।
सुअण पससइ कव्व मझु दुज्जन बोलइ मन्द।

स्वयं अपनी रचना के प्रति विद्यापति इतने अधिक आस्थावान् हैं और उन्हे विश्वास है, कि जिस प्रकार बालचन्द्र शकरजी के मस्तक पर सुशोभित होता है, उसी प्रकार मेरी भाषा सहृदयो के मन को आनन्दमय *आकर्षण-विमुग्ध* करने मे पूर्णतया समर्थ है :—

बालचन्द विज्जावइ भासा,
दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा।

ओ परमेसर हर सिर सोहइ,
ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ।

अपने काव्यनायक की परम्परागत-आदर्शानुरूपता की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए कवि ने अनेक पूज्यादर्शों एवं महापुरुषों का उल्लेख भी किया है। वीरता के लोक पावन-आलोक से भास्वररूप मे अपने आदर्श का लोकोत्तर-प्रभाव व्यक्त करने के लिए ही कवि ने कहा है, कि शस्त्र और शास्त्र दोनो के पूर्ण-बोध से समन्वित आदर्श की दुर्लभता को सर्वसुलभ करना ही हमारा ध्येय है :—

"दुहु एकत्थ न पाविअइ भुअवै अरु भूदेव।"

भूमिपतित्व और भूदेवत्व दोनो का एकत्र मिलन दुर्लभ है, पर कीर्त्तिसिंह का चरित्र आदर्श-वीरता तथा धर्मपालन निष्ठता दोनो का प्रतीक है। दानवीर, दयावीर, युद्धवीर आदि वीरता की समस्त विभूतियाँ इनमे एकत्र प्राप्त हो जाती हैं। जिसका परिचय कवि ने उनकी वंशपरम्परा के साथ स्पष्टरूप से इस प्रकार दिया है:—

तक्क कक्कस वेअ पढ तिन्नि,
दाने दलिअ दारिद्द, परम बह्म परमत्थ बुज्झइ।
वित्ते बटोरइ कित्ति, सत्ते सत्तु सङ्गाम जुज्झइ।·· ···
जेन्हें खण्डिअ पुव्व वलि कन्न,
जेन्हें सरण परिहरिअ, जेन्हें अत्थिजन विमन न किज्जिअ।
जेइ अतत्थ न भणिआ, जेइ न पाउँ उमग दिज्जिअ।

"कीर्त्तिसिंह उस वंश के आलोक हैं, जिस वंश के राजा तर्क मे कर्कश वेदपाठी, तीन प्रकार के दान से दरिद्रता के दलन करने, परम ब्रह्म-परमार्थ को जानने, धन से कीर्त्ति-सचय करने तथा बल से युद्ध मे शत्रु से लडने वाले हुए। · ··जिन्होंने पूर्वकाल के दानी बलि और कर्ण को हरा दिया, जिन्होंने शरण नही ली, जिन्होंने याचक जन को कभी निराश नही किया, जिन्होने असत्य नही कहा और जिन्होने उन्मार्ग मे कभी पाँव नही दिया।

काव्य-नायक श्रीकीर्त्तिसिंह के पिता गणेश राय का वध अस्लान नामक एक मुसलमान ने धोखा देकर कर दिया था। पिता के बैर का उससे बदला चुकाने के लिए जब कीर्त्तिसिंह ने निश्चय किया, तब वह राज्य लौटाने के लिए स्वयं प्रस्तुत हो गया, पर उसके दिये हुए राज्य का उपभोग करना कीर्त्तिसिंह को कायरता का सूचक जान पडा। भला कभी सम्मान को धन समझने वाले प्राणी

भिक्षुक का जीवन स्वीकार कर सकते है ? कीर्त्तिसिह ने इस अवसर का तिरस्कार करते हुए जो कुछ कहा है, उससे उनकी वीर-संकल्प-निष्ठा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है :—

मान बिहूना भोअना सत्तुक देब्नेल राज ।
सरन पइट्ठे जीअना तीनू काअर काज ।

मान-हीन-भोजन करना, शत्रु का दिया हुआ राज्य लेना और शरणागत होकर जीना, ये तीनो कायरो के ही कार्य है । राय गणेश्वर के वध के कारण मिथिला मे जिस अराजकता का नग्न ताण्डव दिखाई देता है, वह इतिहास के मर्म-परिचय का सजीव-दृश्य-गोचर करा देता है । सामाजिक जीवन की कारुणिक-दशा की हृदय-बेधी झॉकी कवि ने इस प्रकार उपस्थित की है :—

"ठाकुर ठग भए गेल, चोरें चप्परि घर लिज्झिअ ।
दास गोसाञुनि गहिअ, धम्म गए, धन्ध निमज्जिअ ।
खले सज्जन परिभविअ, कोइ नहि होइ विचारक ।"

"ठाकुर ठग हो गए, चोरो ने बलपूर्वक घरो पर अधिकार कर लिया । नौकरो ने स्वामियो को पकड लिया । धर्म नष्ट हो गया, काम-धन्धे समाप्त हो गए । खलो ने सज्जनो को पराजित कर दिया । कोई न्याय का विचार करने वाला नही रह गया ।" असामाजिकता के चरम-अतिरेक का यह करुणाजनक ऐतिहासिक तथ्य है । वैराग्य-प्रधान भारतीय जीवनधारा पर भोग प्रधान मुस्लिम-आक्रमण के आतंक का प्रत्यक्ष कराने मे कर्मठ-ब्राह्मण-प्रतिभा के विश्व-कवि विद्यापति की चरम-चमत्कृति का दर्शन मिलता है । जौनपुर के नागरिक-जीवन का जो दृश्य विद्यापति ने खीचा है, वह समस्त भारत के नागरिक-जीवन का एक साथ हृदय-चक्षु के समक्ष उपस्थित कर देता है । इस परिस्थिति का दर्शन कराने वाली कुछ पक्तियॉ द्रष्टव्य हैं :—

हिन्दु बोलि दुरहि निकार,
छोटेओ तुरुका भभकी मार ।

कही कोई मुसलमान बलपूर्वक मार्ग मे जाते हुए को बेगार मे पकड लेता है । ब्राह्मण के बालक को पकड लाता है और उसके मस्तक पर गाय का शुरुआ चढाता है । मस्तक का टीका चाटता है, जनेऊ तोड़ देता है और ऊपर घोडा चढाना चाहता है । कब्रो और कसाइयो से पृथ्वी भर गई है । पैर रखने का भी स्थान नही । हिन्दू को बुलाकर दुत्कार कर निकाल देता है । छोटा भी मुसलमान क्रुद्ध होकर दौड कर मारता है । तुर्कों को देख कर

ऐसा ज्ञात होता है, मानो वे हिन्दुओ के समूह को निगल जायेगे।" यह देश के राजनीतिक-जीवन का हृदय-द्रावक दर्शन है। इसके मूल मे घोर सास्कृति-पतन प्रेरक बनता हुआ दिखाई देता है। नाथपंथी हठयोगियो का हिन्दू और मुसल्मान दोनो समुदायो पर अपनी व्यावहारिक-चमत्कृति के कारण सर्वाधिक प्रभाव था; किन्तु इन लोगो का जीवन साधनामय न रहकर घोर वासना के उन्माद से पतनोन्मुख बन गया था :—

"वेश्यान्हि करो पयोधर जटीक हृदय चूर।"

"वेश्याओं के पयोधरो से योगियो के हृदय चूर हो रहे थे।" नागरिक-जीवन की साम्राज्ञी वेश्याओ के नख-शिख सौन्दर्य का कविवर विद्यापति ने नितान्त स्वाभाविक तथा मनोहर दर्शन कराया है। कवि की कोकिल-काकली का स्वर यहाँ सहज मोहकता के साथ झंकृत हुआ है। वासना को उद्दीप्त करने मे उनकी सौन्दर्य-शक्ति युग-जीवन पर पूरी सफलता प्राप्त करती दिखाई देती है :—

"तान्हि वेश्याहि करो सुख सार मण्डन्ते, अलक तिलका पत्रावली खण्डन्ते, दिव्याम्बर पिन्धन्ते, उभारि उभारि केश पाश बन्धन्ते, सखीजन प्रेरन्ते, हसि हेरन्ते, सआनी' लारुमी, पातरी, पतोहरी, तरुणी, तरट्टी, वन्ही विअष्खणी परहिास पेषणी सुन्दरी सार्थ जवे देखिअ तवे मने करे तेसरा लागि तीनू उपेष्खिअ। . . ..नअनाञ्चल सञ्चारे भ्रूलताभङ्ग, जनि कज्जल कल्लोलिनी करी वीची विवर्त बड़ी बड़ी शफरी तरङ्ग।..... दोखे हीनि, माझ खीनि। रसिके आनलि जूँआ जीति, पयोधर के भरे भागए चह। नेत्रक रीति तीय भागे तीनु भुवन साह।.... काहु होअ अइसनो आस कइसे लागत आचर वतास। तान्हि करी कुटिल कटाक्ष छटा कन्दर्पशर श्रेणी जनो नागरन्हि कॉ मन गाड।"

"वे वेश्याये जब सुख पूर्वक मण्डन करती, केश रचना करती, तिलक और पत्रावली कतर कर लगाती, सुन्दर दिव्य वस्त्र पहनती, केश उठा उठा कर बाँधतीं, सखियो को छेडती, हँस कर देखती, तब सयानी, लोनी, पातुरी, पुत्रबधू युवती, चञ्चला, नवेली, चतुर, हँसी ठट्टा मे कुशल, सुन्दरी, गण को देख कर मन मे ऐसा होता था, कि तीसरे पुरुषार्थ काम के लिए धर्म, अर्थ तथा मोक्ष तीनो को छोड दे।... नयनाञ्चल के सचार होने पर भ्रूलता मे भङ्ग होता था, जिससे ऐसा जान पडता था, मानो कज्जल की नदी को लहरो की भॅवर मे बडी-बडी मछलियॉ डोलती हो।.. . दोष हीन, क्षीण कटि वाली वेश्याये मानो रसिको द्वारा जुआ मे जीत कर लाई गई हो और पयोधर के भार से भागना चाहती हो। नेत्र अपने तीन (श्वेत, रक्त, कृष्ण) भागो से अपने को त्रिलोक

का शासक समझता था।. .. किसी किसी के मन मे ऐसा होता था, कि किस प्रकार अचल की हवा लगे। उनकी कुटिल कटाक्ष-छटा कामदेव के वाणो की श्रेणी जैसी सब नागरिको के मन मे गड जाती थी।" वेश्याओ की भाँति ही जौनपुर की वनिनियो का दृश्य भी विलासोन्मादपूर्ण है :—

सव दिसँ पसरु पसार रूप जोव्वण गुणे आगरि।
वानिनि वीथी भॉडि वइस सए सहसहि नागरि।
सम्भाषण किछु वेआज कइ तासओ कहिनी सव्व कट,
विक्कणइ वेसाहइ अप्पु सुखे डिठि कुतूहल लाभ रह।"

सब दिशाओ मे विक्रेय-वस्तुओ का फैलाव फैला था। रूपवती, युवती, नागरी, गुणागरी वनिनियाँ गलियो मे सहस्रो सखियो के साथ बैठी थीं। सब कोई कुछ न कुछ बहाना करके उनसे बात चीत करता था, कहानी कहता था। सुख से बेचता, खरीदता था, दृष्टि कुतूहल लाभ मे रह जाता था। उन वेश्याओ और वनिनियो की सारी रूप-माधुरी सत्सकल्प की दृष्टि से ध्वंसोन्माद-वर्द्धिनी ही है। विद्यापति जैसे "पुरुष-परीक्षा" के लेखक साहित्य-कार से वह छिपी नही रह सकी है। उनके हृदय को हीनता का परिचय कराने के लिए कवि ने लिखा है :—

"ज गुणमन्ता अलहना गौरव लहइ भुवंग।
वेसा मन्दिर धुअ वसइ धुत्तह रूप अनंग।"

"जहाँ गुणी पुरुष कुछ नही पाते, किन्तु जार पुरुष गौरव प्राप्त करते हैं। निश्चय ही वेश्या के घर मे कामदेव धूर्त्त के रूप मे वास करते हैं।" देश की ऐसी ही नारकीय-दुर्गति के क्षण मे राजकुमार कीर्त्तिसिंह के धर्म और अर्थ के सात्विक-संकल्प का आलोक-सूर्य उदित होता है। करुणा और वीर भाव का ऐसा मनोरम समन्वय-दृश्य हमे साहित्य सम्राट् तुलसीदास की रामायण में ही उपलब्ध होता है। माता-मत्री-मित्र सभी कहते हैं :—

तुझे सत्तुहि मित्त कए भुञ्जह तिरहुति राज।"

"तुम शत्रु को मित्र बनाकर तिरहुत का राज्य भोगो। पर मिलते हुए राज्य का तिरस्कार कर पिता के प्रति पूज्य-निष्ठा का परिचय देने के लिए वीर-संकल्प का कीर्त्तिसिंह मे जो ज्वार उठता है, उसमे पुरुषत्व के सनातन-सौदर्य का दर्शन किसी भी लोक-मंगलनिष्ठ-सहृदय को सहज ही प्राप्त हो सकता है। वैराग्यशील, निष्क्रिय जीवन को उद्बुध करने के लिए जिस अप्रतिम-ओजस्विता

की आवश्यकता होती है, उसका स्वर कीर्त्तिसिंह द्वारा महाकवि ने इस प्रकार श्रुतिगोचर कराया है :—

बप्प वैरि उद्धरओ न बुण परिवण्णा चुक्कओ।
संगर साहस करओ ण उण सरणागत मुक्कओ।
दाने दलओ दारिद्द न ऊँन नहि अष्खर भासओ।
याने पाट वरु करओ न ऊँण नीअ सत्ति पआसओ।
अभिमान जओ रष्खओ जीवसओ,
नीच समाज न करओ रति।
ते रहउँ कि जाउँ कि रज्ज मम—

मै पिताजी के वैर का बदला लूँगा, किन्तु प्रण से नही टलूँगा। युद्ध-क्षेत्र मे साहस करूँगा। किन्तु शरणागत होकर मुक्त न होऊँगा। दान से दारिद्र्य का दलन करूँगा, किन्तु याचको से "नही" न करूँगा। युद्धयात्रा करके कौशल दिखाऊँगा, नीच शक्ति न दिखाऊँगा। अपने अभिमान की रक्षा करके जीते जी नीच जन की संगति न करूँगा, चाहे राज्य रहे, चाहे सब लुट जाए।

इस महिमामय महाव्रत को लेकर दो राजकुमार जब सब साधनो को छोडकर जौनपुर के बादशाह से मिलने के लिए घर से पैदल विदा होते हैं। उस समय उन्हे देखकर कोई ऐसा नही था, जिसकी आँखो से आँसू की धारा न बह चली हो—

"ता पेष्खन्ते कमण कॉ नअण न लग्गइ नोर।"

विद्यापति ने कीर्त्तिसिंह के शील-दर्शन द्वारा जीवन की उद्योगशीलता के जिस शाश्वत् सत्य का प्रत्यक्ष कराया है, वह देश-काल की सीमा को पार कर सनातन जीवन का आलोक बनते हुए प्राप्त हुआ है। आत्मगौरव के इस उत्सर्गमय लोक-पावन-सकल्प की प्रतिक्रिया सामान्य-जन-जीवन मे करुणा के समुद्र को उद्वेलित कर देती है। लोक-मगल की सकल्प-साधना मे राजनीतिक-कुचक्र से निरपेक्ष सात्विक जीवन की सहानुभूति की सुलभता नितान्त स्वाभाविक है। कविवर तुलसीदास जी ने राम-वन-यात्रा के प्रसंग में सामान्य-जनो की सहानुभूति का सजीव दृश्य अङ्कित किया है। यहाँ भी तपः सकल्पशील राजकुमारो के प्रति सामान्यजन-जीवन मे सहानुभूति का समुद्र उमडते हुए दिखाई देता है। जो लोग जिस प्रकार की सहायता कर सकते हैं, वे उसे करने मे सौभाग्य का अनुभव करते दिखाई देते हैं:—

काहु कापल काहु घोल।
काहु सम्बल देल थोल।
काहु पाती भेलि पैठि।
काहु सेवक लागु भैठि।
काहु देल ऋण उधार।
काहु करिअउ नदी क पार।
काहुओ वहल भार बोझ।
काहु वाट कहल सोझ।

किसी ने कपडा, किसी ने घोडा दिया। किसी ने रास्ते के लिए थोडा सम्बल दिया। कोई पंक्ति मे आकर साथ मे हो गया। कोई सेवक भेंटने लगा। किसी ने उधार ऋण दिया, किसी ने नदी पार कराया। किसी ने बोझ पहुँचाया, किसी ने सीधा मार्ग बतलाया। जौनपुर के विलास वैभव और वहाँ के जनसमूह के कार्यव्यवहार का विशद तथा आकर्षक-दृश्य अंकित करने मे कवि की वस्तु-चेतना का मनोरम साक्षात्कार मिलता है:—

"लोअन केरा वल्लहा लच्छी के विसराम।
पल्लविअ कुसुमिअ फलिअ उपवन चूअ चंपक सोहिआ।
मअरन्द पाण विमुद्ध महअर सद्द मानस मोहिआ।
धअ धवल हर घर सहस पेष्खिअ कनक कलशहि मंडिआ।
सम्मान दान विवाह उच्छव गीअ नाटक कव्वही।
आतिथ्य विनय विवेक कौतुक समय पेल्लिअ सव्वही।"

"जो लोचनो के लिए प्रिय तथा लक्ष्मी का विश्राम स्थान था। आम और चम्पा से सुशोभित उपवन थे, जो पल्लवित तथा फल-फूल से भरे थे। मकरन्द-पान मे विमुग्ध भौरो की गुजार से मन मोहित हो जाता था। सहस्रो स्वर्ण-कलशो से मडित ध्वजयुक्त धौत-शिवालय थे। संमान, दान, विवाह, उत्सव, गीत, नाटक, काव्य, आतिथ्य, विनय और विनोद मे लोग समय बिताते थे।"

भाषा उस युग की बोली से सर्वथा संपृक्त है, इसलिए अन्तर और बाहर दोनो ओर से पूर्ण स्वाभाविकता की प्रतीति होती है। मुसलमानो के आचार और व्यवहार का नितान्त क्रूरतापूर्ण असहृदय रूप कवि ने दिखाया है।

अवे वे भणंता सराधा पिवन्ता,
कलीमा कहन्ता कलामे जीअन्ता।

कसीदा कढन्ता मसीदा भरन्ता,
कितेवा पढन्ता तुरुक्का अनन्ता।
सअद सेरणी विलह सव्व को जूठ सव्वे पा।
द्वाआ दे दरवेस पाव नहि गारि पारि जा।
मषद्रूम नरावइ दोम जओ ददस दस द्वारओ।
पुन्दकारी हुकुम कहब्ओ का अपनेव्ओ जोए परारिहा।

कोई अबे-बे कहते थे, शराब पीते जाते थे, कोई कल्मा पढते थे, करीमा कहते थे, कोई कसीदा काटते थे, कोई मसीद भरते थे, कोई किताबें पढते थे। असंख्य मुसलमान थे। ' सय्यद, रवैरिणी स्त्री और फकीर सभी हर एक का जूठा खाते है। दरवेश दुआ देता है, परन्तु जब कुछ नहीं पाता, तब गाली देकर चला जाता है। मखदूम डोम की तरह सब दिशाओ से भाजन हाथ मे ले आता है। काजी के हुक्म की बात क्या कहूँ? अपनी स्त्री पराई हो जाती है।"

हिन्दुओ और मुसलमानो की परस्पर विरोधिनी-दयनीय-दशा दृष्टिगत होती है—

"हिन्दू तुरके मिलल वास,
एकक धम्मे अओका उपहास।"

राजदरबार जहाँ राजकुमारो को आवेदन-पत्र देना है, वहाँ की लापरवाही भी कम विचित्र नही है। दरबार मे आने पर वर्षों बीत जाते हैं, पर बादशाह का दर्शन नही मिलता। ऐसी विषम-स्थिति मे बादशाह से मिलने का सौभाग्य कितना दुर्लभ है :—

"दरबार पइट्ठे दिवस भइट्ठे बरिम्हु भेट न पावन्ता।"

राजकीय विलास-भवन का ऐश्वर्यमय-दृश्य अंकित करने मे कवि ने वैसी ही सहृदयता दिखाई है, जैसी लंका का वर्णन करने मे कवि सम्राट् तुलसीदास जी की लेखनी ने, परन्तु इस काव्य की भाषा पद्यात्मक भावनामयी ही नही, दृश्यात्मक गद्यमयी भी है :—

"ताहि प्रासादन्हि करो वज्रमणि घटित काञ्चन कलश छाज।
जन्हि करो माथे सूर्य रथ वहल पर्यन्त सात घोला करो अट्ठा-
इसओ टाप वाज।
प्रमदवन, पुष्पवाटिका, कृत्तिम नदी, क्रीडाशैल, धारागृह, यन्त्र-व्यजन, शृंगार सकेत, माधवी मंडप, विश्राम चौरा, चित्रशाली खट्वा,

हिडोल, कुसुमशय्या, प्रदीप-माणिक्य, चन्द्रकान्तशिला, चतुस्सम पल्वल करो परमार्थ पुच्छहि सिआन एवाय अभ्यन्तर करी वार्ता के जान।

उन महलो मे वज्रमणि (हीरक) जडे हुए सुवर्ण-कलश शोभित थे। जिनके मस्तक पर सूर्य के रथ को लेकर चक्कर काटते हुए सातो घोडो की अट्ठाइस टापे बजती थी। प्रमदवन, पुष्पवाटिका, कृत्रिम नदी, क्रीडाशैल, धारागृह (फव्वारा) यन्त्रव्यजन, शृगार का सकेत, माधवी-मंडप, विश्राम के लिए चबूतरा, चित्रशाली खट्वा, हिडोला, फूलो की सेज, प्रदीप माणिक्य, चन्द्रकान्तशिला, चौकोन तालाब का सच्चा हाल सयानो से पूछ कर जान लिया। अन्दर की बात कौन जाने !

इस प्रकार बड़ी कठिनाइयो के पश्चात् राजकुमारो को बादशाह इब्राहिम-शाह से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मिथिला का समाचार सुनकर बादशाह क्रोध से तमतमा उठा। उसकी झाँकी देते हुये कवि ने रौद्र-रस की मनोरम प्रतीति कराई है :—

रोमांचिअ भुअ जुअल भौंह जुअल भरि गेट्ठि परिअउँ।
अहर बिम्ब पप्फुरिअ नयने कोकनद कान्ति धरिअउँ।

दोनो भुजाये रोमाचित हो उठी। दोनो भौंहों मे गाठे पड गई। अधर-बिम्ब फरकने लगे। नेत्रो ने रक्त कमल की शोभा धारण की।

युद्धयात्रा-वर्णन :—अस्लान पर चढाई करने के लिए बादशाह की आज्ञा मिलते ही तुरन्त युद्धयात्रा की तैयारी होती है। मुसलमानो की विजयिनी सेना की भयानकता का भावोद्बोध कराने के लिए कवि ने युद्ध-यात्रा का प्रभावपूर्ण प्रत्यक्ष कराया है :—

"गिरि टरइ महि पड़इ नाग मन कंपिआ।
तरणि रथ गगन-पथ धूलिभरे झंपिआ।

\+ + +

खग्ग लइ गव्व कइ तुलुक जब जुज्झइ।
अपि सगर सुरनअर संक पतिम मुज्झइ।
सोखिजल किअउ थल पत्ति पअ भारही।
जान धुअ संक हुअ सअल संसारही।

\+ + +

इबराहिम साह पआन ओ पुहवि नरेसर कमन सह।
गिरि साअर पार डॅबार नहीं रेअति भेले जीव रह।"

"पर्वत चलायमान हुए, पृथ्वी धँसने लगी। शेषनाग का हृदय काँप उठा। सूर्य का रथ आकाश-मार्ग मे धूलि से छिप गया। . मुसलमान जब तल्वार लेकर अभिमान करके युद्ध करते थे, तो देवताओ का सारा नगर भय मे पडकर मूर्छित हो जाता था। पैदल सेना ने पैरो के बल से ही जल को सुखा कर थल कर दिया, जान कर सारे ससार को निश्चय ही भय उत्पन्न हुआ। ..... इब्राहिमशाह की उस युद्धयात्रा को पृथ्वी का कौन नरेश सहन कर सकता था ? पर्वत-सागर के पार जाने पर भी उबार नही था, केवल प्रजा होने पर ही जान रहती थी।"

दुर्भाग्यवश बादशाही सेना पूर्व की ओर न चल कर पश्चिम की ओर मुड गई। इधर राजकुमारो के जीवन का आर्थिक-सबल भी समाप्त हो गया। कवि-हृदय की करुणा का यहाँ मर्मस्पर्शी स्वर सुनाई देता है :—

> सम्बर निरबल किरिस अम्वर भेल पुराण।
> जवन सभावहि निक्करुण तोंण सुमरु सुरुतान।

बिर्भेहीन नत्थि वाणिज्य, णहु विदेश ऋण सभरइ, नहु मानधनष्खि भिष्ख भावइ। राअ घरहि उँप्पत्ति, नहि दीन वअन नहु वअन आवइ।

> सेविअ सामि निसङ्क भए दैव न पुरवए आस।
> अहह महत्तर किक्करउँ गण्डब्वे गणिब्व उँपास।
>
> \+ + +
>
> भित्त भोंगि भुष्खे छोड्ढोअ, घोर घास नहु लहइ,।
> दिवस दिवसे अति दुष्ख वढिअ।

राह खर्च समाप्त हो गया, शरीर दुर्बल हो गए, कपड़े पुराने हो गए। यवन स्वभाव से ही क्रूर होते है, सुल्तान ने इस पर याद न की। रुपये के विना वाणिज्य भी नहीं हो सकता, विदेश ऋण भी नही मिल सकता। मानधन को भीख मागना अच्छा नही जान पड़ता। राजा के घर मे उत्पत्ति, दीन वचन मुख मे कभी नहीं आ सकता ? निःशक होकर स्वामी की सेवा की, तब भी दैव आशा नहीं पूरी करता। अहा ! महापुरुष क्या करें,

गिन गिन कर उपवास करने लगे। . . परिजन भूख के मारे साथ छोड कर भाग गए, घोड़े को घास नही मिलती, दिन पर दिन अत्यन्त दुःख बढ़ गया।"

भाग्यवश बादशाह की बुद्धि मे परिवर्त्तन हुआ। सेना मिथिला की ओर मुड़ी। जब सेना मिथिला मे पहुँची, उस समय अस्लान का पकड़ना सैनिकों

के लिए कठिन प्रतीत हुआ। इस अवसर पर वीरता का अगाधसमुद्र पूर्णवेग के साथ उमडते हुए कीर्त्तिसिंह मे दिखाई देता है। उनकी ललकार मे विश्व के न्यायनिष्ठ सैनिक-हृदय का परमोत्साह एवम् चरमोल्लास झलक रहा है :—

"अज्जु वैरि उद्धरब्बो सत्तु जइ सङ्ग आवइ।
जइ तसु पष्ख सपष्ख इन्द आपन वल लावइ।
जइ ता रष्खइ शंम्भु अवर हरि बंभ सहित भइ।
फणिवइ लागु गोहारि चाप जमराज कोप कइ।"
"असलान गे मारब्बो तब्बो हुअब्बो तासु रुहिर लइ देब्बो पा।

आज वैर का बदला चुका लूँगा। यदि शत्रु संग्राम मे आजाए, चाहे उसके पक्ष से इन्द्र भी अपनी सैन्य-शक्ति लेकर आएँ, यदि उसकी रक्षा के लिए विष्णु और ब्रह्मा के साथ शकर ही क्यो न तैयार हो? चाहे वह शेषनाग की जाकर दुहाई दे और यमराज ही उसकी ओर से क्रुद्ध होकर आएँ। इतना होने पर भी यदि असलान को मारूँ, तो मै, मै हूँ। उसके रक्त को लाकर चरणो पर मै रख दूँ।"

न्याय के योद्धा का उत्साह सफल होता है। भागते हुए असलान पकडा जाता है, पर उसे भागता हुआ जानकर राजकुमार प्राणदान देते हैं। इस प्रकार मिथिला के इतिहास मे न्याय-शासन के आदर्श की प्रतिष्ठा होती है। युद्ध के परिणाम का प्रत्यक्ष कराते हुए महाकवि ने बीभत्स-रस की बड़ी चमत्कार-पूर्ण व्यजना की है। हिन्दी की काव्य-धारा मे युद्ध की घृणामयी नारकीय-परिणति का ऐसा दृश्याङ्कन खोजने से युगान्तर के महान् कवियो मे ही कही प्राप्त हो सकता है। उदाहरण के लिए कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:—

पले रुण्ड-मुण्डो खरो बाहु दण्डो।
सिआरू कलंकोइ कंकाल खंडो।
धराधूरि लोट्टन्त टुट्टन्त काआ।
लरन्ता चलन्ता पझालेन्ति पाआ।
अरुज्झाल अन्तावली जालवद्धा,
बसावेग बूडन्त उड्डन्त गिद्धा।
गअण्डी करन्तो पिवन्तो रमन्तो
महामासु खण्डो परन्तो भरन्तो।

कहीं कबन्ध, कही सिर पड़ा है; कही बाँह खड़ी है। स्यार कंकाल-खंड को उकेल रहे हैं। कटे हुए शरीर पृथ्वी पर लोट रहे हैं। लड़ते, चलते हुए पैरो को फँसा लेते हैं: अँतडियो के जाल मे गृद्ध बँधकर उलझते हैं, पुनः

शीघ्रता से चर्बी मे डूब कर उड जाते हैं। प्रेत गाता, रक्त पीता, आनन्द से घूमता हुआ, महामास-खण्ड को खा रहा था।

भाषा-वैभव :—इस प्रकार "कीर्त्तिलता" काव्य का अनुशीलन करने से इसकी भाषा ऐश्वर्यमय-अपूर्व-दृश्य-विधायिनी 'सुरसा" जान पडती है। इतने लघु-कलेवर के काव्य मे इतने रसो की मार्मिक-व्यजना इतिहास के सजीव आलोक के साथ संसार के काव्य मे अन्यत्र नही मिल सकती है। जो विचारक विद्यापति की भाषा को भाषा के इतिहास की किसी परम्परा के साथ मिलाने में ही कृतार्थता का अनुभव करते हैं, उन्हे कवि की भाषा के सम्बन्ध मे आचार्य मम्मट की इस उक्ति का यदि तिरस्कार करने वाला कहा जाए, तो अनुचित न होगा। कवि जिस भाषा का स्रष्टा होता है उसकी उस काव्यभाषा की विशेषताएँ आचार्य मम्मट की ही दृष्टि से देखी जानी चाहिए।

नियति-कृत-नियम रहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरस-रुचिरा निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।

कवि की भाषा परम्परा के किसी नियम का अनुशासन नही मानती है। वह पूर्णतया आनन्दमयी होती है, किसी प्रकार के बन्धन को नही स्वीकार करती है। नवो-रसो से वह मनोहरा होती है। रचनात्मक-दृष्टि का उन्मेष उसकी परिणति का चरम ध्येय होता है। इसलिए सच्चे कवि की वाणी संसार की सबसे श्रेष्ट विभूति होती है। कवि विद्यापति ने एक ओर मैथिली बोली, दूसरी ओर अरबी-फारसी के सामयिक प्रवाह का प्रतिनिधित्व किया है, साथही इनकी प्रतिभा को अपभ्रश के साथ प्राकृत और सस्कृत के अपूर्व-मिलन का दृश्य अकित करने मे अद्‌भुत सफलता मिली है। कहीं पद्य की धारा बहती हुई मिलती है, तो कहीं वस्तु चेतना की रमणीय-सृष्टि गद्य के आलोक मे निखरी हुई प्राप्त होती है। कही उपमा है, तो कही उत्प्रेक्षा का अपूर्व चमत्कार। रूपकात्मक चमत्कृति तो साङ्ग-पूर्णता के साथ काव्य के आरम्भ से लेकर अन्त तक अनेक स्थलो मे मिलती है। यदि अरूप की रूपकात्मक कल्पना मे कवि के कृतित्व की सार्थकता मानी जाए, तो विद्यापति की रूपक-सृष्टि उनके काव्य की अतुल-शोभा बढ़ाने वाली है। उदाहरण के लिए भाषा की चमत्कृति का यह दृश्य दर्शनीय है :—

"प्रबल-शत्रु-बल-संघट्ट सम्मिलन सम्मर्दसंजात पदाघात तरलतरतुरङ्ग-खुरक्षुण्ण-वसुन्धरा धूलि संभार घनान्धकार श्याम समर निशाभिसारिका-प्रायजयलक्ष्मी

कर ग्रहण करेओ। .. तान्हि करेओ अहंकार सारेओ तरलतरवारिधारातरङ्ग-सग्राम समुद्र फेणप्राय यश उँद्धरि दिगन्त विथ्थरेओ।

प्रबल रिपु-दल के संघर्ष से पदाघात के कारण चचल हुए घोडो के खुरो द्वारा दलित पृथ्वी से धूलि समूह रूपी अधकार छा गया, उस अधकार मे समर रूपी निशा अँधेरी हो गई। इस निशा मे अभिसारिका स्वरूप आती हुई जयलक्ष्मी का इस राजा ने पाणिग्रहण किया।. . उसने अहकार करके अपनी तलवार की तरल धारा तरग से सग्राम रूपी समुद्र दूर हटाया और उसमे से यश रूपी फेन निकाल कर सब दिशाओ के अन्त तक फैलाया। इस चमत्कृतिपूर्ण रसात्मकता के कारण ही कवि ने अपनी भाषा को "सुरसा" कहा है :—

जइ सुरसा होसइ मझु भाषा।
जो बुज्झिह सो करिह पसंसा।

काव्य के अन्त मे सस्कृतभाषा के साथ कवि ने अपनी भाषा का इस प्रकार मधुर परिचय दिया है :—

माधुर्य प्रसवस्थली गुरुयशो विस्तार शिक्षा सखी।
यावद्विश्वमिदं च खेलनकवेर्विद्यापते भारती।

"खेलन कवि विद्यापति की भारती माधुर्य की उत्पत्ति-भूमि तथा श्रेष्ठ यश के विस्तार की शिक्षा देने वाली सखी है। जब तक संसार है, तब तक यह विद्यमान रहे।" महाकवि की यह उपसंहारोक्ति उसके काव्य रचना-कौशल के सर्वथा अनुरूप है। इसी की श्रुति काव्यारभ मे "बालचन्द बिज्जावइ भाषा" के रूप मे सुनाई देती है।

कवि की समोहन-वाणी की प्रभविष्णुता अपने कलात्मक आकर्षण-वैचित्र्य से असाधारण-वेधिनी है। जौनपुर की वेश्याओ के केशो मे विलसित फूलो का प्रत्यक्ष करते समय-लोकाभ्युदयोन्मुखी कवि-कल्पना कितनी अपूर्व झाँकी दे रही है।

"तन्हि केस कुसुम वस, जनि मान्य जनक लज्जाबलंवित मुखचन्द्र चन्द्रिका करो अधओगति देखि अन्धकार हस।"

उनके केशो मे फूल लगे थे, जिससे ऐसा जान पडता था, मानो माननीय लोगो के लज्जावनत मुखचन्द्र की चन्द्रिका की अधोगति देखकर अन्धकार हँस रहा हो। यहाँ अन्धकार के हँसने मे कवि की भाषा की वक्रता का पूर्ण प्रत्यक्ष हो रहा है। इसी प्रकार वेश्याओ के केश कलाप और उनके अँजन-रंजित नेत्रो का प्रत्यक्ष कराते समय भी कवि-कल्पना से शिक्षा-सखी रूप का अच्छा परिचय मिल जाता है :—

जन्हि केस धूप धूम करी रेखा ध्रुवहु उप्पर जा,
काहु काहु अइसेनओ संग करे काजरे चान्द कलंक ।

उन वेश्याओं की धूप धूमलेखारूपी केश छटा ध्रुव के भी ऊपर जाती थीं। कोई कोई ऐसी भी सगति करते थे, कि उनके काजल के कारण चन्द्रमा मे कलक है। इस प्रकार प्रसंगानुरूप-भाषा को देखने पर कवि की अद्भुत-शब्द-योजनाशक्ति और उसकी अचूक वक्रता की समन्विति सर्वत्र मिलती है। कायरपुरुष की स्तुति करती हुई कवि-कल्पना की वक्रता यहाँ कितनी मार्मिक है:—

जो अपमाने दुक्ख न मानइ।
दान खग्ग को मम्म न जानइ।
पर उअआरे धम्म न जोअइ।
सो धण्णो निच्चिन्ते सोअइ।

जो अपमान होने पर दुःख नही मानता। दान और खड्ग का मर्म नही जानता। तथा परोपकार मे जो धर्म नही देखता है, वह धन्य है, वह निश्चिन्त होकर सोता है। अर्थात् "निष्क्रिय जीवन मृत्यु है" की कितनी चुभती हुई व्यजना यहाँ हो रही हैं। इस रचना द्वारा महाकवि के केवल "अवहट्ठ" पर ही युगान्तर प्रवर्त्तनाधिकार की प्रतीति नही होती है, अपितु सस्कृत-भाषा में भी कवि की रूपकात्मक चमत्कृति की अभिव्यंजनात्मक स्पर्धा अतुलनीय है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा की कितनी अनुपम समन्विति के साथ कवि ने अपनी काव्य वाणी के सत्प्रभाव का ग्रथारम्भ मे प्रत्यक्ष कराया है:—

द्वाः सर्वार्थ समागमस्य, रसना रङ्गास्थलीनर्त्तकी,
तत्त्वालोकन कज्जलध्वज शिखा वैदग्ध्यविश्रामभू।
शृङ्गारादिरसप्रसादलहरी स्वर्लोककल्लोलिनी,
कल्पान्तस्थिरकीर्त्तिसम्भ्रमसखी सा भारती पातु व.।

सब अर्थ आने के लिए जो द्वार स्वरूप हैं, जिह्वारूपी रङ्गास्थली पर जो नर्त्तकी के समान विराजती हैं। तत्वदर्शन करने के लिए जो दीपक की शिखा के समान हैं, चतुराई की मानो विश्राम भूमि है। श्रृंगारादि रसरूपी निर्मल तरगों के लिए मंदाकिनी हैं। प्रलयकाल तक स्थिर रहने वाली कीर्ति की प्रिय सखी हैं, वह भारती तुम्हारी रक्षा करे।" कवि की इस काव्यभाषा-निष्ठा मे काव्यादर्श की पूर्णता का जैसा प्रत्यक्ष हो रहा है, वैसी ही महाकवि की काव्याभिव्यजना भी है। इसमे किसी के लिए भ्रान्ति की आवश्यकता नही है। यह अवश्य है,

कि सत्काव्य का उचित मूल्याङ्कन करने के अधिकारी साधारण-जन कदापि नही हो सकते हैं:—

महुअर बुज्झइ कुसुम रस ,
कव्व कलाउ छइल्ल ।"

"भ्रमर ही फूलो के रस का मूल्य समझता है, कला-विज्ञ पुरुष ही काव्य का रस ले सकता है ।" पल्लवादि अथवा पल्लवान्त मे जो संस्कृत-कविताये कवि की मिलती हैं, उनमे भी महाकवि की नव-नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा अनुपम-वैचित्र्यपूर्ण है । रस की अक्षर-व्यापिनी-प्रतीति सर्वत्र मनोहारिणी है । व्यष्टि और समष्टि की अभयानन्ददर्शिनी-निष्ठा के साथ कवि का विवेक और हृदय सर्वत्र एकरस और दिव्य है । उद्योग और साहस के द्वारा समस्त सिद्धियो की उपलब्धि का महाकवि ने सुन्दर प्रत्यक्ष कराया है—

अवसओ उद्दम लक्खि बस, अबसओ साहस सिद्धि ।
पुरुष विअक्खण जञ्चलइ तं तं मिलइ समिद्धि ।

निश्चय ही लक्ष्मी उद्योग मे बसती हैं, अवश्य ही साहस से कार्य मे सफलता मिलती है । विलक्षण पुरुष जहाँ जाता है । वही उसे समृद्धि की प्राप्ति होती है । भाषा ऐसी है, जैसे विश्वमगल का गायक मेघ अपरिसीम वेग मे गरज रहा हो । जब जौनपुर से बादशाह की सेना पूर्व की ओर न जाकर पश्चिम की ओर चलने लगी, तब राजकुमारो की करुणाकातरता नैराश्य की क्षितिज मे कुंठित होने लगी । तुरंत कवि के मंत्रिहृदय का अविजेय-शौर्य संकल्प अप्रतिहत वेग से गर्जित हो उठा है:—

फल दैवह आअत पुरिस कम्म साहस करिज्जइ ।
जइ साहसहुँ न सिद्धि हो, झँप करिब्बउँ काह ।
होन्व होसइ एक्क पइ वोर पुरिस उच्छाह ।

फल तो दैवाधीन है, पुरुष का कार्य साहस करना है, वही कीजिए । यदि साहस करने से भी सिद्धि न मिले, तो चिन्ता करने से क्या होगा ? जो होना है, होगा, पर वीर-पुरुष के लिए एक उत्साह है । इस प्रकार राजनैतिक-अधिकार-वाद की समन्वयशालिनी विजयिनी परिणति का प्रत्यक्ष कराने मे कवि की भाषा पूर्ण-समर्थ है । प्राणमय-स्वर की यह श्रुति कर्मयोग के रंगमंच की प्रभाव पूर्ण-अभिनेयता के साथ दर्शित है । काव्य के प्राण का यह स्वर काव्य में सर्वत्र झंकृत है :—

"तावे न जीवन नेह रह, जावे न लग्गइ मान ।"

"तब तक जीवन मे कोई स्नेह नही, जब तक इसमे मान न हो" भारतीय राजनीति की मानधनता की जीवनशील-साधना भी सर्वथा लोक-पावनी है :—

तैसना परम कष्ट काष्ठा करे पस्तार दुहु सोदर समाज, अनुचिन लज्जा, आचारक रक्षा, गुणक परीक्षा, हरिश्चन्द्र क कथा, नल क व्यवस्था। रामदेव क रीति, दान प्रीति, निव्व एक पाणिग्गह, साहस, अकृत्य बाधा, बलि कर्ण, दधीचि करो स्पर्धा साध।

उस समय परम कष्ट की अवस्था मे दोनो भाइयो के समाज मे एक दूसरे की लज्जा थी, आचार की रक्षा थी, गुण की परीक्षा थी। श्रीराम की रीति और दान की प्रीति थी। मित्र को उबारने मे उत्साह था। अनुचित कार्य करने मे बाधा थी। वलि, कर्ण, दधीचि से स्पर्धा होती थी। राजनीति और धर्मनीति की ऐसी दिव्य-ओजस्विनी समन्वय ध्वनि भारतीय-आत्मा की पूर्णता का साक्षात्कार है।

कीर्त्तिलता की भाषा को कवि ने परम्परानुवर्त्तिनी बनाने का पूर्ण प्रयास किया है, पर मैथिली के साथ युगजीवन का भी पूर्ण प्रतिनिधित्व है। अनुनासिकत्व के निर्धारण मे कोई व्यवस्था नही है—"कलशहि" (२।६६) "तोषारहि" (२।१७६) का कही प्रयोग हुआ है, कही "कालहि" (३।१५) ठामहि (२।२३६) का प्रयोग मिलता है। "ण" और "न" के प्रयोग मे कोई नियम नही है—"नाह (१।२५) "णाह (१।४४) दोनो रूप मिलते है। "व" और "ब" की भी ऐसी ही दशा है—बअन (४।४५) वमइ (१।६)। ह्रस्व "ऍ" और ह्रस्व ' ऑ" के भी प्रयोग मिलते हैं। संयुक्त-स्वरो के साथ संप्रयुक्त भी आए हैं—पाइआ, उअआर आदि। "ञ" का अधिक प्रयोग सानुनासिकता व्यक्त करने के लिए हुआ है। "श" का तत्सम मे, 'स' का तद्भव शब्दो मे प्रयोग हुआ है। कहीं अर्द्ध-तत्सम रूप भी मिलता है—"इअरो" (इतरः)। 'र' 'ल' 'ड' का परस्पर विनिमय हुआ है। उच्चारण के सरलीकरण का अधिक ध्यान है। कारको का विभक्ति-हीन प्रयोग भी हुआ है। कारक-विभक्ति के लिए चन्द्रविन्दुओ का प्रायः प्रयोग मिलता है।

अपभ्रंश के परसर्गों के साथ नूतन प्रयोग भी मिलते हैं। वाक्यों की गठन हिन्दी जैसी ही है। तत्सम शब्द अपेक्षाकृत अधिक हैं। तद्भव शब्दो के प्रयोग मे युग प्रतिनिधित्व की भावना प्रबल है। विदेशी शब्द भी पर्याप्त हैं, जिन्हे कवि ने यथेच्छ तोड़ा-मरोडा भी है। ऐसे लगभग सौ शब्द अरबी-फारसी के होगे। देशी शब्द प्रायः ऐसे आए हैं, जो आज भी मिलते हैं।

सज्ञाये शुद्ध रूप के साथ एकारान्त और इकरान्त भी मिलती है। कर्त्ता-कर्म ादि कारको मे एक बचन मे हिकारान्त तथा बहुवचन मे न्हिकारान्त या ,कारान्त रूप मिलते है। सर्वनाम का भिन्न-भिन्न रूप दिखाई देता है। प्रश्न ाचक सर्वनाम मे के, कॉ, की, को, कवन, कमण, आदि खूब मिलता है। बंध सूचित करने के लिए जसु, जिस, जस्स:, जन्ने, जेइ आदि रूप मिलता । क्रिया-रूपो का बाहुल्य नही है। विशेषण अधिकाश तद्भव है। भूतकाल का गेग क्तान्त के तद्भव अथवा लकारान्त-रूप मे ही हुआ है—जैसे चलल, जानल, रेल आदि। ष्य के तद्भव से भविष्य का बोध कराया गया है:—जैसे होसइ, चेछह, बुज्झिह आदि। वर्त्तमान काल शतृ का तद्भव रूप अधिक मिलता है— ।वन्ता, करन्ता, कहन्ते आदि। पूर्वकालिका क्रिया इकरान्त मिलती है— रि, देक्खि, वाइ आदि। "क्ष" का प्रयोग "क्ख" की भॉति लिखने मे ष्ख थवा "प" के रूप मे हुआ है। लिग क प्रयोग मे अनिश्चितता है। विशेषणो ा कृदन्तज विशेषणो मे लिग की व्यवस्था मिलती है। "कीर्त्तिलता" की भापा वर्त्ती अपभ्रश का महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष करातो हे। मध्यकालिक तथा आधुनिक र्य-भाषाओ की विकास-परम्परा का सम्बन्ध-परिचय इससे भलीभॉति मिल ता है। 'रासो' के बाद अनेक रगी ध्वनियो का इसमे प्रभावपूर्ण दर्शन ऊता है। इस प्रकार काव्य-परम्परा के प्रवर्त्तन के साथ अपभ्रश की कासोन्मुखीपूर्णता का इस रचना द्वारा मार्मिक प्रत्यक्ष हो जाता है।

निष्कर्ष :—भारतीय चिन्तन धारा मे कर्म और ज्ञान के सघर्ष की आदर्श-रेणति प्रेम मे हुई है और उसी की सप्राण तथा रमणीय अभिव्यजना कला के ारा हुई है। चिन्तन दृष्टि की इसी समन्वयशालिनी गम्भीरता के कारण ारतीय कला मे दर्शन और विज्ञान के सामजस्य का अपूर्व आकर्षण प्राप्त हो का है। कविवर विद्यापति की वाणी मे कला की इसी निरुपम सुधा-माधुरी ा सहज स्रोत उमड़ता हुआ प्राप्त होता है। एक ओर कवि ने मध्यकालीन ऐतिहासिक घटनाओ के माध्यम से युग के यथार्थ का परिचय कराया है, तो दूसरी ओर बालचन्द्र-भाषा के द्वारा अराजकता की घोर अन्धकारमयी-रात्रि मे मधुरसौन्दर्य की कलामयी-ज्योति का साक्षात्कार कराया है। इस प्रकार चरित-प्रधान, ऐतिहासिक काव्यो की परम्परा मे 'कीर्त्तिलता' का स्थान सर्वोपरि है।

कवि का प्रतिपाद्य विषय चरित्त-चित्रण की एकोन्मुखता एव प्रभावान्विति है। सम्भवतः इसीलिए मध्यकालीन चरित काव्यो की कथानक रूढियो को भी

विद्यापति ने ग्रहण किया है, सवाद-पद्धति की योजना भी रासो से सर्वथा भिन्न नहीं है। ऐतिहासिक चरित-काव्यों के प्रणयन मे तथ्यातथ्य निरूपण का विशेष महत्व है, क्योंकि इससे काव्य की चारुता एवं प्रेषणीयता स्थायित्व प्राप्त करती है। इस प्रकार घटनाओं, दृश्य, नगरवर्णन, तात्कालिक युग-जीवन की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कवि ने अपनी कलात्मक-प्रतिभा का सहज परिचय इसमे दिया है।

हिन्दी कथा-काव्यो मे चरित की प्रधानता उसके कथानक को गौण कर देती है, किन्तु कीर्त्तिलता काव्यग्रन्थ में कवि ने अपना विश्वास 'कहाणी' के रूप मे व्यक्त किया है। अर्थात् कीर्त्तिलता कथाकाव्य के निकट है, अनुकरण पर नहीं। अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि 'कीर्त्तिलता' मे कवि का व्यक्तित्व शृगार की सहज माधुरी से पृथक् होकर वीरत्व की उन्मेषशालिनी प्रतिभा का ही परिचय कराता है।

———

विरह-वर्णन

विद्यापति का विरह-वर्णन :—जीवन-प्रवाह के शाश्वत्-सौन्दर्य की व्यंजना मे विद्यापति की कला-सृष्टि सर्वथा निरुपम है। इन्होने शृगार रस के सयोग पक्ष का जैसा मनोज्ञ, हृदयस्पर्शी दृश्य-दर्शन कराया है, वियोग-पक्ष की अभिव्यजना अपनी प्रभविष्णुता मे वैसी ही अतुलनीय है। साहित्य-शास्त्रियो ने वियोग-पक्ष की अनेक स्थितियो पर प्रकाश डाला है, जिनमे पूर्वराग, मान, शाप और प्रवास को प्रधानता दी है। कविवर विद्यापति ने शाप-जन्य विरह को छोड़ कर विरह की अन्य तीन स्थितियो का हृदय-वेधी प्रत्यक्ष कराया है। विद्यापति के साथ कबीर, जायसी, सूरदास आदि की विरह-वर्णना को यदि तुलनात्मक-दृष्टि से देखा जाय, तो विद्यापति की सगीतमयी दृश्यात्मकता पूर्वराग और मान-विरह के प्रसगो मे युग-प्रतिनिधित्व के अधिक निकट है। अनुरक्ति की प्रतीति मे एकपक्षीय भावावेश की प्रबलता नही है। भारतीय-जीवनादर्श के अनुरूप नारी और पुरुष दोनो ही एक-दूसरे की आसक्ति मे पूर्ण तन्मय दिखाई देते हैं। कबीर और जायसी मे पूर्वराग के विरह की व्यजना एक पक्ष से ही भावावेशपूर्ण है। मान-विरह का तो विद्यापति की तरलता, सरलता और उभयनिष्ठता की दृष्टि से प्रायः अन्यत्र अभाव ही है। कविवर सूरदास जी की विरह-व्यजना मे कुछ अनुरूपता अवश्य मिलती है। सूर के पूर्वराग के विरह का यह दृश्य कितना मामिक है:—

वेगि चलौ प्रिय कुँवर कन्हाई।
जा कारन तुम यह बन सेयौ, सो तिय मदन-भुअंगम खाई।
नैन सिथिल सीतल नासा-पुट, अंग तपति कछु सुधि न रहाई।
सकसकात तन भीजि पसीना, उलटि-पलटि तन तोरि जम्हाई।
अनजानत मूरनि कौ जित-तित उठि दौरी जिनि जहाँ बताई।

यह खण्डिता के विरह की व्यजना कितनी ज्वलन्त है :—

मोहि छुवौ जिन दूरि रहौ जू।
जाकौ हृदय लगाइ लई है, ताकी बाँह गहौ जू।
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी और दासी।
मैं देखति हिरदै वह बैठी, हम तुमकों भई हाँसी।

बाँह गहत कछु सरम न आवत, सुख पावत मन माही।
सुनहुँ 'सूर' मो तनको इकटक चितवति, डरपति नाही।

पूर्वराग—कविवर विद्यापति ने पूर्वराग के विरह मे राधा और कृष्ण दोनो की पारस्परिक-अनुरक्ति की अनन्यता का नितान्त उद्विग्नतापूर्ण प्रत्यक्ष कराया है। विरहिणी राधा की विरह-जन्य-विवशता का परिचय देती हुई दूती अथवा सखी कृष्ण से कहती है—"राधा[1] रात-दिन जागती हुई आप के नाम का जप करती रहती हैं, अपने स्थान से उठते समय थर-थर काँपती हुई बैठ जाती हैं। सखियाँ जितना ही सान्त्वना देने का प्रयास करती हैं, उनकी अन्तर्व्यथा उतने ही अधिक सन्ताप से उन्हे सन्तप्त कर देती है। वाणी से हृदयस्पर्शी ध्वनि नही निकलती है। शरीर अमावस्या के चन्द्रमा के समान प्रतीति शून्य हो गया है। कुछ लोग उन्हे कुदृष्टि लगी जान कर वेद-मन्त्र का जाप करते हैं, कुछ दीपक जलाकर नवग्रह की पूजा करते है, कोई हाथ पकड़ कर नाडियो पर विचार करता है, पर उनकी विरह-जन्य-कातरता को कोई नहीं समझ पाता है। उन्हे वायु, अग्नि के तथा चन्दन, विष के समान जान पड़ता है। जो पदार्थ पहले शीतल थे, वे अब तीक्ष्ण हो गए हैं।"

राधा की भाँति ही कृष्ण की विरह-सन्तप्त दशा भी अत्यन्त मर्म-वेधिनी है। "वे[2] प्रेम मे वेसुध होकर नाम का स्मरण करते हैं। रोमाञ्च के साथ शरीर काँप

१—निस-दिन जागि जपय तुअ नाम , थर-थर काँपि पडए सोइ ठाम।
सखि जन जत परबोधब जाय। तापिनि तप ततहि तत ताय।
+ + + +
मरम क वोल, बयन नहि बोलय, तनु भेल कुहु-ससि खीना।
केओ-केओ जपय वेद दिठि जानि। केओ नवग्रह पुज जोतिअ आनि।
केओ-केओ करधरि धातु विचारि। विरह विखिन कोइ लखए न पारि।
अनिल अनल बम मलयज बीख। जेहु छल सीतल सेहु भेल तीख।

२—कहइत नाम प्रेम भए भोर। पुलक कम्प तनु धरमहि नोर।
गद-गद भाखि कहए वर कान। राहि दरस बिनु निकस परान।
जब धरि चकित बिलोकि विपिन-तट, पलटि आओल मुख मोरि।
तब धरि मदन मोहन तरु कानन, लुटइ धीरज पुनि छोरि।
+ + + +
तोहरे चिन्ता तोहरे कथा, सेजहु तोहरे चाव।
सपनेहु हरि पुन पुन कए, लए उठए तोर नाव।

उठता है और स्वेद से भींग जाते हैं। रुँधे हुए गले से गद्-गद् स्वरो में कहते हैं, कि राधा के दर्शन बिना प्राण निकल रहे हैं। आश्चर्य-विमुग्ध हो वन के तट को देख कर जब से कृष्ण मुँख झुकाए लौट कर आए हैं, तब से वन-वृक्षो के नीचे धैर्य त्याग कर लोट रहे हैं। तुम्हारी चिन्ता, तुम्हारी चर्चा मे और शैय्या पर तुम्हारे अनुराग से स्वप्न मे भी कृष्ण बराबर तुम्हारा नाम लेकर उठ जाते हैं।

दूती राधा को यौवन के आकर्षण की क्षणभगुरता का परिचय देकर सुअवसर से लाभ उठाने के लिए उन्हे प्रेरित करती है, कहती है—"बीता[1] हुआ यौवन पुनः लौट कर नहीं आता, केवल पश्चात्ताप मात्र रह जाता है। यौवन का सौन्दर्य तभी तक आकर्षण रखता है, कामदेव जब तक उसका अधिकारी होता है। हे सखि, थोडे ही दिन बाद ऐसी हो जाओगी, जैसे ग्वालिन का मठा मूल्य-हीन हो जाता है। कृष्ण की प्रेमानुरूप-सुपात्रता की ओर भी ध्यान आकृष्ट करती है:—कृष्ण[2] भौरा होकर सभी जगह भटकते फिरते है, तुम्हारे बिना उन्हे विश्राम नहीं मिलता है। वे तो फिर फिर रसभरी मालती को ही देखते हैं और जीवन को ठुकरा कर भी मधुपान करना चाहते हैं।[3] पद्मिनी! भलाई की बात सुनो, जब कभी प्रेम करो, सत्पुरुष की पहचान कर लो। सज्जन का प्रेम सुवर्ण के तुल्य होता है। जिस प्रकार जलने से सुवर्ण का मूल्य द्विगुना हो जाता है, उसी प्रकार आपत्ति में सज्जन का प्रेम और उज्ज्वल हो जाता है। उसका अद्भुत प्रेम

१—गेल जौवन पुनि पलटि न आवए, केवल रह पछतावे।
जौबन रूप तावे धरि छाजत, जावे मदन अधिकारी।
दिन दस गेले सखि ऐसन होएबह, घोसिनि घोर क मूले।

२—भमरा भेल धुरए सब ठाम। तोहे बिनु मालति नहि विसराम।
रसमति मालति पुन पुन देखि। पिबए चाह मधु जीव उपेखि।

३—ए धनि कमलिनि सुनु हित-बानि। प्रेम करवि जब सुपुरुष जानि।
सुजन क प्रेम हेम समतूल। दहइत कनक दिगुन होय मूल।
टुटइत नहिं टुट प्रेम अद्भुत। जइसन बढए मृणालक सूत।
सबहु मतगज मोति नहि मानि। सकल कंठ नहि कोइल बानि।
सकल समय नहि रीतु बसन्त। सकल पुरुष नारि नहि गुनवन्त।
प्रेम क रीत अब बुझह विचारि। जाकर हिरदय जतहि रतल-
से धसि ततही जाए। जइयो जतने बाँधि निरोधिए-
निमन नीर थिराए।

टूटने से भी नहीं टूटता है, किन्तु मृणाल के सूत्र-जैसे बढता है। सभी हाथियो में मुक्ता नहीं होता और न सभी कण्ठो में कोकिल की काकली होती है। सभी सयय में वसन्त-ऋतु का दर्शन दुर्लभ है। सभी स्त्रियाँ और पुरुष गुणवान नही होते। इसलिए प्रेम की मर्यादा को सोच समझ लो। जिसका हृदय जहाँ मुग्ध है, वह घुसकर भी वहीं पहुचता है। चाहे बाँधकर कितना भी रोकिए, पर पानी नीची जगह मे पहुँच कर ही स्थिर होता है।

कविवर विद्यापति ने पूर्वराग-विरह में दर्शन-जन्य-प्रेम की तीव्रता का मर्म-परिचय कराया है। कृष्ण राधा की सखी से कहते हैं—[१] "सुन्दरी, भली भाँति देख भी नही सका। जैसे मेघ-माला मे बिजली चमकती है, वैसे ही मेरे नेत्रो के समक्ष वह आई-और चली गई, हृदय मे भाला चुभो गई। उसका आँचल भी खिसका तो आधा ही, हँसते हुए उसका मुख भी आधा ही देखने मे आया। नेत्रो का कटाक्ष भी आधा ही दर्शित हुआ। मै आधा ही उरोज देख पाया, कि उसने आधे को आँचल से ढँक लिया और तब तक कामदेव ने मुझे विरह से दग्ध कर दिया। वह किसकी सुन्दरी है, कौन उसे पहचानता है? वह मेरे प्राणो को आकुल बना कर चली गई। उसके पैरो का महावर मेरे हृदय के लिए अग्नि बन रहा है, सभी अंगो को जला रहा है।" कृष्ण की भाँति ही राधा भी कृष्ण के दर्शन मात्र से ही प्रेम-जन्य-अतृप्ति के कारण सन्तप्त दिखाई देती हैं। वे अपनी सखी से कहती हैं —[२] "हे सखि, कनखियो से एक पल के

१—सजनी, भल कए पेखल न भेल। मेघमाल सयँ तड़ित-लता जनि, हिरदय-सेल दइ गेल।

आध आँचर खसि, आध वदन हँसि, आधहि नयन-तरंग।
आध उरज हेरि, आँध आँचर भरि, तब धरि दगधे अनंग।
× × ×
काहिक सुन्दरि कें ताहि जान, आकुल कए गेल हमर परान।
चरण जावक हृदय पावक, दहइ सब अँग मोर।

२—की लागि कौतुक, देखलौं सखि, निमिख लोचन आध।
मोर मन-मृग मरम बेधल, विषम बान बेआध।
× × ×
माधव बोलल मधुर बानी, से सुनि मुँदु मोयँ कान।
ताहि अवसर ठाम बाम भेल, धरि धनू पचबान।
तनु पसेब पसाहनि भासलि, पुलक तइसन जागु।
चूनि-चूनि भए काँचुअ फाटलि, बाहु -वलआ भाँगु।
भन विद्यापति कम्पित कर हो, बोलल बोलः न जाय।

लिए मैने उस कौतुक को क्या देखा, व्याध ने मेरे मर्म स्थल के मन-रूप-मृग को विषम-बाणो से बेध डाला। माधव अपनी मधुर बोली मे बोलने लगे, वह सुन कर मैने अपने कान मूँद लिए, उसी समय कामदेव बैरी हो गया, उसने स्थिर होकर अपना बाण छोडा। फिर तो शरीर के स्वेद मे मेरा अगराग बह गया और ऐसा रोमाच जगा, कि मेरी चोली तो चिथरा चिथरा हो गई, हाथ की चूड़ियाँ भी फूट गई। हाथ काँप रहे हैं—मुँह से आवाज नही निकलती। [1]काम के बाणो से मै मूर्च्छित हूँ, अपने प्राणो मे सह रही हूँ। कृष्ण की ओर आधा पग बढ़ाते ही मुझे समाज के रसिक हृदयो ने देख लिया,[2] किन्तु मेरा कठोर हृदय फटा नही, मै पृथ्वी मे भी लज्जा से धँस नहीं सकी।

इस प्रकार विद्यापति के पूर्वराग की विरह-व्यंजना निसर्ग हृदयाकर्षिणी है। आसक्ति की अनन्यता, अन्तस् की तीव्र-भावुकता एवम् विवशता की ग्लानि से आलोकित है। जायसी के पूर्वराग के विरह मे आध्यात्मिक कल्पना की ऊँची उड़ान की अद्भुतता है। विद्यापति एवम् सूरदास की भाँति आकर्षण की सहज स्वाभाविकता के साथ अभिव्यक्ति-चमत्कृति की अपूर्व-समन्विति नही।

खण्डिता-विरह:—खण्डिता के मान-विरह की व्यजना में प्रेमिका-हृदय के अनन्य-भाव की अनुशासन-जन्यस्पर्धा का मुखर-दृश्य-दर्शन मिलता है। कृष्ण के जीवन मे रात्रि-जागरण-जन्य-विशेषताओ को देखकर पर-स्त्री-विहार के अनुमान से रोषाविष्ट हो राधा कृष्ण से कहती है :—[3] "लाल आँखो को देखकर मैंने सारा भेद (अन्तर्हित-व्यवहार) समझ लिया है। वे रात के अधिक जागरण को प्रकट करती हैं। हे कृष्ण! बहाना न कीजिए, अब वही जाइए, जिसके साथ आपने रात बितायी थी।"[4] "राधा इस अपराध की गंभीरता को देख कर मौन धारण कर लेना उचित समझती हैं।" पर रहा नहीं जाता है, दुःख के प्रबल-आवेग से बाणी मुखरित हो जाती है और कहने लगती हैं :—[5]

१—मदन-बान मूरुछलि अछओ, सहओ जीव अपने।
आध पद धरइत मोए देखल, नागर जन समाज।
२—कठिन हिरदय भेदि न भेले, जाओ रसातल लाज।
३—लोचन अरुन बुझल बड़ भेद, रयनि उजागर गरुअ निवेद।
ततहि जाह हरि न करह लाथ, रयनि गमओलह जन्हि के साथ।
४—बड़ अपराध मौन पए साध।
५—माधव, चल चल चल तिन्हि ठाम। जसु पद-जावक हृदय क भूषन-
अबहु जपत तसु नाम।

"हे कृष्ण ! अब उसी जगह जाइए। जिसके पैर का महावर आप के हृदय का आभूषण हो गया है और अभी भी उसी का नाम जपते हैं।" राधा अपनी ग्लानि-जन्य-उद्विग्नता के वशीभूत होकर सखी से कह उठती हैं :—[१] "मै कृष्ण के मधुर वचन और वज्र सदृश (कठोर) हृदय को—पहले न समझ सकी। अपनी चतुरता को मैंने छली के हाथ सौप दिया और इसलिए मेरा अत्यधिक अभिमान नष्ट हो गया। हे सखि, प्रेम का परिणाम बुरा होता है। उस समय तो ऊँच-नीच का कुछ भी विचार नहीं किया, किन्तु अब पश्चात्ताप होता है। पहले मैंने कुछ और समझा था, किन्तु अब अच्छी तरह बात समझ मे आ गई। अपने सिर को मैंने स्वय ही छील लिया है, इसमे किसको दोष दिया जाय?" [२]"विधि-प्रेरणा से यदि कभी प्रेम की उत्पत्ति हो तो रसिक से न हो। कृष्ण से गुप्तप्रेम करके लोगो को मैं एक यही शिक्षा देती हूँ।" कृष्ण की प्रार्थना पर भी राधा प्रसन्न नही होती हैं, उनके चले जाने के पश्चात् इन्हे मृत्यु-तुल्य कष्ट का अनुभव होता है, जिसका परिचय वे सखी से इस प्रकार देती हैं :—"[३]मेरे चरण के नख-रूपी-मणि को रंजित करने के बहाने श्रीकृष्ण पृथ्वी में लुंठित हुए। उनके नेत्रो से आँसू तक ढुलक पड़े और उन्होंने अनेक प्रकार से प्रार्थना की। मैंने दुर्दिन के फेर मे पड़ कर प्रियतम से मान किया, अब भी मेरे कठोर प्राण नहीं निकलते है। क्रोधरूपी अन्धकार मे उस समय कब समझ सकी। रत्न को मैंने

१—मधु सम वचन कुलिस सम मानस, प्रथमहि जानि न भेला।
अपन चतुरपन-पिसुन हाथ देल, गरुअ गरब दुर गेला।
सखि हे, मन्द प्रेम परिनामा।

× × ×

एक दिन अछलहु आन भान हम, अब बूझिल अवगाहि।
अपन मूँड अपने हम चाछल, दोख देब गए काहि।

२—दैवक दोष प्रेम जदि उपजए, रसिक सयँ जनु होय।
कान्ह से गुपुत नेह करि अब एक, सबहु सिखाओल मोय।
चरन-नखर मनि-रजन छौंद, धरनि लोटायल गोकुल चाँद।
ढरकि ढरिकि परु लोचन नीर, कतरुप मिनति कएल पहु मोर।
लागल कुदिन कएल हम मान, अबहुँ न निकसए कठिन परान।
रोस तिमिर अतबेरि किये जान, रतन क भए गेल गैरिक भान।

३—नारी जनम हम न कएल भागि, मरन सरन भेल मानक लागि।

गेरू मिट्टी समझ कर खो दिया। नारी जन्म को मैने भाग्य-युक्त नही बनाया, केवल मान के कारण ही मुझे मृत्यु की शरण लेनी पडी।" सखी राधा को कृष्ण के विरहोन्माद का परिचय देकर इस प्रकार सान्त्वना देती है :—हे[1] सखि, बकुल वृक्ष के नीचे वियोग से व्यथित श्रीकृष्ण को मैने देखा, उनके नील कमल-युक्त नेत्रों से तीव्रवेग से ऑसू की धारा बह रही थी। शीतल, मन्द, सुगन्ध मलयानिल जब बहता था, जैसे वह प्रलयकाल की भीषण अग्नि की भॉति उनके शून्य शरीर को जलाता हो। अधिक कम्पन से उनकी चमकदार मुक्ता-माला टूट कर पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पडी, मानो वायु द्वारा आन्दोलित तमाल वृक्ष से फूल गिरे हों। जिस [2]कृष्ण ने गोबर्धन-पर्वत को बाये हाथ से उठाकर गोकुल को बचाया था, वही अब विरह से इतने खिन्न हो गये है, कि हाथ के कगन को बहुत भारी समझते हैं। जिन्होने दोनो श्रेष्ठ चरणो से कालीय का दमन किया, वे अब सर्प से इतने भयभीत हो गये हैं, कि सर्प के भ्रम से गले मे हार भी नही धारण करते हैं। शीतल[3], मन्द, सुगन्ध वायु सकल जीवो का प्राण है, वह यदि दीप की शिखा को स्पर्श कर उसको बुझा देती है, तो इसलिए क्या लोग उसकी निन्दा करते हैं? मै मानती हूँ, कृष्ण सोलह हजार सखियो के बीच मे रहते हैं, फिर भी वह तुम्हारे लिए ही व्याकुल रहते हैं।

१—बिरह व्याकुल बकुल तरुतर, पेखल नन्द-कुमार रे।
नील नीरज नयन सयॅ सखि, ढरइ नीर अपार रे।..
बहइ मन्द सुगन्ध सीतल, मन्द मलय समीर रे।
जनि प्रलय काल क प्रबल पावक, दहइ सून शरीर रे।
अधिक वेपथ टूटि पड खिति, मृसून मुकुता माल रे।
अनिल तरल तमाल तरुवर, मुच सुमनस जाल रे।

२—गोबर्धन गिरि वाम कर धरि, भएल गोखुल पार।
बिरह से खिन कर क कंकन गरुअ मान ए भार।
दमन काली कएल जेजन चरन जुगुल वरे।
अब भुजगम भरम भूलल हृदय हार न धरे।

३—सकल जीव जन जीव समीरन, मन्द सुगन्ध सुसीते।
दीपक-जोति परस जदि नासए, इथे लागि नीन्द मारुते।
पॉच-पॉच गुन दस गुन चौगुन आठ दुगुन सखि माझे।
विद्यापति कान्ह आकुल सो किछु विषाद न मानसि लाजे।

तुम्हे इसके लिए क्या दुःख नही होता है, क्या लज्जा नही आती है ? [1]अभी शीतल रात और चमकीली चाँदनी है, ऐसा समय फिर नही मिलेगा, इस अवसर पर प्रियसमागम से जो सुख होगा, वह सुख प्राप्त करने वाली ही समझ सकती है। उमग मे आकर भ्रमर-गण क्रीडा करते हुए मधुपान कर रहे हैं। सब गोपियो ने अपने अपने पतियो को भोजन करा दिया, लेकिन तुम्हारे ही प्रिय भूखे रह गये हैं। त्रिवली की तरङ्ग मे गगा-यमुना (हार और रोमावली) का सगम हुआ है, जहाँ स्तनरूपी शिव भी स्थापित हैं। तुम्हारे व्याकुल पति तुमसे दान की भिक्षा माँग रहे है, हे बाले ! तुम अपना सर्वस्व दान कर दो। हे [2]मानवति, मै तुम्हारे लिए ही कहती हूँ। पति के सामीप्य से जो नारी वञ्चित रह जाती हैं, वह बहुत अभागिन है। सूर्य कमल के बन्धु हैं, यह सर्वविदित है और जल ही उसका जीवनाधार है। किन्तु कीचड से अलग होने पर चाहे उस पर कितना भी पानी छिड़का जाय, सूर्य उसके शरीर को जला ही देता है। पति के समीप जो वस्तु सुखद एवम् अनुकूल होती है, वही वियोगावस्था मे प्रतिक्षण जलाती रहती हैं। हे गुणमयी, समझ-बूझ कर काम-क्रीडा करो, हम परिजनो को ऐसा ही प्रतीत होता है। इतना सुनते ही राधा का हृदय गद्गद हो गया और उन्होने अपनी स्वीकृति दे दी।

राधा के मान-विरह की भाँति श्रीकृष्ण के मान का भी कवि ने हृदय-दर्शन

१—जूडि रयनि चकमक करु चाँदनि, एहन समय नहि आन।
एहि अवसर पिय-मिलन जेहन सुख, जकरहि होय से जान।
रभसि रभसि अलि विलसि विलसि करि, करए मधुर मधु पान।
अपन अपन पहु सबहु जेमाओलि, भूखल तुअ जजमान।
त्रिबलि तरंग सितासित सगम, उरज सम्भु निरमान।
आरति पति मँगइछ परतिग्रह, करु धनि सरबस दान।

२—मानिनि, हम कहिए तुअ लागी।
नाह निकट पाइ जे जन बंचए, तेकर बड़हि अभागी।
दिनकर-बन्धु कमल सब जानए, जल तेहि जीवन होई।
पङ्क विहिन तनु भानु सुखाबए, जल पटाब बरु कोई।
नाह समीप सुखद जत बैभव, अनुकूल होएत जोई।
तेकर बिरह सकल सुख सम्पद, खन खन दगधए सोई।
तुहु धनि गुनमति बूझि करह रति, परिजन ऐसन भास।
सुनइत राहि हृदय भेल गदगद, अनुमति कएल प्रगास।

कराया है। इस परिस्थिति मे चिन्ता-मग्न हो राधा सोचती है:—[१] "जिस बन मे किसी का यातायात नही, उस बन मे प्रियतम हँस कर बोल रहे हैं। मै योगिनी का वेष धारण कर प्रिय की खोज करूँगी।" "राधा[२] हथेली पर मुख रख कर आँखो से अश्रु गिराती हैं। वे आभूषण, केश और वस्त्र को नहीं संभालती हैं।" कृष्ण से कहती हैं—"आप के मार्ग को देखकर चित्त स्थिर नही रहता, पुरुष के प्रेम को स्मरण कर शरीर जलता है। हे कृष्ण! कबतक मान किए रहेगे, वियोगिनी युवती केवल दर्शन का दान माँगती है। जल मे कमल रहता है और आकाश मे सूर्य रहते हैं, चन्द्रमा और कुमुदिनी मे भी बहुत अन्तर है। आकाश मे मेघ गरजता है और पर्वत की चोटी पर मयूर नाचते है। कितने लोग जानते हैं, कि दोनो का प्रेम कितनी दूर है। कवि विद्यापति इस विपरीत मान का वर्णन करते हैं, कि राधा के वचन को सुनकर कृष्ण लज्जित हो गए।

इस प्रकार महाकवि ने नारी के आत्मगौरव की प्रतीति अत्यन्त मार्मिक रूप मे कराई है। युग की नारी का बाहर से उपेक्षित आत्मसंमान पूर्णता की उपलब्धि के लिए उद्विग्न दिखाई देता है। नारी हृदय की अतृप्ति का चित्रण करने मे विद्यापति की कला सर्वथा अनुपमेय है। नारी-पुरुष के आकर्षण की वासनाजन्य-अतृप्ति अपने शाश्वत् उन्मुक्त-प्रभाव के साथ अभिव्यक्त हुई है। प्रवास विरह की अभिव्यंजना मे सामाजिक-जीवन की उन विविध-परिस्थितियो की भी योजना हुई है, जिससे रचनाकार के युग-जीवन के साथ वर्तमान युग की सामाजिक-स्थिति की अनुरूपता का स्पष्ट प्रत्यय मिल जाता है। कवि की क्रान्ति-दर्शिनी प्रतिभा के प्रतिनिधित्व का भी इससे भलीभाँति परिचय प्राप्त हो जाता है।

प्रशासन और व्यवसाय की शक्ति का केन्द्र नगरो मे होने के कारण ग्रामीण-

---

१—जाहि बन केओ नहि डोल रे। ताहि बन पिया हँसि बोल रे।
धरब योगिनिया के भेस रे। करब मै पहुक उदेस रे।

२—करतल कमल नयन ढरि नीर। न चेतए सभरन कुंतल चीर।
तुअ पथ हेरि-हेरि चित नहि थीर। सुमिरि पुरुब नेहा दगध सरीर।
कत परि माधव साधब मान। विरही जुबति माँगदरसन दान।
जल-मध कमल गगन-मध सूर। आँतर चान कुमुद कत दूर।
गगन गरज मेघ सिखर मयूर। कतजन जानसि नेह कत दूर।
भनइ विद्यापति विपरित मान। राधा बचन लजाएल कान।

जन-जीविका के लिए नगरो मे आने के लिए विवश होते हैं। राजनैतिक-संघर्ष की परिस्थितियाँ भी नगरो का आश्रय लेने के लिए बाध्य करती हैं। विद्यापति के काव्यनायक श्रीकृष्ण ग्रामीण-जीवन से ही नागरिक-जीवन मे प्रविष्ट होते दिखाई देते है। राधा स्वय कहती हैं—[1]जिसने पशुओ के साथ अपना सारा जीवन व्यतीत किया, उसे काम-क्रीड़ा का क्या पता? आज गँवार गोप के साथ मेरी वसन्त की रात्रि व्यर्थ नष्ट हो गई।"

प्रवास-विरह—के प्रसंग से पारिवारिक तथा सामाजिक संमान वंचिता नारी किस कष्ट का अनुभव करती है। विद्यापति ने इस का मर्मस्पर्शी अनुभव कराया है। प्रेमिका अपनी सखी से कहती है—[2] हे सखि! मेरे प्रियतम विदेश जा रहे हैं। मै कुलवती स्त्री हूँ, इसलिए उन्हे रोकना उचित नही समझती, तुम जाकर उन्हे समझा दो। यह विदेश जाने का समय नही है, निन्दक व्यक्ति मेरे दुःख को नही समझ सकेंगे, अतः मै तुम्हे प्रियतम के निकट भेज रही हूँ। वे हत्या के भागी क्यो हो रहे हैं? जिस क्षण वे जाने के लिए सोचेंगे, मै आग मे कूद कर मर जाऊँगी।" बेचारी नारी का यह अनुरोध सफल नही होता है। वह सोचती है—[3]"रात्रि के एक ही शैया पर मै उनके साथ सोई हुई थी, किन्तु पता नही चला, कि वे किस समय मुझे छोडकर चले गए और चकवा का जोडा विछुड गया। आज प्रियतम के बिना सूनी शैय्या मेरे हृदय को पीडा दे रही है। हे सखि, मै प्रार्थना करती हूँ, मेरे लिये अग्नि-चिता तैयार कर दो।"

१—पसुक सग हुन जनम गमाओल, से कि बुझथि रति रंग।
मधु-जामिनि मोर आज विकल गेलि, गोप गमारक संग।

२—सखि हे बालम जितब विदेस। हम कुल कामिनि कहइत अनुचित
तोहहुँ दे हुनि उपदेश। ई न विदेसक बेलि।
दुरजन हमर दुख न अमुमानब ते तोहे पिया लग मेलि।.....
होय ताह किए बध-भागी। जेहि खन हुन मन जाएब चितब-
हमहु मरब धसि आगी।

३—एक सयन सखि सूतल रे आछल बालम निसि मोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे बिछुरल चकेबा जोर।
सून सेज हिय सालए रे पिया बिनु घर मोयँ आजि।
विनति करुओ सहलोलिनि रे मोहि देह अगिहर साजि।

विरह की इस दयनीय-उद्विग्नता की अनेक स्थितियो की झाँकी महाकवि ने अङ्कित की है । सपत्नी की सुखाशयता-विरहिणी के उद्वेग-वृद्धि का असाधारण कारण बन जाती है । कुब्जा के सुख-समाचार से विरहिणी राधा ग्लानि मे सब कुछ खो रही हैं और अपनी मनोव्यथा का परिचय सखी को दे रही है :—[1] "कृष्ण मथुरा चले गये, उनके वियोग मे छाती फटी जा रही है । जितनी सौभाग्यवती गोपियाँ थीं, उनको भी वे भूल गए । मै कितना कहूँगी, और कितना स्मरण करूँगी, ग्लानि से भर गई हूँ । कुब्जा दूसरे के धन से धनवती होकर रानी बन गई ।" वियोगिनी ममता की विस्मृति मे कौए से पूछती है :—"हे काक[2], तुम अपनी भाषा बोलो, यदि मेरे प्रिय आ गए, तो सोने के कटोरे मे दूध और चीनी भर कर तुम्हे खाने को दूँगी ।" प्रकृति की उद्दीपनकारणी-स्थिति वियोगिनी के जीवन को अत्यधिक संकटापन्न बना देती है । वसन्त की सुषमा से उद्विग्न हो वह सखी से कहती है—[3] "चारो ओर भ्रमर-गण घूम-घूम कर फूलो पर रमण करते हैं, तथा रसविहीन मजरियो को चूस रहे हैं, वायु शनैः शनै बह रहा है और कोयल "कुहू-कुहू" कर रही है । ऐसी स्थिति मे विरहिणी स्त्री कैसे प्राण-धारण कर सकती है ।"[4] "पहले स्वप्न मे मिलन प्रात कर रति सम्बन्ध बढाती थी, किन्तु विधाता को वह भी स्वीकार नही हुआ, उन्होने मेरे सुख को नष्ट कर दिया, अब नींद भी जाती रही ।"

बाल-विवाह की प्रथा होने के कारण जब नारी अज्ञात-यौवना रहती है, उस समय परदेशी पति से वैवाहिक सम्बंध स्थापित हो जाने पर, यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, कि वह परदेश मे ही कही प्रेम का सम्बध जोड़

१—मधुपुर मोहन गेल रे मोरा विहरत छाती ।
गोपी सकल विसरलनि रे जत छल अहिबाती ।
कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरिये गरानि ।
आनक धन सो धनवंति रे कुबजा भेल रानि ।

२—काक भाखु निज भाखहु रे, पहु आओत मोरा ।
खीर खाँड भोजन देब रे, भरि कनक कटोरा ।

३—चौदिस भमर भम कुसुम-कुसुम रम, नीरसि माँजरि पीबइ ।
मंद पवन चल पिक कुहु-कुहु कह, सुनि बिरहिनि कइसे जीवइ ।

४—सपनहु संगम पाओल, रंग बढ़ाओल रे ।
से मोरा बिहि बिघटाओल, निन्दआ हेराएल रे ।

लेता है, तब विरहिणी की दयनीय-कातरता वर्णनातीत हो जाती है। राधा अपनी इस दशा का परिचय भी इस प्रकार दे रही है—[१] "प्रिय के आने का दिन गिन-गिन कर मेरे नख घिस गए और उनके आने की राह देखते-देखते आँखे अंधी हो गई। जिस समय मै अज्ञात-यौवना थी, उसी समय वे मुझे छोड कर चले गए और दोष-गुण को कुछ भी नही समझे। अब मै तरुणी हो गई और रस की बाते समझने लगी, मेरा कोई भी इस समय अपना नही है, ता फिर प्रिय ही क्यो पास रहेगे! "बहुत जल्दी आऊँगा" कह कर चले गए और मेरे पूर्व के गुणो को सर्वथा भूले गये।" [२]सखि, वास्तव मे वह जाने के समय मेरे कच्चे फल को देख गए। जिसे देख कर उन्हे निराशा हुई, किन्तु दिन प्रतिदिन वह फल तरुण हो चला और अभी तक उनको ज्ञात नही हुआ। सब के परदेशवासी पति स्नेह का स्मरण कर घर आगए, किन्तु मेरे पति इतने कठोर हैं, कि उनके मन मे स्नेह उत्पन्न ही नही होता।" जीवन की इस नैराश्य-पूर्ण-ग्लानि मे भी प्रेमिका पति के प्रति अपने अविचल-अनुराग के निर्वाहार्थ दृढ़निष्ठ है:—[३] "यद्यपि सूर्य पानी को शुष्क कर देता है, फिर भी कमल कीचड को नही छोड़ता, यह निश्चित है, जिसको जिससे अनुराग हो गया है, विधाता भी प्रतिकूल होने से उसका कुछ नही बिगाड़ सकते।"[४] "वे युग-युग जिये और लाखो कोस पर निवास करे। इसमे उनका क्या दोष है, यह तो मेरे भाग्य की प्रतिकूलता है।"

नारी की रूप-माधुरी की अपूर्वता पुरुष के सहज आकर्षण का कारण होती है, पर जब उसमे उसे पूर्णतृप्ति का अभाव प्रतीत होता है, तब वह उसकी

१—नखर खोआओलँ दिवस लिखि-लिखि, नयन अँधाओलँ पिया पथ देखि।
जब हम बाला परिहरि गेला, किए दोस किए गुन बुझइ न भेला।
अब हम तरुनि बुझब रस-भास, हेन जन नहि मोर काहे पिआ पास।
आएब हेन करि पिआ मोरा गेला, पुरबक जत गुन विसरति भेला।

२—काँच साँच पहु देखि गेल सजनी, तसु मन भेल कुह भान।
दिन-दिन फल तरुनत भेल सजनी, अहु खन न करु गेआन।
सब कर पहु परदेश बसि सजनी, आयल सुमिरि सिनेह।
हमर एहन पति निरदय सजनी, नहि मन बाढय नेह।

३—जतओ तरनि जल सोखए सजनी, कमल न तेजए पाँक।
जे जन रतल जाहि सौ सजनी, कि करत बिहि भए बाँक।

४—युग-युग जीवथु बसथु लाखे-कोस, हमर अभाग हुनक नहि दोस।

उपेक्षा कर भ्रमर की भाँति दूसरी ओर रुचि बढाता है। सम्पन्नपरिवारो मे अधिक अवस्था की कन्या का कम-उम्र के युवक के साथ सम्बन्ध होने पर भी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। विद्यापति ने पति द्वारा उपेक्षिता ऐसी विरहिणी की वेदना का हृदयस्पर्शी दृश्याङ्कन इस प्रकार किया है। वह अपनी सखी से कह रही है:—दो[1] चार दिनो तक मुझे भी यौवन और सौन्दर्य प्राप्त था, उसी को देख कर कृष्ण ने मेरा आदर भी किया। अब मै रस-विहीन फूल सी आकर्षण शून्य हो गई हूँ, भला जल-रहित तालाब को कोई पूछता है? हे सखि, मेरी यह प्रार्थना तुम आर्त्तस्वर मे उनसे कहना, क्योकि सज्जन-व्यक्ति का कथन निष्फल नही होता।"

भारतीय जीवन मे नवीन ऋतुओ के आगमन से लोगो को अभिनव उल्लास का अनुभव होता है, पर विरहिणी नारी के लिए ये सुखद-परिस्थितियाँ उसके दुःख की नितान्त वृद्धि का कारण बन जाती हैं और उसकी अन्तर्व्यथा इस प्रकार मुखर हो जाती है:-मेरे[2] प्रियतम के पास मेरा पत्र कौन ले जायेगा, सावन का महीना आ गया, अब तो मेरा हृदय यह असह्य दुःख नही सह सकता। प्रिय के बिना सूने घर मे मुझ से एकाकी नही रहा जाता! हे सखि, दूसरो के कठोर दुःख का संसार मे कौन अनुभव कर सकता है। [3]श्रीकृष्ण मेरे मन को हर कर ले गए, सच तो यह है, स्वयं भी मन उनके साथ चला गया! वह गोकुल को छोड कर मथुरा मे बसने लगे हैं, पता नही उनको कितना अपयश हुआ है। "मेरे[4] दुःख का अन्त नही है। बादल जल से लबालब भरा हुआ है, भादो का

१—जौबन रूप अछल दिन चारि। से देखि आदर कएल मुरारि।
अब भेल झाल कुसुम रस छूछ। बारि बिहून सर केओ नहि पूछ।
हमरि ए बिनती कहब सखि रोय। सुपुरुष बचन अफल नहि होय।

२—के पतिआ लए जाएत रे, मोरा पियतम पास।
हिए नहि सहए असह दुख रे, भेल साओन मास।
एकसरि भवन पिया बिनु रे, मोरा रहलो न जाय।
सखि, अनकर दुख दारुन रे, जग के पतिआय।

३—मोर मन हरि हरि लय गेल रे, अपनो मन गेल।
गोकुल तजि मधुपुर बस रे, कत अपजस लेल।

४—सखि हे हमर दुख क नहि ओर।
ई भर बादर माह भादर, सून मदिर मोर।
कुलिस कत सत पात मुदित, मयूर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाक डाहुक, फाटि जायत छातिया।

महीना है और मेरा घर भी शून्य है। सैकडो बार वज्राघात होता है, प्रसन्न हृदय से प्रमत्त मयूर नृत्य कर रहे है, मेढक और डाहुक के भीषण स्वरो से जान पड़ता है, कि छाती फट जायगी।" चतुर्मास और बारह-मासे का वर्णन नारी की अंतर्व्यथा के पूर्णतया व्यजक है। कविवर जायसी ने भी नागमती के विरह मे बारहमासे का वर्णन किया है, उसमे उनका मुस्लिम संस्कार तथा सामान्य ग्रामीण जनता के प्रतिनिधित्व का प्रयास अधिक स्पष्टता से परिलक्षित होता है, पर विद्यापति सामान्यजन-जीवन के प्रतिनिधित्व के साथ नारी-हृदय की अन्तर्व्यथा तथा अतृप्ति-जन्य उन्माद की व्यजना मे ही अधिक तन्मय दिखाई देते है। उदाहरण के लिए अगहन, पूष और वैशाख मास का दृश्य देखा जा सकता है, नारी की विवशता एवम् अन्तर्ग्लानि की यहाँ पराकाष्ठा हो गई है। विरहिणी अपनी सखी से कह रही है :—"अगहन[1] के महीने मे जीवन का अन्त होना चाहता है, फिर भी मेरे निर्दय कत नही आए। मै अकेली जग कर सोती हूँ, विरहाग्नि मे जलने के बाद प्रियतम यहाँ व्यर्थ क्यो आएँगे। पौष के दिन छोटे और रात बडी होने लगी। प्रिय परदेश में हैं और मेरी काति मलिन हो गई है। चारो ओर उन्हे खोज कर रोती फिरती हूँ। विधाता पति-वियोग किसी को भी न दे। वैशाख-मास अत्यन्त गर्म हो जाता हैं, जो मृत्यु-तुल्य प्रतीत होता है, कामदेव विरही एवम् विरहिणियो को अपने बाणो से मारता हैं। न कही ठडी छाया है और न वर्षा ही होती है; ज्ञात होता है, कि मेरी भाग्य-हीनता और पाप का ही यह परिणाम है।" युवावस्था के सुख के परिमित क्षणो को नष्ट हो जाने का विरहिणी को हार्दिक परिताप है—[2]सूर्य की ज्वाला यदि अकुर को ही जला डाले। तो घनघोर बादल की क्या आवश्यकता हैं? यदि मै इस नई जवानी को विरह में ही बिताने को बाध्य हुई, तो प्रिय घर पर भी आकर क्या कर सकते हैं।

१—अगहन मास जीव के अन्त। आवहु न आयल निरदए कत।
एकसरि हम धनि सूतओ जागि। नाहक आओत खाएत मोहि आगि।
पूस खीन दिन दीघरि राति। पिया परदेस मलिन भेल काँति।
हेरओ चौदिस झँखओ रोय। नाह बिछोह काहु जन होय।
बैसाख तबे खर मरन समान। कामिनि कंत हनए पँचबान।
नहि जुड़ि छा हरि न बरसि बारि। हम जे अभागिनि पापिनि नारि।

२—अंकुर तपन ताप यदि जारब, कि करब बारिद मेह।
ई नब जौवन विरह गमाओल, कि करब से पिया गेह।

वर्षा और वसन्त के वर्णन मे विद्यापति की कल्पना का समधिक चमत्कार दिखाई देता है। वर्षा काल का दृश्य उद्दीपन के रूप मे ही अंकित है, पर वसन्त की झाँकी उद्दीपन और आलम्बन दोनों रूपो मे मिलती है। वसन्त का विरह-व्यथा-व्यंजक दृश्य भी अत्यन्त मनोहर है। वसन्त कालिक-विरह की उद्विग्नता मे विरहिणी कहती है :—"[1]नये कुंजो, कुटीरो और बनो मे पुष्प खिल गए तथा कोकिल पचम स्वर में गाने लगी। मलय-पवन हिमालय की ओर चल पड़ा, फिर भी प्रियतम अपने देश नहीं आए। चदन और चद्रमा शरीर को अत्यन्त सतप्त कर रहे हैं, तथा उद्यानो मे भ्रमर-गण-गुजार कर रहे हैं। वसन्त का समय है, फिर भी स्वामी प्रवासी बने हुए हैं, मै समझ गई कि विधाता बहुत विमुख हैं।" विपत्ति[2] मे पत्रहीन वृक्षो ने पुनः नये-नये पत्ते प्राप्त कर लिए। जान पडता है, ब्रह्मा ने विरहिणियो के नेत्रो को निरन्तर बरसात के लिए ही बनाया है। मेरे हृदय मे वह विरहाग्नि है, जो दिन-प्रतिदिन बढती ही जा रही है। बिना कृष्ण के लाखो उपाय करने पर भी मेरे मन का दुःख मिट नही सकता है।" विरहोन्माद की उद्विग्नता मे उद्धव को फटकारती हुई राधा कहती है :—[3]अकेले कदम्बवृक्ष के नीचे खडी होकर कृष्ण की राह देख रही हूँ, कृष्ण के बिना हृदय दग्ध हो गया और परिधान सर्वथा मलिन हो गया। हे उद्धव, तुम मथुरा जाओ, अब चन्द्रमुखी नही जी सकेगी। बताओ, इस हत्या का पाप किसको लगेगा?" इस संतप्त हृदय के उद्वेग की अभिव्यंजना सर्वदा हृदय-बेधिनी मिलती है।

१—फुटल कुसुम नव कुंज कुटिर बन, कोकिल पचम गाबे रे।
मलयानिल हिमसिखर सिधारल, पिया निज देश न आबे रे।
चानन चान तन अधिक उतापए, उपवन अलि उतरोले रे।
समय बसत कत रहु दुर देस, जानल विधि प्रतिकूले रे।

२—बिपत अपत तरु पाओले रे, पुन नब नब पात।
विरहिन-नयन विहल बिहि रे, अबिरल बरिसात।
सखि, अंतर बिरहानल रे, नित बाढल जाय।
बिनु हरि लख उपचारहु रे, हिय दुख न मिटाय।

३—एकसरि ठाढ़ि कदम-तर रे, पथ हेरबि मुरारी।
हरि बिनु हृदय दगध भेल रे, झामर भेल सारी।
जाह जाह तोहे उधो हे, तोँहे मधुपुर जाहे।
चन्द्रवदनि नहि जीवति रे, बध लागत काहे।

विरह की वह उद्विग्नता स्वभावतः ज्वलन्त भी हो सकती है। जब नारी पुरुष के ऐसे प्रेम मे फँस जाती है, जिसमे उसे अपने कुल-पलिवार से सबध-विच्छेद के लिए विवश होना पडे, प्रेमी पुरुष के अतिरिक्त ससार मे कोई दूसरा उसका सबंधी भी न रह जाय। जिस पुरुष के लिए वह अपना सब कुछ त्याग कर देती है, वह पुरुष भी उसका साथ न दे, तो इससे बढ कर ग्लानि की दूसरी अवस्था नहीं हो सकती है। भुक्त-भोगिनी राधा अपनी इस दशा का परिचय इस प्रकार देती हैं :—"[1]पानी मे तेल की बूँद की तरह मेरा उदार अनुराग है, किन्तु क्षण-मात्र मे बालू के पानी की तरह मेरा सौभाग्य है। उनके प्रतारणापूर्ण-बचनो के लोभ मे मै कुल-बधू से कुलटा हो गई। कैसे कहूँ, कृष्ण से प्रेम बढा कर अपने हाथो मैने अपना सिर मूँड़ा। अचल से मुख छिपा कर चोर की पत्नी की तरह मन ही मन रो रही हूँ, दीपक के लोभ मे पतंग की तरह मै दौड पडी, अब उसका फल भोगना ही चाहिए।" इसीलिए दूती जब वियोगिनी राधा के विरह का वर्णन श्रीकृष्ण से करती है, तव योगिनी के समान उनकी ध्यानस्थता को व्यक्त करती है —"हे [2]कृष्ण उस वियोगिनी को मैने देखा। उनके अधर पर न हँसी है और न सखियो के साथ हास्य-विनोद ही करती हैं, दिन-रात तुम्हारा ही नाम जपती रहती हैं।" [3]आँखों के आसुओ से नदी का निर्माण कर चन्द्रमुखी राधा उसी मे स्नान करती हैं।

हे कृष्ण! वृन्दावन मे सुन्दरी तपस्या कर रही हैं, उनके हृदय-रूपी वेदी पर कामाग्नि प्रज्वलित होती रहती है। प्राणो को लकडी और स्मरण को आग बनाकर वह हवन करती हैं। अब हत्या का भागी आपको ही बनना पडेगा।"

१—तेल-विन्दु जैसे पानी पसारिए, ऐसन मोर अनुराग।
सिकता जल जैसे छनहि सूखए, तैसन मोर सुहाग।
कुल-कामिनि छलौ कुलटा भए गेलौ, तिनकर बचन लोभाई।
अपने कर हम मूँड मुड़ाएल, कानु से प्रेम बढाई।
चोर-रमनि जनि मन मन रोअई, अम्बर बदन छिपाई।
दीपक लोभ सलभ जानि धाएल, से फल भुजइत चाई।

२—माधव देखलि वियोगिनी वामे।
अधर न हास विलास सखी सँग, अहोनिसि जप तुअ नामे।

३—लोचन नीर तटनि निरमाने। करए कलामुखि तथिहि सनाने।
वृन्दावन कान्हु धनि तप करई, हृदय-वेदि मदनानल बरई।
जिब कर समिध समर कर आगी। करनि होम बध होएवह भागी।

"कोई[1] सखी उसकी वेणी संभालती है और कोई धूल झाड़ती है। कोई चदन और कस्तूरी आदि का लेपन करती है। कोई कान के समीप जोरो से मन्त्रोच्चारण करती है और कोई तो चिल्ला कर डाकिनी कहकर खदेड़ती है।" बेचारी[2] विरहिणी चन्द्रमा की ओर देखकर मुँह को नीचा कर लेती है और तुम्हारी राह देखती हुई विलाप करती रहती है। आँखो के कज्जल से राहु का चित्र बना कर भयवश उसी की शरण मे हो गई है।" "पृथ्वी[3] को पकड कर वह कई बार बैठती है, लेकिन वहाँ से उठ नही सकती। दैन्यपूर्ण दृष्टि से चारो ओर वह तुम्हे खोजती है तथा उसके नेत्रो से अविरल अश्रुपात होता रहता है।" "अपनी[4] मुख-कान्ति शारदीय चन्द्रमा को सौप दिया है, नेत्रो की चंचलता हरिण को समर्पित कर दी है। कामदेव द्वारा कष्ट पाकर उन्होने अपना केश-विन्यास चमरी गाय को सौप दिया। हे कृष्ण, अब राधा नहीं जीयेगी। सुन्दरी ने जो कुछ जिससे लिया था, वह सब उसी को सौप दिया। दाँतो की शोभा अनार को दे दी और अधर-कान्ति मधुरी फूल को भेट कर दी। अपनी देह-कान्ति बिजली को सौप कर स्वयं कज्जल की तरह हो गई है।" "[5]हे कृष्ण!

१—के ओ सखि बेनि धुन केओ धुरि झार।
के ओ चानन अरगजओ सभार।
के ओ बोल मन्त्र कान तर जोलि।
के ओ कोकिल खेद डाकिनि बोलि।

२—हिमकर हेरि अवनत कर आनन, करु करुना पथ हेरी।
नयन काजर लए लिखए विधुन्तुद, भय रह ताहेरि सेरी।

३—धरनी धरि धनि कत बेरि बइसइ, पुन तहि उठइ न पारा।
कातर दिठि करि चौदिस हेरि हेरि, नयन गरए जल धारा।

४—सरदक ससधर मुखरुचि सोपलक, हरिन के लोचन-लीला।
केसपास लए चमरि के सौपलक, पाए मनोभव पीला।
माधव, जानल न जीबति राही। जतबा जकर लेले छलि सुन्दरि,
से सब सोपलक ताही।
दसन-दसा दालिम के सोपलक। बन्धु अधर रुचि देली।
देह-दसा सौदामिनि सोपलक। काजर सनि धनि भेली।

५—माधब, कत परबोधब राधा। हा हरि, हा हरि कहतहि बेरि बेरि,
अब जिउ करब-समाधा। धरनि धरिये धनि जतनहि बइसइ,
पुनहि उठए नहि पारा।

राधा को अब मैं कितना आश्वासन दूँगी।"हा हरि, हा हरि" बार-बार कहती हुई वह अब प्राण त्याग करना चाहती हैं। पृथ्वी को पकड कर वह बड़े यत्न से बैठती हैं और फिर उठ नही सकती।

अनन्यासक्ति और करुणा की यह मनोहारिणी समन्विति विद्यापति की कला मे श्रृंगार और अध्यात्म की एक साथ ही प्रतीति करा देती है। राधा की प्रेमानुभूति उनकी लोकोत्तर-साधनाशीलता का परिचय दे रही है—"[1]अनुक्षण माधव-माधव रटती हुई वे अपने को कृष्ण समझने लगती हैं तथा प्रेम मे विह्वल होकर अपनेपन को भी भूल जाती हैं। बेसुध हो कर कातरदृष्टि से सखियों की ओर देख कर ऑखो से ऑसू गिराती है तथा अस्पष्ठ स्वर में अनुक्षण राधा राधा रटती रहती हैं। राधा के हृदय मे राधा-कृष्ण एकाकार हो गये हैं। अब कठोर प्रेम टूट नही सकता, प्रत्युत विरहजन्य क्लेश बढ ही रहा है। उसके कीट रूपी विकल प्राण दोनो ओर से ही (राधा-भाव अथवा कृष्ण-भाव) काष्ठाग्नि की तरह भीतर ही भीतर जल रहे हैं।"

कविवर सूरदासजी ने भी राधा की दारुण-विरह-वेदना का ऐसा ही करुणार्द्र दृश्य-दर्शन कराया है। राधा की वर्णनातीत वेदना का परिचय देते हुए उद्धव जी ने श्रीकृष्ण से कहा है कि—"[2]हे कृष्ण सुनिए, राधा की विरह-वेदना को कोई दूसरा किस प्रकार समझा कर कह सकता है। दोनो ओर के प्रेम के विरह को विरहिणी राधा जिस प्रकार दुःख से झेल रही हैं। जब राधा-भाव की दशा

१—अनुखन माधव माधव सुमरइत सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गुन लुबुधाई।
भोरहि सहचरि कातर दीठि हेरि छल-छल लोचन पानि।
अनुखन राधा-राधा रटइत आधा-आधा बानि।
राधा सयँ जब पुनतहि माधव माधव सयँ जब राधा।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत बाढत विरह क बाधा।
दुहुदिस दारु-दहन जैसे दगधई आकुल कीट परन।

२—सुनौ स्याम! यह बात और कोइ क्यो समझाय कहै।
दुहुँ दिसि की रति विरह विरहिनी कैसे कै जो सहै।
जब राधे, तबही मुख माधौ,-माधौ रटति रहै।
जब माधौ ह्वै जाति सकल तनु, राधा विरह दहै।
उभय अग्र दवदारु कीट ज्यौं, सीतलता हि चहै।
सूरदास अति विकल विरहिनी कैसेहु सुख न लहै।

मे रहती हैं, तब मुख से माधव-माधव रटती रहती हैं और जब माधव-भाव की दशा मे हो जाती हैं, तब उनका सारा शरीर राधा के विरह मे जल उठता है। जिस प्रकार दोनो ओर से जलते हुए काठ के बीच मे पड़ा कीडा शीतलता प्राप्ति के लिए उद्विग्न रहता हैं, वैसे ही अत्यन्त व्याकुल वियोगिनी कुछ भी सुख-शान्ति नही पाती हैं।"

इस प्रकार विद्यापति के काव्य मे नारी की अनन्यासक्ति की चरम-दिव्यता की अपूर्व झाँकी मिलती है, नारी-हृदय-वेदना के सूरदास जी भी वैसे ही पारखी हैं। भावानुभूति के इस साम्य मे दोनो महाकवियो की तादात्म्यानुभूति ही प्राण है।

नारी की भाँति ही पुरुष विरह की व्यजना भी अत्यन्त अनूठी है। राधा के विरह मे श्रीकृष्ण की स्थिति भी अनन्यासक्ति की दिव्यता के साथ नितान्त करुणाजनक है। वे राधा की दूती अथवा सखी से कहते है—"मेरा[1] हृदय बडा कठोर है, जो वहाँ से मै चला आया, फिर भी मेरा चित्त वही पर रह गया। राधा के बिना मुझे रात-दिन दोनो ही अच्छे नही लगते, राधा के लिए ही मन लगा रहता है। अन्य रमणियो के साथ सुख-सम्पत्ति के भोग से मुझे जैसे वैराग्य हो गया हो।" "एक[2] क्षण के लिए भी हमारे प्राण शैय्या के पार्थक्य को नही सह सकते थे और न हम दोनो के शरीर ही भिन्न रहते थे। मिलन के समय रोमाच हो जाने पर रति-प्रसग मे किंचित् व्याघात हो जाता था, इसलिए रोमाच भी हमलोगो को पहाड के समान प्रतीत होता था, इसी प्रकार हम दोनो रात दिन मिले रहते थे। हे सखि, कृष्ण किस प्रकार जी सकता है। राधा मुझ से दूर हैं और मै मथुरा मे हूँ, फिर भी वियोग को कठिन प्राण सह

१—कठिन कलेबर तेईं चलि आओल, चित्त रहलि सोइ ठामा।
से बिनु राति दिवस नहि भावए, ताहि रहल मन लागी।
आन रमनि सयँ राज सम्पद् मोय, आछिए जइसे विरागी।

२—तिल एक सयन ओत जिउ न सहए, न रहए दुहु तनु भीन।
माँझे पुलक गिरि अतर मानिए, अइसन रह निसि-दीन।
सजनी कोन परि जीवए कान, राहि रहल दुर हम मथुरापुर—
एतहु सहए परान। अइसन नगर अइसन नव नागरी,
अइसन सम्पद मोर। राधा विनु सब बाधा मानिए,
नयनन तेजिए नोर। सोइ जमुनाजल सोइ रमनी गन,
सुनइत चमकित चीत।

रहे है। यद्यपि मथुरा नगर रम्य है, यहाँ की नवयुवतियाँ रमणीय हैं, और मुझे अपार सम्पत्ति प्राप्त है, तो भी राधा के बिना ये सब तुच्छ प्रतीत होते हैं और मेरी आँखो मे आँसुओ की झड़ी सी लगी रहती है। उस यमुना-जल की स्मृति और उन रमणियो की याद चित्त को विकल कर देती है।

विद्यापति के कृष्ण की भाँति सूरदास के कृष्ण भी ब्रजभूमि, ब्रजलीला और राधा के विरह मे उद्विग्न दिखाई देते हैं। वे अपनी आसक्तिजन्य व्यथा का परिचय देते हुए उद्धव से कहते है :—"यह[1] मथुरा सुवर्ण की नगरी है, जहाँ मणि और मोती भरे हुए हैं, किन्तु जब ब्रज के सुख की याद आती है, तो हृदय मे ऐसी ही वेदना होती है, जैसे मेरे शरीर का अस्तित्व ही नही है :—हे[2] उद्धव, यह रस-रीति मै आप से कह रहा हूँ, चित्त से राधिका की प्रीति नही टलती है।" कविवर सूरदास ने भ्रमर-गीत की कल्पना मे गोपियो की सगुण-निष्ठा को निर्गुणमत की निरर्थकता के साथ चुभती हुई भाषा मे व्यक्त किया है। विद्यापति ने राधा के रूप मे नारी की विविध-परिस्थितियो की अन्तर्व्यथा का मनोज्ञ अभिव्यजन किया है और अपने इस अभिव्यजन कौशल मे ये निरुपमेय हैं। किसी मत-सम्प्रदाय से इनकी कल्पना कही दबी नहीं है। कर्मप्रवण-उपासनाशील ब्राह्मणप्रकृति की आस्तिकता का प्रभविष्णु परिचय इनमे मिलता है। विरहजन्य कृशता और ग्लानि का दृश्य सर्वथा अपूर्व है।

———

१—यह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुक्ताहल जाहीं।
जब ही सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं।

२—कहत हरि सुनि उपँग सुत, यह कहत हौ रस रीति।
सूर चित ते टरति नाही राधिका की प्रीति।

तुलनात्मक-अध्ययन

विद्यापति और चण्डिदास :—विद्यापति की भाँति चण्डिदास ने भी नायिका का पूर्वराग, नायक का पूर्वराग, राधिका-कृष्णरूप धारण, प्रौढा की उक्ति, दौत्य, संभोग-मिलन, रसोद्गार, अभिसार, विप्रलब्धा, खडिता, मान और प्रवास आदि का वर्णन किया है। ये दोनो महाकवि समकालीन ही नही, अपितु परस्पर-मैत्री भाव से संपन्न थे। पाण्डित्य की दृष्टि से श्रीविद्यापति की रचना अधिक प्रौढ तथा अधिक प्राजल है। इनकी सौन्दर्यपर्यवेक्षण की वर्णना जितनी पुष्ट है, भावुकता भी उतनी ही प्रबल है। चण्डिदास मे भावुकता की मात्रा अधिक मिलती है। कवि शेखर विद्यापति कविता के कलावत भी है, श्रीहर्ष और कालिदास की तरह भावुक भी, परन्तु चण्डिदास मे कविता की कारीगरी उतनी नही, जितनी उनकी भावुकता प्रबल है। चण्डिदास की कृति सगीतमय है, वर्णात्मक पाठ-सुख भी। चण्डिदास मे आवेश अधिक है और विद्यापति मे धैर्य पूर्वक सौदर्य निरीक्षण।

कविशेखर विद्यापति की पदावली का आरम्भ होता है, राधा की वयः सधि से और कविवर चण्डिदास की पदावली का नायिका-पूर्वराग शीर्षक से श्रीगणेश होता है। विद्यापति के शीर्षक से स्पष्ट हो रहा है कि वे शैशव और यौवन के सधिकाल का परिदर्शक हो रहे है, पर चण्डिदास के शीर्षक से यौवन की भावुकता और आवेश से उनका अनुप्राणित होना स्पष्ट परिलक्षित होता है। श्रीराधा के पूर्वराग पर कविवर चण्डिदास जी लिखते हैं :—

यमुना जाइया श्यामेरे देखिया,
घरे आइलो विनोदनी,
बिरले बसिया कॉदिया-कॉदिया,
धेयाय श्यामरूप खानि।
निज करो पर राखिया कपोल,
महायोगिनीर पारा।
ओ दुटी नयाने बहिछे सघने,
श्रावण मेघेरि धारा।
हेन काले तथा आइल ललिता
राइ देखिबार तरे।

से दशा देखिया व्यथित होइया,
तुलिया लइल करे।
निज वास दिया मुछिया पूछये
मधुर मधुर वाणी।
आजु केन धनि होयछ एमनि,
कह ना कि लागि सुनि।
आजनम सुखे, हासि विधुमुखे,
कभू ना हेरये आन।
आजु केन बोली, कांदिया व्याकुल
केमन करिछे प्रान।
चाँचर चिकुर, कभू ना सबर,
केने होइल अगेयान।
चंडिदास कहे बेझेछे हृदये,
श्यामेर पिरीति बान।

विनोदप्रिय राधा (जल भरने के लिये) यमुना गई थीं, वहाँ से श्याम को देख कर जब से लौटी हैं, एकान्त मे ही समय काटती हैं। वही बैठी हुई श्याम को मानस नेत्रो से देखती हैं और चुपचाप आँसू बहाया करती हैं। अपने करतल पर कपोल रक्खे हुए, जैसे कोई महायोगिनी बैठी हुई ध्यान कर रही हो। नेत्र श्रावण की मेघ की धारा बहा रहे हैं। ऐसे समय उन्हे वहाँ देखने के लिये अभी सखी ललिता गई, उनकी दशा देखकर उसे भी इतनी व्यथा हुई, कि उसने राधा को अपनी गोद मे उठा लिया। अपने अंचल से राधा के आँसू पोछकर सहृदय वाणी मे पूछ रही है, क्यो सखी आज तुम्हारी ऐसी दशा क्यो है ? तुम्हारा सपूर्ण जोवन तो सुख मे ही बीता, यह चन्द्रमा सदृश मुख सदैव हँसता ही रहा। कभी इस मुख पर मैने विषाद की रेखा नहीं देखी, फिर तुम आज इतनी विकल क्यो हो? तुम्हारी इस दशा को देखकर मेरे प्राण विकल हो रहे हैं। न जाने कौन तुम्हारे हृदय को मल रहा है, तुम्हे इतनी भी चेतना नही है, कि तुम अपने वस्त्र को तथा बालों को सभालो। अरे तुम इतनी अज्ञान हो गई! चंडिदास कहते हैं, कि हृदय मे श्याम की प्रीति का बाण चुभ गया है।"

इन पंक्तियो मे भावुक कवि ने राधिका के पूर्वराग की भावुकता को ही स्पष्ट किया है। जिस तरह उसके हृदय मे आवेश है, उसी तरह राधा के हृदय मे भी। इसी विषय पर राधा के पूर्वराग के संबंध मे विद्यापति लिखते हैं:

हे सखि पेखल एक अपरूप,
सुनइत मानवि सपन स्वरूप।
कमल जुगल पर चांद क माला
तापर उपजल तरुण तमाला।
ए सखि रंगिनि कहल निदान
पुनः हेरइते काहे हरल गेआन।
भनय विद्यापति इहरस भान
सुपुरुष-मरम तुहूँ भल जान।

कृष्ण के अनुपम स्वरूप को देखकर राधा अपनी सखी से कहती है। हे सखी, वह इतना सुन्दर है, कि अभी मै जो कहती हूँ; इसे तुम स्वप्न ही समझेगी। यहाँ कवि विद्यापति की भावना भी प्रबल है और सौदर्यदर्शन की प्रधानता है। कृष्ण दर्शन से राधा का ज्ञान तो हर जाता है; पर अपनी दशा का वर्णन वे स्वय कर रही हैं। परन्तु चण्डिदास की राधा पूर्वराग से ही बेहोश है, वे अपने सम्बन्ध मे कुछ नही कहती हैं। उनकी व्यथा का परिचय उनकी सखी ललिता देती है। इस तरह चण्डिदास ने राधा के भाव की निर्मलता को खूब निबाहा है। चण्डिदास की रूप-वर्णना दर्शनीय है :—

सजनि, कि हेरनु यमुनार कूले,
ब्रजकुलनंदन, हरिल आमार मन,
त्रिभंग दाड़ायां तरुमूले।
गोकुल नगर माझे आर कत नारी आछे,
ताहे केन जा पड़िल बाधा,
निरमल कुलखानि, जतने रेखेछि आमी,
वाँशी केन बोले राधा-राधा।
मल्लिका चम्पक-दामे चूड़ार चालनी बामे,
ताहे शोभे मयूरेर पाखे,
आशे पाशे धेये-धेये, सुन्दर सौरभ पेये,
अलि उड़ि पड़े लाखे लाखे।
से कि रे चूड़ार ठाम, केवल जेमन काम,
नाना छाँदे बांधे पाक मोड़ा,
शिर बेड़ल वैलान जाले, नव गुंजामणि माले
चंचल चाँद उपरे जोड़ा।
पायेर उपरे थुये पा, कंदबे हेलाये गा

गले शोभे मालतीर माला,
बडु चंडिदास कय ना हइल परिचय
रसेर नागर बड़ काला।

राधा सखी से कह रही हैं, हे सखि, यमुना के तट पर मैंने अति सुन्दर-रूप देखा। पेड़ के नीचे त्रिभंग खड़े हुये श्रीब्रजबिहारी ने मेरा मन हर लिया। हे सखि, इस गोकुल गॉव मे और भी तो बहुत सी नारियाँ हैं, उन्हे क्यो न कोई बाधा पडी। अपने कुल को बड़े यत्न से मैंने पवित्र रक्खा था। वंशी राधा-राधा कह कर मुझे क्यो छेड़ती है। और उसका रूप अहा! कितना सुन्दर है। मल्लिका और चपक की मालाओ से शोभित बॉई तरफ झुका कर बॉधे हुए उसके जूडे पर मयूर के पख भी लगे हुए हैं। मल्लिका के पुष्प सौरभ से इधर उधर उडते हुए लाखो भौरे उस पर टूट पडते है और कछनी भी कितने सुन्दर ढंग से बॉधा है, उसमे कितने ही पेच! वह जैसे साक्षात् कामदेव बन रहा हो। जूडे के पेच से गुञ्जो की मालायें भी बॉध दी गई है, ऐसा प्रतीत हो रहा है, कि ये सब वस्तुयें चॉद के ऊपर लपेट दी गई हैं। एक पैर दूसरे पैर के ऊपर रख कदम्ब के सहारे झुका हुआ खडा है। गले मे मालती की माला शोभा दे रही है। चण्डिदास कहते है, हे सखी, परिचय अभी नही हुआ है। यह नागर रस का सागर है।

यह चडिदास की स्वरूप वर्णना है। यहाँ भी वर्णन-शक्ति से भावना-शक्ति प्रबल है। राधा अपनी सखी से जितनी बातें करती है, तन्मय होकर एक द्रष्टा की तरह नही। चंडिदास ने नायक की जो स्थिति दिखलाई है—कदम्ब के सहारे झुक कर खड़ा हुआ, यह अत्यन्त मनोहारिणी है। चंडिदास का प्रभाव कविवररवीन्द्र नाथ पर बड़ा ही गहरा पड़ा हुआ है। भावना प्रकाशन का ढंग भी इन्होने चंडिदास का ही अपनाया है और छन्दो की गति भी ग्रहण की है।

कविवर विद्यापति की रूप वर्णना का यह उदाहरण मनोहर है :—

कामिनि करइ सनाने
हेरइत हृदये हनल पचवबाने
चिकुर गरए जलधारा,
मुख-शशि-भय जनु रोये ॲधियारा।
तितल बसन तनु लागि
मुनिहुँ क मानस मन्मथ जागि।
कुच युग चारु चकेवा
निज कुल आनि मिलायल देवा।

तेइ शंका भुजपासे
बाँधि धयल उड़ि जाइत अकासे।

यहाँ स्नान करते हुये कामिनी के सौदर्य का पर्यवेक्षण नितान्त चमत्कार पूर्ण है। उसके केश से जो जल की धारा गिर रही है, मानो मुख रूपी चन्द्रमा के भय से अंधकार रो रहा है। कुच रूपी चक्रवाको के (नायिका) भुजपाश से बँध जाने की शंका है, इसलिये जैसे वे भीरु हो रहे है। मुक्ति के लिए उड़ जाना चाहते है। उड जाने के भाव से कुच के नुकीले उठान की ओर संकेत हैं, जो प्रति दिन उभरते-भरते आ रहे है। यह कला की उच्चकोटि की कारीगरी है। यह बहिरंग है, वह अन्तरग, इतना ही दोनो मे अन्तर है।

अब इन दोनों महाकवियो की कलावृत्तियो के कुछ अंश की बानगी लीजिए , कविवर विद्यापति ने राधा के अपूर्व आकर्षण की इस प्रकार अभिव्यक्ति की है :—

नव अनुरागिनि राधा, कछु नहि मानय बाधा,
एकलि कयल पयान, पथ-विपथहु नहि मान।
तेजल मनिमय हार, उच कुच मानय भार।
कर संग कंकन मुदरी, पंथहि तेजल सगरी।
मनिमय मंजिर पायँ, दूरहि तजि चलि जाय।
यामिनि घन अँधियार, मन्मथ हेरि उजियार।
विघन-बिथारिन बाट, प्रेमक आयुध काट।
विद्यापति मति जान, अइस न हेरिय आन।

कविशेखर की इन पंक्तियो का अर्थ बहुत साफ है। अभिसार के समय राधिका की भावना इतनी पवित्र है, कि जड़ भूषण की ओर ध्यान बिल्कुल ही नही रहता, बल्कि भूषण भार से मालूम पडते हैं, "तेजल विनमय हार' उच कुच मानय भार" मे कवि ने अपूर्व चमत्कार भर दिया है। उच्चकुच भार मानते हैं, इसलिए मणिमय हार उतार डाला। कुचो के भार की असहनीयता, नितान्त मर्मस्पर्शिणी है। इस प्रकार अधकार-रात्रि मे भी मन्मथ की किरण से नायिका पथ को आलोकपूर्ण देखती हैं और मार्ग के विघ्न समूह को प्रेम के आयुध काट देते हैं, आदि की अभिव्यंजना जितनी सरल है, उतनी चुभती हुई भी चंडिदास के अभिसार पर्यवेक्षण का नमूना लीजिए :—

चलन-गमन हंस जेमन,
बिजुलि ते जेन उयल भुवन।

लाख चाँद लाजे मलिन होइल,
ओ चाँद-वदन हेरिया।
सरल-भाले सिन्दुर बिन्दु,
ताहे बेढ़ल कतेक इन्दु।
कुसुम-सुसम मुकुता-माल,
नोटन घोटन बाँधिया।
बिब अधर उपमा जोर,
हिगुल-मंडित अति से थोर।
दशन-कुंद जेमन कलिका,
किबा से ताहार पांतिया।
हासिते अमिया बरिखे भाल,
नासा कर पर बेसर आर।
मुकुता निश्वासे दुलिछे भाल,
देखइ रे कत भालिया।
चंडिदास देखि अथिर चित,
अँगे-अँगे अंनग रीत।
रस भरे धनि सुंदरी राइ,
चलिल मरमे मातिया।

हंसगामिनी राधिका को देख कर ऐसा जान पडता है, जैसे पृथ्वी पर बिजली उतर आई हो। उनके मुखचन्द्र को देख कर लाखो चन्द्र लज्जा से मलिन हो गये। भाल के सिन्दूर-बिन्दु को मानो कितने ही इन्दुओं ने आकर घेर लिया है। जब वह हँसती हैं, तो अमृत झरता है। नासिका की बेसर का मोती सास के झोके से हिल रहा हैं, कितना सुन्दर है। चित्त अस्थिर है— मिलने की आकाक्षा प्रबल है। अग-अग से अनग की रीति देख पड़ती है। चण्डिदास कहते हैं, रस से परिपूर्ण राधा यौवन की नवीन स्फूर्ति से अभिसार को चली। यह सप्रेम अभिसार है। नायिका के हृदय मे आनन्द की हिलोरें उठ रही है। इस पद मे जैसी कोमल भावना है, वैसा ही कोमल क्षेप। जैसे भादो की भरी नदी अपनी पूर्णता के गर्व मे मथर गति से अपने प्रियतम से मिलने के लिये जा रही हो। वास्तव मे कविशेखर विद्यापति एवं कवि कुल चण्डिदास दोनों महाकवि हैं और साधक भी हैं। पर आकर्षण और पाडित्य विद्यापति में अधिक है।

———

विद्यापति और सूरदास

विरक्ति की अशक्त विवशता मे कराहते हुए युग-जीवन का मानव-शक्ति की युगान्तर मधुरश्री के साथ प्रत्यक्ष करनेवाले मे दोनो महाकवि भारतीय-साहित्य की अक्षय गौरव स्मृति है। कलाकर्षण की दृष्टि से महर्षि कवि विद्यापति मे नारी प्रकृति के जिस उच्छृङ्खल उन्माद का दृश्य अकित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। वर्षा की उद्दाम वेगवती नदी की भाँति विद्यापति की राधा जिस निस्सीम साहस का परिचय देती हैं, उसी ने ब्रजभाषा के कवियो की नारी की प्रेममयी प्रकृति के लिये वीर और भट्ट शब्द का प्रयोग करने का अवसर दिया है। राधा के अभिसार का यह दृश्य कितना साहसपूर्ण है, जिसका परिचय सखी कृष्ण से इस प्रकार दे रही है :—

बरिस पयोधर धरनि वारि भरि,
रयनि महा भय भीमा।
तइयो चललि धनि तुअ गुन मन गुनि,
तसु साहस नहि सीमा।

+ + + +

निअ पहु परिहरि अइलि कमल-मुखि,
परिहरि निअ कुल गारी।
तुअ अनुराग मधुर मद मातलि,
किछु न गुनलि वर नारी।

मेघ वृष्टि कर रहा है, पृथ्वी जल से पूर्ण हो गई है। रात्रि अत्यत भय भरनेवाली विकराल हो गई है। तब भी सुन्दरी राधा ने तुम्हारे गुणो को मन मे सोच कर मिलने के लिये चल दिया। उसका साहस निस्सीम है। × × अपने कुल की गाली की परवाह न करती हुई, वह कमलमुखी अपने पति को छोडकर तुम्हारे पास आई है। तुम्हारे मधुरप्रेम की मस्ती मे वेसुध होकर उस श्रेष्ठ सुन्दरी ने किसीको कुछ भी नही समझा। सूरदास ने परकीया भाव के रागानुग प्रेम के उन्माद चित्र को इस प्रकार अकित किया है :—

चकित भये मोहन मुख-नैन,
घूँघट ओट न मानत कैसेहु, बरजत बरजत कीन्हौ गौन।

निदरि गई मर्यादा कुल की, अपनो भायो कीन्हौ।
मिले जाय हरि आतुर ह्वै कै, लूटि सुधा-रस लीन्हौ।

प्रेमिका की रूपसुधा को पीकर कृष्ण के मुख और नेत्र बेसुध हो गए हैं। घूँघट की ओट मे छिपी हुई नायिका की सौन्दर्य माधुरी के लिए रोकते-रोकते भी पहुँच गये। कुल की मर्यादा तिरस्कृत हो गई और उन्होने यथेष्ट सुख का अवसर प्राप्त कर लिया। अतृप्ति से क्षुब्ध होकर कृष्ण जाकर मिले और उसके अधरामृत को उन्होने लूट लिया।

कृष्ण के प्रेमोन्माद मे सूर की पूर्वानुरागिनी नायिका ने सामाजिक बन्धनों को किस प्रकार शिथिल कर दिया है। इसका चित्रण दर्शनीय है :—

पलक ओट नहि होत कन्हाई,
घर गुरुजन बहुतै विधि त्रासत।
लाज करावत लाज न आई,
नैन जहाँ दरसन हरि अँटके,
स्रवन थके सुनि बचन सोहाई।
रसना और नही कछु भासत,
श्याम-श्याम रट रही लगाई।
चित चंचल संगहि सँग डोलत,
लोक लाज-मर्याद मिटाई।
मन हरि लयौ सूर प्रभु तबही,
तनु बपुरे की कहा बड़ाई।

प्रेमिका के पलको की आड मे कृष्ण नही होने पाते हैं। घर के श्रद्धेय जन उसे अनेक प्रकार से भयभीत कर लज्जा धारण कराने के लिये प्रयत्न करते हैं, पर लज्जा का बन्धन स्वीकार करने के लिये वह प्रस्तुत नही हो रही है। जहाँ कृष्ण हैं, वहीं उसके नेत्र आकर रुके हुए हैं। उनकी सुन्दर वाणी को सुन कर उसके श्रवण मुग्ध हैं, मुख से श्याम की पुकार लगा रही है। उसका चचल हृदय कृष्ण के साथ-साथ घूम रहा है, लोक की लज्जा और कुल की मर्यादा को उसने खो दिया है। सूरदास कहते हैं, कि जब प्रभु ने उसके मन को पहिले ही वशवर्ती बना लिया, तब बेचारे शरीर का क्या वश चलेगा!

वर्षा की नदी की भाँति स्वच्छन्द प्रेम-पथ पर बहने वाली यह प्रेमिका सापत्न्य-भाव की स्पर्धा मे कितनी ज्वलन्त हो जाती है :—

मोहि छुऔ जनि दूर रहौ जू।
जाको हृदय लगाइ लई है, ताकी बाँह गहौ जू।
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी और दासी।
मैं देखति हिरदै वह बैठी, हम तुमको भई हाँसी।
बाँह गहत कछु सरम न आवत, सुख पावत मन माहीं।
सुनहु 'सूर' मो तन को इकटक, चितवति डरपति नाहीं।

प्रेमिका कृष्ण से कहती है, कि मेरा स्पर्श न कीजिए, दूर रहिए। जिसको आपने अपने हृदय से लगाया, उसका हाथ पकडिये। प्रतीत होता है, कि आप सर्वज्ञ हैं और सब लोग मूर्ख हैं। आपकी वह प्रेमिका रानी है, और हम सब दासी हैं। मै देख रही हूँ, कि वह आप के हृदय मे समाहृत है और हम आप के लिये हँसी की वस्तु हो गई हैं। उसका हाथ पकड़ते हुए आपको लज्जा नही आती है, बल्कि मन मे सुख का अनुभव कर रहे हैं। मेरी ओर वह एक टक देख रही है, जरा भी भय का अनुभव नही कर रही है।

परकीय-प्रेम के इस उच्छृङ्खल प्रवाह के साथ ही राधा और कृष्ण के प्रेम को स्वाभाविक यौवनोन्माद के आवेश और शैशव की सहज स्वच्छन्दता से समन्वित कर सूर ने रहस्यमय बनाया है। कृष्ण खेलने के लिये निकले हैं, राधा भी अपनी समवयस्काओं के साथ वहाँ पहुँच गई हैं, कुमारावस्था मे दोनो परस्पर-दर्शन से अनुरक्त हो जाते है।

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।

× × ×

संग लरिकनी चलि इत आवति, दिन थोरी अति छबि तन गोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी।

राधा के इस प्रारम्भिक मधुर आकर्षण पर मुग्ध होकर कृष्ण ने कहा—

तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी।

इस प्रकार दोनो परस्पर अनुरक्त होकर भी आकर्षण को छिपा रहे है:—

गुप्त प्रीति न प्रकट कीन्ही, हृदय दुहुँनि छिपाइ।
"सूर" प्रभु के बचन सुनि-सुनि रही कुँवरि लजाइ।

इसके बाद कविवर सूरदास ने जयदेव के 'गीत गोविन्द' की भाँति नन्द के द्वारा कृष्ण का संरक्षण राधा को सुपुर्द कराया है:—

सुनु बेटी वृषभानु महर की, कान्हहि लेइ खिलाइ।
सूर-श्याम को देखे रहिऔ, मारै जनि कोउ गाइ।

इस समय से राधा अपने को कृष्ण के ऊपर अनुशासन करने की अधिकारिणी समझने लगती हैं और कृष्ण से कहती हैं—

नन्द बाबा की बात सुनौ हरि।
मोहि छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे, ल्याऊँगी तुमको धरि।
भली हुई तुम्हैं सौंपि गए मोहि, जान न दैहौ तुमकौ।

इसके साथ ही कृष्ण की वह उच्छृंखलता भी है, जिसके लिये ऐतिहासिक तथ्य से अपरिचित विद्यापति के कुछ आलोचकों ने उन्हे अश्लील कहकर उपेक्षित रखने का दुस्साहस दिखाया है:—

नीवी ललित गही जदुराई।
जबहि सरोज धरयो श्रीफल पर, तब जसुमति गइ आइ।

\+ \+ \+

देखि बिनोद बाल-सुत कौतुक महरि चली मुसकाइ।

कृष्ण के चीरहरण का दृश्य दर्शनीय है, गोपियाँ अपना वस्त्र उनसे माँग रही है:—

हमारे अम्बर देहु मुरारी।
ले सब चीर कदम चढ़ि बैठे, हम जल माँझ उघारी।
तट पर बिना बसन क्यो आवै, लाज लगति है भारी।
तुम यह बात अचम्भौ भावत, नाँगी आवहु नारी।

प्रेमिका गोपियो के नग्न शरीर-दर्शन के लिये कृष्ण उनसे कहते है:—

जल लै निकसि तीर सब आवहु
जैसे सविता सौ कर जोरे, तैसेहि जोरि दिखाहु।

यह सुन कर गोपियाँ कहती है:—

नव बाला हम, तरुन कान्ह तुम, कैसे अंग दिखावै।
जलही में सब बाहैं टेकि कै, देखहु श्याम रिझावै।

कृष्ण इस शर्त पर तैयार नही होते है और गुप्त अंगों की लज्जा हटा देने के लिये उन्हे विवश करते है:—

ऐसै नहि रीझौ मै तुम सौ, तरही बाँह उठावौ।
सूरदास प्रभु कहत सबनि सौ, वस्त्र-हार सब पावौ।

कृष्ण की यह उच्छृङ्खलता और बढती है, और वे रास्ते में भी छेड़-छाड करते है।

जौबन दान लेउँगौ तुम सो।
जाकै बल तुम बदति न काहुहि, कहा दुरावति हम सौ।
ऐसेहु धन तुम लिये फिरति हौ, दान देति सतराति।
अतिहि गर्व तै कह्यो न मोसौ, नित प्रति आवति जाति।
कंचन कलस महारस भारे, हमहुँ तनिक चखावहु।
सूर सुनौ बिनु दिये दान के, जान नहीं तुम पावहु।

कृष्ण के इस अतृप्तिजन्य भावुकआवेश के कारण उनकी प्रेमिका उनसे कन्धे पर बैठाने के लिये इस प्रकार निवेदन कर रही है —

कहै भामिनी कंत सौ, मोहि कंध चढ़ावहु।
नृत्य करत अति स्रम भयौ, ता श्रमहि मिटावहु।
धरनि धरत बनै नहीं पग, अतिहि पिराने।
तिया बचन सुनि गर्व के, पिय मन मुसुकाने।

केलि-विलास में जब नायिका मान करती हैं, तब कृष्ण उसके चरण पर झुक जाते हैं :—

आलिगन दै अधर पान करि, खंजन कंज लरे।
हठ करि मान कियौ जब भामिनि, तब गहि पाँय परे।

जडाध्यात्मवादी युग-जीवन की यह अतृप्तिजन्य विवशता थी, जिसका परिचय कविवर विद्यापति की समीक्षा मे दिया गया है। कविवर सूरदासजी ने भी युग की इस अधोगति का परिचय अनेक पदो द्वारा कराया है। कुछ पंक्तियो द्वारा युग-दृश्य देखा जा सकता है :—

अब तौ सॉचौ कलियुग आयौ।
पुत्र पिता को कह्यो न मानत, करत आपु मन भायौ।
पुत्री बेंचि पिता धन खायौ, दिन-दिन मोल सवायौ।

इस सामाजिक अधोगति के साथ साम्प्रदायिक अधोगति भी द्रष्टव्य है :—

द्वादस तिलक लगाइ अंग में, फिरि-फिरि सबै दिखाऊँ।
करि उपदेश सबन के आगे, अपुनौ पेट भराऊँ।

हरि सेवा माँड़ी प्रभुता को, कीरति बहुत बढ़ाऊँ।
निंदा करौ और की मुख सो, आपुन भलो कहाऊँ।
अति आचार चारु सेवा रचि, नीके करि-करि पंथ रिझाऊँ।

यह सामाजिक तथा साम्प्रदायिक अत्याचार था, जिससे मानव-मानवी का सौन्दर्यबोध सर्वथा तिरस्कृत था। इसी अधकार के बीच से राधावल्लभ गोपिकेन्द्र कृष्ण का मधुर ऐश्वर्यमय मानव रूप मे प्रत्यक्ष युग-प्रवर्त्तक महाकवि विद्यापति और सूरदास की भाव-व्यजना मे कही-कही बिलकुल साद्दश्यपूर्ण भी मिलता है :—

राधा सयँ जब पुनितहि माधव, माधव सयँ जब राधा।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत बाढ़त बिरह क बाधा।

नारी सृष्टि के प्रति जो अविश्वास-मूलक घृणा लोक-जीवन मे सर्वत्र व्याप्त थी, उस कलुष को अपनी साधना-ज्योति से धोकर सूर की गोपियाँ नारी की सहृदयता एवं दिव्यता का विश्वास भर देती हैं। वियोग-पक्ष मे 'सूर' ने कोमल-भावना-क्षेत्र की समस्त अभावमयी स्थितियो का संकेत दिया है। वत्सल, सुहृद् तथा शृंगार तीनो की ही संयोगावस्था जितनी मधुर होती है, वियोगावस्था उतनी ही मर्म-कष्ट-प्रदायिनी होती है। कृष्ण के प्रवास की कोई निश्चित अवधि नही है। प्रेम सहज राग का है, जिसके प्रति समाज सर्वथा आस्थाशून्य है। ऐसी अवस्था मे चारो ओर से निराधार होकर वे युग के वैराग्योपासको के स्वार्थ-चक्र मे पड़कर वेश्या बाजार की शोभा बढा सकती थी अथवा अनेक स्थानो मे क्षणिक सुख के लिए प्रताडित भी हो सकती थीं। पर एक बार के धोखे से ही उन्हे सर्वदा के लिए बोध हो जाता है और वे योगि-दुर्लभ-साधना से भी अपने को ऊपर पहुँची हुई समझकर पूर्ण विश्वास के साथ सहज-समर्पण-संकल्प का ही अभिनन्दन करती हैं। यह अवश्य है, कि निश्छल शैशव के मधुर अनुराग मे जब नैराश्य की अवस्था उपस्थित होती है, तो उद्विग्नता की सीमा नही रह जाती। इसलिए विरहावस्था मे मनोजगत की जितनी भी स्थितियाँ होती हैं, सूरदास ने सब कुछ को रेखाकित कर दिया है। अनुकूल परिस्थितियो मे जो प्रकृति के अथवा जीवन के प्रसाधन सुन्दर प्रतीत होते हैं, वे ही अभाव की सन्तप्त दशा मे दुःख-वृद्धि का कारण बन जाते हैं। प्रकृति की यह उद्दीपनशीलता प्रकृति के सनातन स्वरूप के प्रति अनास्था के कारण ही अधिक प्रबलरूप मे परम्परा से गृहीत हुई है। कविवर सूरदास ने भी शृंगार काव्य-परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हुए विरह की चरम तीव्रता का

अनुभव कराने के लिए प्रकृति का उद्दीपनमय रूप उपस्थित किया है। वह ऐसा समय था, जब नारी को क्षणिक विनोद की वस्तु समझकर उसका तिरस्कार कर देने में ही लोग सिद्धता का अनुभव कर रहे थे और इसी प्रवाह में नारी अपने अस्तित्व को खो रही थी।

ग्रामीण-जीवन की स्थिति नागरिक जीवन की अपेक्षा कुछ भिन्न थी। वहाँ सरलता के साथ निश्छल-समर्पण का सौहार्द भक्ति की अनन्यता के साथ सुरक्षित था, वस्तुतः सूर-साहित्य की अवतारणा में गोपियाँ ग्रामीण-नारी का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। ग्रामीण जीवन प्रकृति की क्रोड में ही स्नेह का अमृत बहाता आ रहा है। इसीलिए गोपियों को अपने आराध्य के वियोग में प्रकृति की विनोदमयी प्रेरणा अत्यन्त दुःखद हो गयी थी। व्यवहारिक-क्षेत्र से नारी को सर्वथा दूर रखने के कारण उसके ऐकान्तिक जीवन की साधना का प्रकृति-निष्ठ होना स्वभाविक भी था। सूरदास जी के भ्रमरगीत काव्य का अध्ययन करने के अनन्तर इसकी सजीवता स्पष्ट परिलक्षित होती है। कृष्ण के वियोग में उनके आँसू वर्षाऋतु से सादृश्य उपस्थित करते हैः—"**निसि दिन बरसत नैन हमारे**"। यहाँ अत्यन्त उद्विग्नता की दग्धकारिणी परिस्थितियाँ जीवन को अभिशाप पूर्ण बना देती है, वे कहने लगती हैं:—"**मधुबन कत तुम रहत हरे**"। रात्रि का कटना उनके लिए कठिन हो जाता है:—"**पिया बिनु साँपिन कारी राति**"। ऐसी ही विषम परिस्थिति में उनके प्रेम की परीक्षा की कसौटी बन कर कृष्ण के अनन्यमित्र उद्धव जी उपस्थित होते है। यहाँ उद्धव को कवि ने युग की लोक मंगल निरपेक्ष साधना-धाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले योगी के रूप में दिखला कर भावव्यजना की मार्मिकता को अत्यन्त सजीव तथा प्रभविष्णु बना दिया है। इस अवसर पर सूरदास जी ने नारी हृदय के साथ अपनी पूर्ण सहानुभूतिमयी आत्मीयता की निसर्ग सहृदयता का प्रत्यक्ष कराया है। गोपियों की जैसी शिशु सुलभ निश्छलता हम संयोगमय जीवन में देखते हैं, वियोग में भी वह वैसी ही है। उद्धव जब अपने अगम अगोचर सत्य के प्रति उनका ध्यान आकृष्ट करते है, तब वे सुनते ही जैसे घबरा उठती है और विनोद पूर्वक उस अगम्य का परिचय उनसे पूछ बैठती है:—

निर्गुन कौन देस को वासी ?
मधुकर हँसि समुझाय सौंह दै, बूझत साँच न हाँसी।

उद्धव के ज्ञान का उपदेश उनकी समझ के बाहर की बात जान पडता है। गोपियाँ अपनी सहज विनोदशीलता का प्रत्यक्ष कराती हुई उस चरम समाधि की गम्भीरता का खण्डन करती है:—

मधुकर ये मन बिगरि परे ।
समुझत नाहि ज्ञान गीता को हरि मुसकानि अरे ।

गोपियाँ जिस अभाव की वेदना में त्रस्त हैं, उस अभाव से भी उन्हे प्रेम ही है, क्योकि इससे प्रेम की अनन्यता की पुष्टि होती है । विरह एक ऐसा सत्य है, कि इसका सृष्टि-व्यापी प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है, इसलिए उनकी उद्विग्नता भी नैसर्गिक है । जीवन की गम्भीर वेदना का मर्म समझने वाली गोपियाँ उद्धव की साधना का मर्म अच्छी तरह समझ लेती है । इस पक्ति द्वारा इसे समझा जा सकता है—"ऊधो जाहु तुम्हें हम जाने" । क्योकि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले सत्य को ही वे महत्व देती है--

सगुन सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत ।

गोपियाँ अपने प्रेम को चिर साहचर्य के कारण अविस्मरणीय सिद्ध करती हुई उद्धव की हठयोग साधना को धोखे की वस्तु समझती हैं—

"जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै" ।

इस प्रकार गोपियाँ ज्ञान की चरम-परिणति की ज्योति के रूप मे उपस्थित होकर उद्धव जी के हृदय की आँखो को उन्मीलित कर देती हैं । राधा की तन्मयता की समाधि का परिचय कराते हुए उद्धव जी ने जो रहस्यमयी झाँकी दी है, ऐसी ही चित्र योजना विद्यापति मे भी हमे प्राप्त होती है । इस प्रकार प्रेम तथा करुणा की धारा निसर्ग चमत्कृति के साथ सूर के भ्रमरगीत की कल्पना मे प्रवाहित होती है । भावो की जितनी गम्भीरता है, भाषा की उतनी ही समर्थ व्यंजन क्षमता भी । गोपियो के एक-एक व्यग मे नारी-हृदय की अतृप्ति, आशा के आलोक मे अपनी विवशता-दीनता को छिपाये हुए है । इस प्रकार यह निसर्ग-प्रकृति का सनातन मधुर स्वर है । कला की रेखायें अपनी वक्रता की भंगिमा मे सर्वत्र अपूर्व हैं । वक्तव्य थोडा होते हुए भी उसके पल्लवन में कवि कल्पना की मौलिकता ही झलकती है ।

सूरदास के दृष्टि-कूटो मे उनकी कला की चमत्कृति का पूर्ण अविष्कार है । यमक, श्लेष, अनुप्रास के साथ अर्थ-वैचित्र्य का अपूर्व वैभव दिखाई देता हैं । वाग्विदग्धता तथा भावुकता का मधुर मिलन सूरकाव्य की निसर्ग-विजयिनी-शक्ति का द्योतक है । इस प्रकार कथानक की सहज-चारुता के साथ भारतीय-प्रकृति की चित्रमयी स्वर-लहरी सूर की कला से आविर्भूत होकर बह चली है । उद्धव जैसे परम विरक्त व्यक्ति भी इस पावन दिव्यता पर मुग्ध दिखाई देते हैं । इसकी प्रतीति इस पद से स्पष्ट है—

"ऊधो कहैं धन्य ब्रजबाल।
जिनके सरवस मदन गोपाल।"

कृष्ण का दर्शन प्राप्त कर जब उद्धव उन्हे ब्रज-वासियो की स्थिति अवगत कराने लगते हैं, उस समय उनका बौद्धिक-उन्माद परम सहृदयता मे परिवर्त्तित होकर इस प्रकार मुखरित होता है—

गोपी, ग्वाल, गाय, गोसुत सब, मलिन वदन कृत गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमीहत, अम्बुज गन बिनु पात।
पिक चातक वन बसन न पावत, वायस बलिहि न खात।
सूरदास संदेशन के डर, पथिक न वहि मग जात।

राधा का परिचय देते समय उनकी सहानुभूति की श्रुति इस प्रकार झंकृत हुई है :—

सोलह सहस पीर तन एकै,
राधा जिव सब देह।"

राधा को उद्धव ने कृष्ण के ध्यान मे तन्मय ही देखा है:—

"देखा मैं लोचन चुवत अचेत।"

उनकी मुखरवाणी अब मौन हो गई है। आँसुओं के द्वारा केवल अपनी विवशता को व्यक्त करने मे ही वे समर्थ हैं:—

जब सँदेसो कहन सुन्दरि गवन मोतन कीन।
खसि मुद्रावलि चरनि अरुझी गिरी महि बलहीन।
कठ वचन न बोल आवै हृदय परिहसि भीन।
नैन जल भरि रोइ दीनों ग्रसित आपद दीन।

उनका सदेश विवशता की स्वीकृति के रूप मे इसी प्रकार सुनाई देता है:—

चरन कमल दरसन नव नौका, करुणा सिधु जगत जस लीजै।
'सूरदास' प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै।

विरह-वर्णन मे रूपकात्मक-चमत्कृति के अनेक दृश्य सूरदास ने भी अंकित किए हैं। यमुना की दशा विरहिणियो की भाँति ही दयनीय हो गई है:—

लखियत कालिन्दी अति कारी।
कहियो पथिक जाइ हरि सों ज्यो, भई विरह जुर जारी।
मनु पलिका परि परी धरनि धँसि, तरँग-तलफ तनु भारी।

तट वारू उपचार चूर मनो, स्वेद प्रवाह पनारी।
विगलित कच कुस कास पुलिन मनो, स्वेद-प्रवाह पनारी।

प्रतिक्षण कृष्ण का स्मरण करते करते राधा कृष्ण रूप हो जाती है और अपने को कृष्ण समझ कर राधा के वियोग मे राधा राधा रटने लगती हैं। जब सुधि होती तब कृष्ण के बिरह मे संतप्त होकर पुनः कृष्ण-कृष्ण कहने लगती हैं। इस प्रकार जब होश मे रहती हैं तब भी, नही रहती है तब भी, दोनो ही दशाओ मे उन्हे विरह का दुःख सहना पडता है। उनकी दशा उस लडकी के भीतर के कीडे जैसी हो गई है, जिसके दोनो छोरो पर आग लगी हो। विद्यापति के इसी भाव का पद सूर का देखिये :—

जब माधौ ह्वै जाति, सकल तनु राधा विरह दहै।
उभय अग्रदव दारु कीट ज्यों सीतलताहि चहै।

कविवर सूर ने सारंग शब्द के द्वारा यमक का चमत्कार दिखाते हुये कूट पद का इस प्रकार उपस्थित किया है :—

सारँग सम कर नीक-नीक सम सारँग सरस बखाने।
सारँग बस भय, भय बस सारँग, सारँग विसमे माने।
सारँग होत डरत सारँग ते सारँग सुत ढिग आवै।
कुन्ती सुत सुभाव चित सुमुझत सारँग जाइ मिलावै।

कविवर विद्यापति ने भी नायिका के नख-शिख का निरूपण करते समय "सारँग" का यमक-कूट के रूप मे दर्शन कराया है :—

सारँग नयन बयन पुनि सारँग,
सारँग तसु समधाने।
सारँग ऊपर उगल दस सारँग,
केलि करथि मधुपाने।

राधा के सौन्दर्य का चित्र अंकित करते समय कविवर विद्यापति ने लिखा है कि :—

पल्लव-राजकमल-जुग सोहत,
गति गजराज क भाने।
कनक-कदलि पर सिह समारल,
तापर मेरु समाने।

इस भाव को रूपकातिशयोक्ति के वैसे ही चमत्कार के साथ सूरदास ने इस प्रकार पल्लवित किया है :—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग।

सूरदास ने कृष्ण काव्य परम्परा मे विद्यापति से नख-शिख वर्णन ए दृष्टि कूटो की परम्परा गृहीत की है, इससे स्पष्ट हो जाता है। कविवर सूर के विरह-वर्णन मे विद्यापति की अपेक्षा शैशव-कौतूहल और विनोदवृत्ति की प्रधानता अधिक है। ब्रज तथा ब्रजवासियो के प्रति अपनी अनन्य प्रेम निष्ठा को प्रकट करते हुये भी कृष्ण, उद्धव के द्वारा यशोदा के पास यह सन्देश भेज रहे हैं:—

नीको रहियो जसुमति मैया।
बसो बेनु सँभारि राखियौ और अबेर अबेर सबेरो।
मति लै जाय चुराय राधिका, कछुक खिलौनो मेरो।

पर कविवर विद्यापति के कृष्ण मे राधा के प्रति अनन्य-तन्मयता-जन्य गंभीरता है। वे कहते है:—

राधा बिनु सब बाधा मानिए,
नैनन तेजिए नोर।

पूँजीवादी युग के विश्लेषोन्मुख वासनोन्माद के कारण जब नारी-शक्ति पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन मे सर्वथा उपेक्षित थी, उस समय उसके मधुर-आकर्षण के प्रति अनन्यता के मधुर समन्वय का स्वर सुनाने वाले इन दोनों महाकवियों का प्रतिनिधित्व बिल्कुल स्पष्ट है। वे दोनो ही अपनी रूप-सृष्टि मे तन्मय रहने वाले भक्त हैं। कविवर विद्यापति ने राधा के केवल अपूर्व रूप के प्रभाव का ही संकेत नही दिया है, किन्तु उनकी गुण-गरिमा का भी अनेक स्थलों मे परिचय कराया है:—

विद्यापति कबि गाओल सजनि गे,
गुन पाओल अबधारि।
\+ + + +
भनइ विद्यापति गावै,
बड़पुन गुनमति पुनमत पावै।
\+ + + +
एहनि सुन्दरि गुनक आगरि, पुनें पुनमत पाव।
\+ + + +
गुनमति धनि पुनमत जन पावे।

पर सूर केवल रूपाकर्षण मे ही तन्मय दिखाई देते हैं। रूपासक्ति की अनन्यनिष्ठता की नव-नव-वैचित्र्य पूर्ण, हृदय-हारिणी, संगीतमयी, दृश्यानुभूति

की दृष्टि से दोनो ही महाकवि अतुल और अनुपमेय हैं। दोनो ने निसर्ग-जीवन-प्रवाह की मधुर-ऐश्वर्यमयी आसक्ति और अनासक्ति से समन्वित दृश्या-नुभूति को स्वर की धारा मे तरंगायित किया है। विद्यापति की रचनाओं को मन्त्रवत्-तन्मयता को समाधि मे चैतन्य महाप्रभु जैसे लोक हृदय-संमान्य गायक ने गाकर बगाल से ब्रज तक के सहृदय-जीवन को आप्यायित कर दिया था। सूरदासजी ने कृष्ण की मनोहारिणी लीलाओ की संगीतमयी झाँकी सुलभ की है। भक्ति के आवेश की प्रबुद्धता सूर की स्वरानुभूति मे दब नहीं सकी है। पर रूपासक्ति की तन्मयता के अनुपम-आकर्षण को प्रेषणीयता प्रदान करने मे विद्यापति और सूर का कृतित्व तुल्य कोटिक है। सूर के सख्य और वात्सल्य की स्वर लहरी की झकार अनुपम है। मुरली के साथ गोपियो के सापत्न्यभाव की व्यजना मे सूर की सहृदयता स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्रसगों की कल्पना मे सूर कुशल हैं। भागवत तथा बल्लभाचार्य से अनुरूप प्रेरणा सूर ने प्राप्त की है।

"व्यास कह्यो सुकदेव सों, द्वादस कंध बनाइ।
'सूरदास' सोई कह्यो पद भाषा करि गाइ।"
"श्री बल्लभ गुरु तत्व सुनायो, लीला भेद बतायो।"

युग के आदर्शात्मक-प्रतिनिधित्व की उपलब्धि के लिए ध्येयनिष्ठ होकर सूर ने गोपियो के विरह के साथ निर्गुण और सगुण के उपासना-भेद की मान्यता का प्रत्यक्ष कराया है। कविवर विद्यापति रस-सिद्ध कवीश्वर के रूप मे सर्वथा उन्मुक्त हैं, उन पर किसी प्रकार की भक्ति या उपासना का साम्प्रदायिक प्रभाव बिल्कुल नही है। शिव के प्रति जो उनमे उपास्यनिष्ठा है, उसकी ओर सकेत उनकी शृंगार-कल्पना में अनेक स्थलो मे मिलता है, किन्तु उससे रसात्मक दिव्य-चमत्कृति की प्रतीति ही होती है। प्रकृति का विरह वर्णन के प्रसंग मे उद्दीपनमय चित्रण दोनों कवियों ने किया है। इस प्रकार दोनो कवियो के काव्य-क्षेत्र तथा शैली मे पर्याप्त समानता है। विद्यापति ने संस्कृत तथा अवहट्ठ भाषा के रचना-कौशल से वस्तु-जगत के व्यापक-क्षेत्र की आँखें खोल दी है। सूरदास ने कृष्ण के शिवरूप का इस प्रकार प्रत्यक्ष कराया है:—

तिलक ललित ललाट केसरि विन्दु सोभाकारि।
अरुन रेखा जनु त्रिलोचन रह्यो निज रिपु जारि।
कंठ कठुला नीलमणि अम्भोज माल सँवारि।
गरल ग्रीव कपाल उर यहि भाय भये मदनारि।

यह सत्य, शिव और सौन्दर्य की समन्विति विद्यापति और सूरदास के काव्याभिव्यंजन का प्राण है।

विद्यापति और जायसी

जिस समय भारतीय इतिहास मे योग का चिन्तन तथा चमत्कार लोक-जीवन को विस्मय-विमुग्ध कर रहा था, उस समय सामान्य-जीवन का प्रतिनिधित्व करते हुए जिस प्रकार कबीर, दादू, रैदास आदि वैरागी सन्त दिखाई, देते हैं, उसी प्रकार मध्यम-वर्ग की भोग साधन- संपन्न-जनता को "प्रेम की पीर" की मधुर-कहानियो द्वारा योग का चमत्कार-स्वर श्रुति-गोचर कराने वाले मुसलमान सूफी सन्त भी दिखाई देते हैं। इनकी वाणी मे वासनामययौवन का उच्छृङ्खल-उन्माद जिस प्रकार चरम-भावावेश के साथ दिखाई देता है, उसी प्रकार ऐकान्तिक जीवन की गभीर-श्मशान शान्ति की तन्मयता भी मिलती है। जीवनोत्कर्ष की स्पर्धा मे निरपेक्ष राज-शक्ति का जन-रंजक-दृश्य अद्भुत घटनाओ की योजना द्वारा मुसलमान होते हुए भी सूफी कवियो ने बडी सहृदयता से गोचर कराया है। भारतीय दर्शन का सर्ववाद कही कहीं इनकी भाषा मे दिखाई देता है, तो कही एक ही सूक्ष्म-तार का कंपन अद्वैतवाद की निस्सगता का दृश्य उपस्थित करता है। इन सूफी कवियो की परम्परा मे जायसी का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इतिहास और कल्पना की समन्विति से प्रस्तुत की गयी अपनी कथा की अध्यात्मिक-चेतना का प्रभाव स्पष्ट करने के लिए जायसी ने "पद्मावत" काव्य के उपसहार मे कहा है :—

"मै एहि अरथ पण्डितन्ह बूझा। कहा कि हम कछु और न सूझा।
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिहल बुधि पदमिनि चीन्हा"

इससे स्पष्ट होता है, कि जायसी के काव्य की अभिव्यक्ति अन्योक्ति-प्रधान है। सिहलगढ का वर्णन करते हुए शारीरिक-अध्यात्मक-भावना का मेल इन्होने दिखाया भी है, पर ऐसे स्थलो मे वस्तु-व्यजना भी अभीष्ट होने के कारण अन्योक्ति नही, अपितु समासोक्ति ही प्रतीत होती है :—

नव पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरहि पॉच कोतवारा।
दसवॅ दुआर ताल कै लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा।

सामान्यता प्रतीक के रूप मे पद्मावती के लिए इन्होने "शशि" शब्द-का भी प्रयोग किया है और "रवि" शब्द का भी। किन्तु "रवि" शब्द का प्रयोग रत्नसेन के लिए अधिक किया है और अलाउद्दीन के लिए भी। अतः प्रतीकार्थ

मे समन्वयात्मक प्रौढ़ता तथा एकरूपता का सर्वथा अभाव है। जिस प्रकार कविवर विद्यापति ने रूप-जगत के द्वारा सूक्ष्म-सौन्दर्य की अद्भुत-व्यजना की है; उसी प्रकार जायसी ने भी की है.—

जेहि दिन दसन जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।
जहँ जहँ बिहसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।

× × × ×

हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि।

युग की प्रवृत्ति की प्रतीति के लिये योग की साधनानुभूति का आर सकेत कविवर विद्यापति ने अनेक बार किया है, पर जायसी ने हठयोग के प्रचारक गुरु गोरखनाथ और मछन्दर नाथ का भी स्मरण किया है। शुक के द्वारा जब पद्मावती के मिलन की आशा रत्नसेन को होती है, उस समय का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है:—

"चाँद मिलै कै दीन्हेसि आसा। सहसौ कला सूर परगासा।
लीन्हें सिधि साँसा मन मारा। गुरू मछन्दर नाथ सँभारा।
खोज लीन्ह सो सरग दुआरा। वज्र जो मूँदे जाय उघारा।

यौवन सौन्दर्य की अतृप्ति की अनन्तता पर जैसा विश्वास कवि विद्यापति ने व्यक्त किया है, सन्त जायसी की संमति भी उसके अनुरूप ही है:—

जहँ लगि चन्दन मलय गिरि औ सायर सब नीर।
सब मिलि आइ बुझावहीं, बुझै न आगि सरीर।

विद्यापति के कृष्ण का प्रेम दर्शन तथा साहचर्य की अनुरूपता के साथ होने के कारण सर्वथा विश्वसनीय है, पर जायसी के रत्नसेन का प्रेम अद्भुत है। हीरामन शुक जब रत्नसेन को पद्मावती के रूप सौन्दर्य की अपूर्वता का परिचय मात्र देता है, तभी रत्नसेन बेहोश हो जाते हैं:—

पुनि बरनौं का सुरँग कपोला। इक नारँग दुइ किए अमोला।
तेहि कपोल बाएँ तिल परा। जो तिल देख सा तिल-तिल जरा।
सुनतहि राजा गा मुरझाई। मानो लहरि सुरुज कै आई।

रत्नसेन जब पद्मावती का दर्शन मात्र करते है, उस समय का उनका दृश्य भी अद्भुत है:—

परा माति गोरख कर चेला। जिउ तन छाँड़ि सरग कहँ मेला,

भारत की पौराणिक-दृष्टि से जायसी सर्वथा अनभिज्ञ जैसे हैं, पर कवि विद्यापति तत्त्व-द्रष्टा आचार्य हैं। जायसी ने रत्नसेन और पद्मावती के विवाह को चन्द्रमा और सूर्य के विवाह के रूप मे दिखाया है, यह भारतीय प्रकृति-दर्शन की चरम अधोगति है, पर हठयोग की प्रतीकात्मक-समन्विति की दृष्टि से दृष्टिकूटो और उलट वाँसियो की भाँति इनकी सगति भी सभव है:—

"सुरुज चाँद सौ भूला, चाँद सुरुज कै रूप।"

कविवर विद्यापति में शृंगार के संयोग-पक्ष की जैसी कामशास्त्रानुरूप रजक-कल्पना के दृश्य मिलते हैं, जायसी की कला मे वैसी हृदयहारिणी चमत्कृति का घटना-चमत्कृति मे उलझ जाने के कारण अभाव ही जैसा है, पर विरह वर्णन मे रत्नसेन की विवाहिता पत्नी नागमती के द्वारा नारी-जीवन की बिवशता एवं अनन्यता के विश्वास का मार्मिक-प्रत्यक्ष होता है। शरीर की दुर्बलता और कृशता के साथ विरहिणी राधा की झाँकी जैसी विद्यापति जी की करुणा-वर्द्धिनी है, जायसी उसके चित्रण मे अनुरूप सहृदयता के साथ ही दिखाई देते हैं:—

"हाड़ भए सब किंगरी, नसैं भईं सब ताँत।"

ग्राम्यजीवन की अनुरूपता की प्रतीति जिस प्रकार विद्यापति ने कराई है, वैसी मर्मस्पर्शिता और दिव्यता तो जायसी मे नही है, पर सहृदयता इनकी भी हृदय-स्पर्शिनी ही है। प्रियतम के लगाए हुए बाग के आमो मे मंजरियो को देखकर नागमती का हृदय उद्विग्न हो रहा है :—

"आइ साह अमराव जो लाए।
फरे झरे पै गढ़ नहि आए।"

विरह-व्यजना की स्वाभाविकता और मर्मस्पर्शिता के लिए कविवर विद्यापति की भाँति बारह-मासे का दृश्य जायसी ने भी अकित किया है। आषाढ़ मास आता है। बेचारी नागमती उद्विग्न हो जाती है—

"चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा।
साजा बिरह, दुन्द दल बाजा।
धूम, साम, धौरे घन आए।
सेत धजा बग पाँति देखाए।
खड़ग बीज चमकै चहुँओरा।
बुन्द-बान बरिसहि चहुँ ओरा।

बाट असूझ अथाह गंभीरी ।
जिउ बाउर भा फिरै भँभीरी ।
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी ।
मोर नाव खेवक बिनु थाकी ।"

इसी प्रकार जेठ का महीना भी विरहिणी के लिए कम दुःखदायी नहीः—

"जेठ जरै जग चलै लुवारा। उठहि बवंडर परहिं अँगारा।
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ मरौ दुख-बाँधी।"

दुःखातिरेक से विक्षिप्त जैसी नागमती घर छोड कर रात्रि मे उपवनों मे रुदन करती घूमती है। पशु पक्षियो की निद्रा भग हो जाती है, वे घबरा उठते हैं:—

"फिरि फिरि रोव, कोइ नहि डोला। आधी रात विहंगम बोला।
तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी।

वह अपने जीवन की मरण-तुल्य-बिषमता का संदेश प्रिय के पास पहुंचाने के लिए पशु-पक्षियो की सहानुभूति-प्राप्ति की आकाङ्क्षा से कहती है—

पिउ सौं कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहि क धुआँ हम्ह लाग।

प्रकृति की उद्दीपनता का जायसी ने हृदयस्पर्शी प्रत्यक्ष कराया है। पर विद्यापति की विरहिणी राधा "सिव पूजए निज गेहा" की आराधना-मूर्त्ति भी है।

विद्यापति की कल्पना रंजनात्मक होते हुए भी रचनात्मक-पूर्णता की ज्योतिः परिणति है। वे अगाध पण्डित थे, जायसी पण्डितो के पीछे लगे रहने वाले। पर जायसी की रंजनात्मक कल्पना ऐश्वर्य माधुरी की अपूर्वता मे निःसंग ज्योति की परिणति की ही प्रतीति है। जीवन की क्षण-भंगुरता की असाधारण-चमत्कृति के साथ प्रतीति जायसी ने अपूर्व-कौशल से कराई है। कविवर विद्यापति जीवन प्रवाह की साधारणता और असाधारणता, क्षण-भंगुरता एवम् अमृतमयता के विश्व-जन-मोहक,दिव्य-स्वर की पूर्णता के युग प्रवर्त्तक गायक हैं। उनकी कला-भङ्गिमा रस की धारा बन कर अनन्त-वैचित्र्य से तरलित हुई है। वे सचमुच पीयूषवर्षी ही हैं। जायसी का विरह तो शलाका लेकर माँस को भी भूनता है। विरह सरागन्हि भूँजै माँसू।

काल आइ देखराई साँटी। उठि जिउ चला छोड़ि कै माटी।
काकर लोग कुटुम घर बारू। काकर अरथ-दरब संसारू।

इसी नश्वरता के रूप मे पद्मावती के अस्तित्व का अलाउद्दीन को बोध होता है:—

छार उठाइ लीन्ह इक मूँठी। दीन्ह उठाइ पिरथिमी झूठी।

जिन भगवान् भूतनाथ के ध्यान मे "कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ" की स्वर-लहरी मे स्नात हो कविवर विद्यापति दिव्य-विश्वास का अनुभव करते हैं, जायसी के रत्नसेन उनका इस प्रकार आतिथ्य करते हैं——

"अरे, मलिछ बिसवासी देवा।"

कविवर विद्यापति भगवान् शिव के मस्तक की चान्द्रमसी-ज्योति के रस को सर्वसुलभ करते है।

विद्यापति का नख-शिख वर्णन

बौद्ध तथा जैन-धर्म की वैराग्योन्मुख यथार्थ-दृष्टि ने एक ओर व्यक्ति की साधनात्मक गुरुता के समाज-निरपेक्ष आदर्श की प्रतिष्ठा मे योग दिया, दूसरी ओर रूप जगत के सहज आकर्षण की अबाध-निरकुशता का पथ प्रशस्त किया। एक ओर जीवन की चरम-निराशावादिता ने ऐकान्तिक शान्ति का साधनात्मक रूप धारण किया, दूसरी ओर आहार तथा मैथुन के भोगोन्माद का क्षयोन्मुख आवेश तीव्र गति से बढा। घृणामूलक सहस्रशः आवर्जनाओ के साथ ऐकान्तिक-साधना-सिद्धि के प्रति आसक्ति का क्षद्मभोग-व्यापार अनौचित्य की सीमा पार करने लगा। ऐसी ही अन्धकारमयी स्थिति मे यवन सैनिको ने देश पर विजय के गौरवाधिकार को प्राप्त किया। जिससे देश की स्थिति और अधिक दयनीय हो गई। नारी-शक्ति के प्रति परम्परागत-पौराणिक समादर भाव के लिये स्थान नहीं रह गया, क्योंकि विजेता मुसलमान लोग भी मजहबी अन्ध-विश्वास से क्रूर तथा नारी-शक्ति के प्रति नितान्त आस्थाशून्य ही थे। वे—'तिरिया भूमि खडग की चेरी'। जायसी को मानने वाले थे। देश की इस अचिकित्स्य दशा मे कविवर विद्यापति ने नारी और पुरुष के सहज राग की निसर्ग मधुर-सगीतमयी ध्वनि को झंकृत किया। जिससे सर्प जैसी क्रूर तथा हरिण जैसी चंचल चेतनाओ को भी मधुरतन्मयता का सुअवसर सुलभ हो सके और नारी के मधुर अस्तित्व के प्रति लोकजीवन को आस्थावान तथा उदार बनाया जा सके।

नारी के परिवर्तनशीलरूप वैभव मे उसके नख-शिख की रूप-सृष्टि मे भी इन महाकवि ने प्रतीकात्मक रूप से आध्यात्मिक-दिव्यता का सकेत किया है। नारी का स्तन ही दुग्धमय शिवरूप मे सृष्टि-सर्जना का मूल मंगल है। महाकवि विद्यापति ने अनेक अलंकारोकी महनीय-सुषमा के साथ उसकी झाँकी दिखा कर सहज राग की ज्योति से वैराग्य-बेसुध-समाज की आखो को खोल दिया है:—

अम्बर विघटु अकामिक कामिनि,
कर कुच झाँपु सुछन्दा।
कनक-संभु सम अनुपम सुन्दर,
दुइ पंकज दस चन्दा॥

अकस्मात् सुन्दरी का वस्त्र खिसक गया, शीघ्रतापूर्वक हाथो से ही दोनो स्तनो को उसने ढक लिया। वे दोनो स्तन सुवर्ण के शिव के समान विलक्षण तथा आकर्षक है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो दो कमलो को दस चन्द्रमा की प्रभाये घेरे हुयी हैं। अभिव्यक्ति का सौष्ठव देखने योग्य है। दो कमलो के सदृश दोनो स्तन और दस नख ही दस चन्द्रमा है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति का इस प्रकार एकत्र चमत्कार अन्यत्र दुर्लभ है। नायिका के गले मे गज मुक्ता की शोभा को देख कर कवि ने अपूर्व झाँकी उपस्थित की है:—

गिरिवर गरुअ पयोधर-परसित,
गिम गज मोतिक हारा।
काम कम्बु भरि कनक संभु परि,
ढारत सुरसरि धारा।

गले मे गज मुक्ता का हार पर्वत जैसे गभीर पयोधरों (स्तन) का स्पर्श कर रहा है। जान पड़ता है, कि कामदेव गगाजी के प्रवाह को ग्रीवारूप शख मे भर कर सुवर्ण के शिव पर डाल रहा है। कामदेव की यह मधुर-उपासना सर्वथाजनमन-संमोहिनी है। मानवती प्रेमिका की उदासीनता को दूर करने के लिये सखी उसमे शारीरिक सुषमा की विभूति का गौरव किस प्रकार जगा रही है। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विक विदुः—(गीता) के रूप मे रूप बिभूति के पुण्यदान का कितना आकर्षक प्रलोभन है:—

त्रिवलि तरंग सितासित संगम,
उरज संभु निरमान।
आरति पति मगइछ परतिग्रह,
करु धनि सरबस दान।

त्रिवलि के संगम मे गगा और यमुना (हार और रोमावली) का संगम हुआ है। वहीं कुच रूपी शंभु की भी स्थापना है। व्याकुल पति दान माँग रहा है। इसीलिये हे धन्या सुन्दरि! अपना सर्वस्व दान करो। कितना अपूर्व अवसर है, इससे लाभ उठाना चाहिये।

इस प्रकार कविवर विद्यापति ने नारी-स्तन की गरिमाका अनेक दृश्य अंकित कर जीवन की मधुर ऐश्वर्य-सृष्टि के प्रति युग-उदासीन-दृष्टि को खोलने के लिए आकर्षण प्रदान किया। जो राष्ट्र नारी की ऐश्वर्य-माधुरी के प्रति निरपेक्ष हो जाता है, वह अपने अभ्युदयोन्मुख सौभाग्य को खो देता है। नारी के अंग-प्रत्यंग के आकर्षण का दृश्य अंकित किये बिना सहज-राग-बेसुध जनजीवन में निःसंग-

सत्य की प्रतीति का होना भी उस समय असभव ही था। इसीलिये विद्यापति ने राग के परम भावावेश के भीतर से विराग की सूक्ष्म तन्मयता की प्रतीति जगाने के लिये नारी के मुख, नासिका, केश आदि के अनेक आकर्षक दृश्य अकित किए हैं। इनकी नारीरूप-कल्पना मे अद्भुत शक्ति हैं, जिसके सम्बन्ध मे इन्होने लिखा है किः—

जहाँ जहाँ पग-जुग धरई। तहिँ-तहिँ सरोरुह झरई।
जहाँ जहाँ झलकत अंग। तहि-तहि विजुरि तरंग।

मुख-सुषमा की अपूर्वता के अनेक दृश्य हैं, प्रभाव की सप्राणता सर्वत्र रक्षित हैः—

तोहर बदन सम चान होअथि नहिँ,
जइओ जतन विहि देला।
कए बेरि काटि बनाओल नव कय
तइओ तुलित नहि भेला।

मुख के साथ आँखो की अनुपम-छवि की ओर जब कवि की दृष्टि जाती है, वह गा उठता हैः—

सहजहि आनन सुन्दर रे
भौह सुरेखलि आँखि।
पंकज मधु पिबि मधुकर रे
उड़ए पसारलि पाँखि।

सुन्दर मुख पर अजन रंजित नेत्र मानो भौरे होकर कमल का रसपान करते हुए भी आकाश में उड़ जाने के लिए पंख फैलाए हुए हैं। इन अक्षय उल्लास से भरे नेत्रो की विवशता भी कितनी हृदय-बेधिनी हैः—

लोचन धाए फेधाएल
हरि नहिं आएल रे।
सिव-सिव जिवओ न जाए
आस अरुझाएल रे।

नारी के नेत्रो के जीवन-व्यापी प्रभुत्व को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया हैः—

तीन बान मदन तेजल तिन भुवने
अवधि रहल दओ बाने।

विधि बड़ दारुन बधए रसिक जन
सौपल तोहर नयाने ।

प्रायः रूढ-शास्त्रीय उपमानो का ही प्रयोग हुआ है, पर अभिव्यंजना-लालित्य मे सर्वत्र अभिनव वैचित्र्य भी है:—

(१) चिकुर गरए जलधारा ।
मेह बरिस जनु मोतिम हारा ।

(२) अलकहि तीतल तै अति शोभा ।
अलिकुल कमल बेढ़ल मधु लोभा ।

अधरो और दाँतो की शोभा भी सहज मनोहारिणी है:—

अधर बिम्ब सन दसन दाडिम विजु,

कटि की झाँकी भी दृश्य-कल्पना की अपूर्वता का ही प्रत्यय जगाती है, परपरानुरूप भी है:—

(१) गरु निम्ब भर चलए न पारए
माझ खानि खीनि निमाई ।
भागि जाइत मनसिज धरि राखल,
त्रिबलि लता अरुझाई ।

(२) केहरि सम कटि गुन अछि सजनि गे
लोचन अम्बुज धारि ।

जाँघ तथा चरण के साथ नारी के गति-विलास का भी इन्होने प्रत्यक्ष कराया है:—

(१) विपरित कनक कदलि तर शोभित
थल पंकज के रूप रे ।

(२) कमल जुगल पर चाँद क माला ।

(३) तखन मदन सर पूरए रे
गति गंजए गजराज ।

नारी और पुरुष - दोनो के नख-शिख का जैसा रसमय सत्प्रभावापन्न दर्शन आदिकाव्य रामायण मे मिलता है, वह सर्वथा अनुपम तथा अनुकरणीय है । पर उत्तर काल मे पुरुष के ओजः संकल्पमय रूप की उपेक्षा बढती गई और नारी की नख शिख माधुरी को महत्ता मिलती गई । आंगिक-सौन्दर्य वैशिष्ट्य

से समष्टि-नारी-मूर्त्ति की सांकेतिक अभिव्यक्ति बढने लगी। करभोरु, वामोरू, सुजघना आदि शब्द संस्कृत भाषा मे चलने लगे। कविवर विद्यापति ने संस्कृत की उत्तर कालिक काव्यपरम्परा का प्रवर्त्तनात्मक प्रतिनिधित्व किया है। कात्तिलता मे जौनपुर की बनिनियो और वेश्याओ का चित्र अङ्कित करने में कवि की रसमयी कल्पना की प्रबुद्धता का पूरा परिचय मिलता है। यद्यपि इसमे प्रधानता पौरुष की ही है। पदावली मे पुरुष की मधुर दिव्य, प्रभावपूर्ण सुछवि का ही दर्शन मिलता है, पर नारी के बाहर और भीतर की झाँकी नारी-कल्पना-सृष्टि की समष्टि-परम्परा के प्रवर्तनात्मक-प्रतिनित्व के साथ सर्वथा अपूर्व भी है। सृष्टि मे समष्टि-आकर्षण की प्रतीति कवि मे होती है, और अपनी प्रेषणीयता की निरुपमता द्वारा इसी को समष्टि मे वह उद्बुद्ध भी करता है। इस प्रकार उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति बन जाती है। विद्यापति मे जहाँ रूप की अनुत्तमता है, वहीं हृदय की अनन्याशक्ति और आत्मा का आनन्द भी है। इसलिए इनके नख-शिख को वासना-पङ्किल-कवियो की श्रेणी मे रखकर कृतार्थता प्राप्त करना उचित नही।

———

भाषा-सौष्ठव

भाषा की ऐतिहासिक-परम्परा और प्रकृति पर विचार करने से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है, कि विद्यापति ने जिस मैथिली-भाषा को कला की युगान्तर शक्ति प्रदान की है। वह यद्यपि अनेक भाषा तत्वज्ञो की दृष्टि से बहिर्वर्ती परिवार की है। पर सास्कृतिक सन्निकर्ष की दृष्टि से मैथिली बिहारी की एक बोली है, जिसका सम्बन्ध अपनी सहचरी भोजपुरिया से उतना नही है, जितना अर्ध-मागधी की अभिनव-परिणति, पूर्वी हिन्दी अथवा अवधी से है। अर्ध-मागधी अपने मागधी रूप को सँभाले हुए भी बहुत अंशो मे शौरसेनी से प्रभावित है। पर दैशिक-भाषा-प्रवाह की अनुरूपता उसकी अपनी विशेषता है। ऐसी ही स्थिति मैथिली की भी है, वह मागधी की सस्कृत-निष्ठता की अनन्यानुवर्त्तिनी नही हैं। जिस प्रकार बगला सस्कृत के प्रति अधिक आसक्ति रखती है, मैथिली की स्थिति वैसी नही है। उसे सस्कृत के प्रति प्रेरणा अर्ध-मागधी की शौरसेनी-निष्ठता से ही उपलब्ध होती है। इसीलिये बग-भाषा के सहृदयो का विद्यापति को बंग भाषा के क्षेत्र मे ले जाना अनधिकार-प्रयत्न ही प्रतीत होता है। मैथिली भाषा को यदि पूर्वी हिन्दी के निकट देखना चाहे तो देख भी सकते है। सामान्यभूत मे "हरल", कहल, सुनल, 'राखल' आदि लकारान्त प्रयोग पूर्वी हिन्दी के मेल को सूचित करते हैं। पूर्वी हिन्दी का "अइ" और "अय" मैथिली मे 'अइ' और "अय के रूप मे मिलता है:—

"निरजन उरज हेरइ कत बेर।" (विद्या०)
"अंगद चरण टरइ नहि टारे।" (तुलसीदास)

मूल धातु के साथ "ब" लगाने से वर्तमान और भविष्य के रूप बनते हैं :—

"माधव, कत परबोधब राधा।" (विद्या०)
"भाषा बद्ध करब मै सोई।" (तुलसीदास)

पदादि मे 'य' के स्थान मे "ज" का उच्चारण दोनो मे मिलता है। इसी प्रकार 'क्ष' का 'ख' या 'क्ख' प्रयोग भी दोनों मे प्राप्त है।

"जेहि खन हुन मन जाएब चितब,
हमहुँ मरब धसि आगी।" (विद्या०)

"जेहि खन राम सम्भु धनु तोरा" (तुलसीदास)

विभक्तियो, सर्वनामो और क्रियाओ के रूप मे भी पूर्वी हिन्दी से मैथिली का समुचित मेल है। सबन्ध कारक के लिए क, कर, कॉ, केर तथा संप्रदान मे 'के लिए' के अर्थ मे "लागि" का प्रयोग विद्यापति मे स्पष्ट मिलता है। जो पूर्वी हिन्दी मे भी प्राप्त होता है।

बचन क चातुरि लहु-लहु हास।
सुनल कठिन पण कामिनि केर।
मनमथ कॉ साधन नहि आन।
रूप लागि मन धाओल रे। (विद्या०)
तो नीको तुलसीक। (तुलसीदास)
नृपन केरि आसा-निसि नासी।
सो मम हित लागी जन अनुरागी। (तु०)

पूर्वी मे मूल-धातु का अकारान्त रूप वर्त्तमान और भूत दोनो कालों में प्रयुक्त होता है और यह विशेषता मैथिली मे भी मिलती है:—

तावे से आदर कर सॅग साथ। (विद्या०)
पिबि कहुँ तम जनि बम नव तारा। ,,
निकट न आव, मरम सो जाना। (तु०)
छुवतहिं टूट पिनाक पुराना। (तु०)

क्रिया के विधि-रूप मे भी मैथिली हिन्दी के निकट है:—

करु अभिलाख मनहि पद पंकज—
अहोनिसि कोर अगोरि।

'अगोरि' मे पूर्वकालिक-क्रिया हिन्दी के अनुरूप है। पूर्वी हिन्दी मे "पारना" शब्द का प्रयोग 'सकना' के अर्थ मे तथा 'मेलना' का प्रयोग 'डालना' या छोडना के अर्थ मे मैथिली जैसा ही मिलता है। 'कोर' अहिवात' आदि शब्द मैथिली की भॉति हिन्दी मे भी चलते आ रहे हैं। विभक्तियो मे भी पूर्वी हिन्दी से मैथिली की एकरूपता ही मिलती हैं। अधिकरण मे हि, अहि, महि के साथ कर्म मे के, ए, ऐ का प्रयोग दोनो भाषाओ मे हुआ है। सर्वनाम के रूप भी मैथिली और हिन्दी के प्रायः एक ही हैं। इतना ही नही आधुनिक-युग की चलती हिन्दी मे विद्यापति की भॉति ही उत्तम-पुरुष, मध्यम-पुरुष, अन्य-

पुरुष, कारक, सर्वनाम आदि का दृश्य दिखाई देता है। 'जनु' और 'जनि का प्रयोग 'नही' और 'मानो, के अर्थ मे विद्यापति ने किया है। भाषा की प्राण-वत्ता पर यदि विचार किया जाये और उसके अप्रतिम-सौन्दर्य-व्यञ्जक आलोक पर यदि दृष्टि डाली जाये, तो वह अपने वक्तव्य से भिन्न नही होती है:—

गिरा अर्थ जल बीचि सम,
कहियत भिन्न न भिन्न। (तुलसी)

विद्यापतिजी को अपनी भाषा की सौन्दर्य-शक्ति के अपूर्व-आकर्षण पर जैसा विश्वास है, जिसे उन्होंने अपनी 'कीर्तिलता' की रचना के समय अवगत भी कराया है। भावोत्तेजनतावर्द्धिनी-मर्मोक्तियो और मर्म-दृश्यो से उनकी भाषा सहृदय-हृदय को सहज ही विमुग्ध करने मे समर्थ है। इसमे कोई सन्देह नही, कि ये एक ऐसे सौभाग्यशाली कवि है, जिन्हे बग-भाषा के विद्वान अपनी भाषा की विभूति मानने मे गौरव का अनुभव करते हैं। मैथिली भाषा के विद्वान अपनी सीमा में ही उन्हे घेर कर अपार सुख का अनुभव करना चाहते हैं, पर विद्यापति सब प्रकार से हिन्दी से मिले हुये उसके अपने हैं। हिन्दी उन्हे आदि-कवि का गौरव देती है। विद्यापति जी ने जन-भाषा के हृदय को अपनी रचनाओं मे अनुपम मुहावरो का प्रयोग कर भर दिया है। मुहावरे एक प्रकार से भाषा की रूढ़-लाक्षणिक शक्ति होते हैं। इनमे परम्परा से सञ्चित भावो की सम्पत्ति सुरक्षित होकर वितरित होती रहती है। विद्यापति ने 'कीर्तिलता' और पदावली 'दोनो मे ही' भाषा की जन-जीवन के साथ एकरसता का प्रत्यय दिया है। मुहावरो की भॉति जन-जीवन के प्रतिनिधित्व का परिचय कवि-प्रयुक्त लोकोक्तियो से भली-भॉति मिल जाता है। इससे लोकभाषा पर विद्यापति के अप्रतिम-अधिकार की प्रतीति होती है। उदाहरण के लिए देखा जा सकता है:—

भौंर भरे मॉजरि न भॉगे। (मुहा०)
कुदिना हित जन अनहित रे
थिक जगत सुभाव। (लोको०)
लाभक लागि मूल डुबि गेल।
बानर कठ कि मोतिम माल। " "
कड़हु भुखल नहि दुहु कर खाए।
धनिक क आदर सब कहँ होय।
निरधन वापुर पुछए न कोय।

कविवर सूरदास जी की गोपियाँ भी अपने हृदय की व्यथा को व्यक्त करने के लिए लोकोक्तियों का खूब प्रयोग करती है। कविवर सूरदास जी को महाकवि विद्यापति के द्वारा ही इस कला-कौशल की प्रेरणा मिली है। विद्यापति की लोकोक्तियो का भी प्रयोग करने वाली सहृदया नारी की मर्म वेदना ही है। इनकी पदावली मे इनकी संस्कृत-रुचि का मिलन मैथिली की चरम-ऐश्वर्य-विभूति बन गया है। सस्कृत की कोमल-कान्त-ध्वनि मैथिली की "देशिल बअना" मे मिल कर उसके प्रभाव-वृद्धि मे सर्वत्र सहायक हुई है।

जहाँ भावना की तीव्रता है, वहाँ विद्यापति की भाषा और उनकी राग-स्वर-धारा लोक-जीवन की अभिन्न सहचरी बनती दिखाई देती है। उक्तियों की अनुपम चमत्कृति से अभिव्यजना की प्रभाव-वृद्धि का लाभ सभी महाकवियो ने उठाया है। विद्यापति ने तो अपने को काव्य-कला का मर्मज्ञ कहा है। गेय-शक्ति का अतुल आकर्षण उनकी "अभिनव जयदेव" नामक उपाधि से भली भाँति मिल जाता है। अलंकारो की साम्य-मूलक योजना काव्य मे सर्वत्र अपनी अनुपम चमत्कृति का परिचय देती है। सूत्र शैली मे चरम-सार्थकता रखने वाली नितान्त समर्थ भाषा का विद्यापति ने आविष्कार किया हैः—

तेल-बिन्दु जैसे पानि पसारिए
ऐसन मोर अनुराग।
सिकता जल जैसे छनहि सूखए
तैसन मोर सुहाग।

नारी की रूप-माधुरी सहज-अनुपम षोडशी की भाँति सजीव चित्रमयता के साथ सर्वत्र परिलक्षित होती है। अनेक अलकार जैसे भाषा-सुन्दरी के नख-शिख को आभूषित करते, उसकी शोभा बढ़ाते मिलते हैं।

प्रकृति की दृश्यात्मक-योजना द्वारा नारी और पुरुष के रति-व्यापार का प्रत्यक्ष कराने मे इनकी अन्योक्ति का चमत्कार दर्शनीय है। आधुनिक छायावादी कवियो से किसी प्रकार न्यून आकर्षण इसमे नही मिलेगा—

तड़ितलता तल जलद समारल
आंतर सुरसरि धारा।
तरल तिमिर ससि सूर गरासल
चौदिसि खसि पड़ु तारा।

यह विपरीत रति का दृश्य है। विद्युत लता राधा हैं, और मेघ कृष्ण हैं।

मध्य मे पडे हुए राधा के गले का हार ही गगा जी की धारा है। चंचल अन्धकार केश-कलाप हैं। जिसने चन्द्रमा और सूर्य-स्वरूप मुख तथा सिन्दुर-विन्दु को ढँक लिया है। चारो ओर खिसक कर गिरे हुए तारागण केश मे गूँथे हुए पुष्प हैं।

नायिका जल लेने के व्याज से घड़ा लेकर प्रिय के दर्शन का सुअवसर प्राप्त करने के लिए गई है। जब वह घडे को रास्ते मे खोकर अभीष्ठ-पूर्त्ति के बाद लौटी, तब सखी उससे कूट की भाषा मे पूछ रही है:—

जाहि लागि गेलि हे, ताहि कहाँ लइलि हे।
ता पति वैरि पितु काहाँ।

यहाँ जल के स्वामी समुद्र के शत्रु-अगस्त्य के पिता घट के सबन्ध मे उसका प्रश्न है। इस कूट-प्रश्न का उत्तर भी वह कूट की भाषा मे ही देती है:—

संकर-वाहन खेड़ि खेलाइल,
मेदिन-वाहन आगे।
गे सब अछलि सँग से सब चललि भँग
उबरि अएलहुँ अति भागे।

यहाँ शंकर के वाहन (बैल) के खदेडने और मेदिनी-वाहन (सर्प) के सामने उपस्थित हो जाने के कारण वह अपने बच कर आ जाने का सौभाग्य प्रकट कर रही है। इसी प्रकार सखी ने सोलह सहस्र-प्रेमिकाओ के मध्य श्रीकृष्ण राधा के लिए किस प्रकार व्याकुल है, इसका परिचय कूट की भाषा मे इस प्रकार दिया है:—

पाँच पाँच दस गुन चौगुन,
आठ दुगुन सखि माझे।
विद्यापति कह आकुल तो विनु,
विषाद न पावसि लाजे।

ऐसे कूट पदो की परम्परा पहले से चली आ रही थी। सस्कृत के अनेक कवियों की स्फुट-रचनायें इस प्रकार की मिलती हैं। विद्यापति ने कला-कौशल दिखाने के लिए इस प्रकार की अधिक रचनाये नही की हैं। परिपाटी का निर्वाह मात्र किया है।

विद्यापति ने प्रस्तुत की प्रभाव-वृद्धि के लिए जिन अप्रस्तुओ का प्रयोग किया है। उनमे अधिकाश परम्पराबद्ध और रूढ़ हैं, पर कवि की कल्पना की अपूर्वता-ने उनमे सर्वथा अभिनव-चमत्कृति भर दी है। सूरदासजी की

भाँति एक प्रस्तुत के साथ अनेक अप्रस्तुतो का विधान इन्हो ने नही किया है। यद्यपि ये मानव-स्वभाव के कवि हैं, पर नारी सौन्दर्य-वर्णना मे इनकी प्रतिभा का चरम चमत्कार दिखाई देता है। भाषा की ऐश्वर्य-वृद्धि के लिए इन्होने साम्य-मूलक अलकारो का ही प्रधान रूप से प्रयोग किया है। सभी अलंकार भावो का उत्कर्ष दिखाने तथा वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का तीव्र-अनुभव कराने मे सहायक हैं। वर्ण्य-विषय के साथ उनका अभिन्न-मिलन हुआ है। रूपक, उपमा, विभावना, पर्यायोक्ति, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति आदि का प्रयोग भावोत्कर्ष-विधायकता मे पूर्ण समर्थ है। रूपसृष्टि की अपूर्वता की प्रतीति के लिए रूपकातिशयोक्ति, निदर्शना आदि से सहायता मिली है। व्यतिरेक, संदेह, भ्रम आदि से गुणात्मक-अनुभव के प्रभाव मे वृद्धि हुई है। राधा के सौन्दर्य का रूपकातिशयोक्ति, यमक, उपमा, रूपक की ससृष्टि के साथ जो दृश्य-दर्शन कराया है, वैसी ही व्यजना सूरदास ने भी की है, पर विद्यापति जैसी चमत्कृति की अपूर्वता सूर मे नही है। विद्यापति ने यौवन के सहज-उन्मेष का हृदयस्पर्शी प्रत्यक्ष कराया है:—

पल्लव-राज-चरन-जुग सोभित,
गति राजराज क भाने।
कनक-कदलि पर सिंह समारल,
तापर मेरु समाने।
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल
नाल विना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बह सुरसरि
तओ गहि कमल सुखाई।
अधर बिब सन, दसन दाड़िम बिजु,
रवि ससि उगथिक पासे।
राहु दूर बस नियरो न आवथि,
तैं नहि करथि गरासे।

क्रम, श्लेष, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक की ससृष्टि रूप-माधुरी की अनुमत्तता का कितना मार्मिक प्रत्यक्ष करा रही है:—

कि आरे! नव यौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा।
हरिन इंदु अरविंद करिनि हेम

पिक बूझल अनुमानी ।
नयन बदन परिमल गति तनरुचि
अओ अति सुललित बानी ।
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हरा ।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि उगल
चाँद बिहिनु सब तारा ।
लोल कपोल ललित मनि कुंडल
अधर विंव अध जाई ।
भौंह भ्रमर नासापुट सुन्दर,
से देखि कीर लजाई ।

इसी प्रकार यहाँ अपह्नुति की चमत्कृति नारी-सुछवि की निरुपमता के साथ कितनी मनोहारिणी है:—

विभूति-भूषन नहि चानन क रेनू ।
बघछल नहि मोरा नेतक बसनू ।
नहि मोरा जटा भार चिकुर क बेनी ।
सुरसरि नहि मोरा कुसुम क स्रेनी ,
चाँद क विन्दु मोरा नहि इन्दु छोटा ।
ललाट पावक नहिं सिन्दुर क फोटा ।
नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु ।
फनपति नहिं मोरा मुकुता हारु ।
भनहि विद्यापति सुन देव कामा ।
एक पए दूखन नाम मोरा बामा ।

विरहिणी की आत्म-विस्मृति-कारिणी वेदना का यहाँ पूर्ण प्रत्यक्ष हो रहा है । उत्प्रेक्षाये सर्वत्र सम्भव-सत्य के साथ व्यक्तव्य को प्रभाव-शाली बना देती हैं:—

आज देखल धनि जाइत रे,
मोहि उपजल रंग ।
कनकलता जनि संचर रे,
महि निर अबलंब ।

इस प्रकार भावना की तन्मयता मे ही कवि कल्पना अपने सच्चे स्वरूप का प्रत्यक्ष कराती मिलती है ।

जीवन-परिचय

मिथिला भारत के ऐतिहासिक-गौरव तथा आत्मतत्त्व-बोध की अक्षय गौरव ज्योति है। नारी-शक्ति की चरमाराध्य ज्योति स्वरूपा मैथिली की यह शैशव-लीला-भूमि है। राजर्षि जनक और जानकी के चरित ने यहाँ के कण-कण मे लोक-मगल-कारिणी मुक्त-ज्योति का सनातन-आकर्षण भर दिया है। इतिहास समुज्वल कारिणी इस भूमि मे विद्या का अविजेय आलोक निर्झर अप्रतिहतगति से बहता आ रहा है।

कविवर विद्यापति के जीवन-काल मे भी यहाँ सस्कृत के पाण्डित्य का समुद्र उमड रहा था। कपिलेश्वर महादेव की आराधना के पश्चात् गणपति ठाकुर ने विद्यापति जैसे पुत्र-रत्न को प्राप्त किया था। इनके विद्याध्ययन का सौभाग्य भी सुप्रसिद्ध विद्वान् हरिमिश्र से सुलभ हुआ। मिथिला के प्रसिद्ध तार्किक पक्षधर मिश्र विद्यापति के सहाध्यायी थे। ऐसे सुअवसर मे विद्यापति को संस्कृत के प्रकाण्ड-पाण्डित्य-प्राप्ति की पूरी अनुकूलता मिल गई।

विद्यापति को अपनी विद्या और प्रतिभा का संमान अपने जीवन में ही प्राप्त होने लगा था, इनकी रचना-शक्ति पर मुग्ध होकर अनेक सहृदयो ने इन्हे अनेक उपाधियो से मंडित तथा सम्मानित किया है। अभिनव जयदेव, महाराज पण्डित सुकवि-कंठहार, राज-पण्डित, खेलन-कवि, सरस-कवि, कविरत्न, नव कवि शेखर आदि अनेक उपाधियो से विद्यापति के नाम को मण्डित देख कर इनकी प्रख्यात कीर्ति का पूर्ण परिचय मिल जाता है।

विद्यापति की प्रतिभा के आलोक ने अनेक व्यक्तियो के नामो को चिरस्मरणीय आकर्षण प्रदान कर दिया है। शिवसिह, कीर्त्तिसिह, देवीसिह, पुरादित्य, भवसिह, भैरवसिह, चन्द्रसिह आदि पुरुषो के नाम यदि इनकी रचनाओ मे मिलते हैं, तो लखिमादेवी, रूपिणीदेवी, जयमति, मोदवती, सोनमती, चन्द्लदेवी, चम्पति, सोरमदेवी, मेधादेवी आदि देवियो को भी इन्होंने आयुष्मती बनाया है। इनकी आत्मीयता की सहृदयता हिन्दुत्व की सीमा से अवरुद्ध नही है। मुसलमान सहृदयो को भी इन्होने अपने हृदय की संस्तुति प्रदान की है—

महलम जुगपति चिरजिव जिवथु,
'ग्यासदीन' सुरतान।
विद्यापति कवि रभसे गाव,
मालिक बहारदिन बुझ ई भाव।

विद्यापति की सासारिक-जीवन-लीला की तिथियो का निर्भ्रान्त-निर्णय कठिन ज्ञात होता है, इनका जन्म दरभंगा जिले के बेनीपट्टी थाने के अन्तर्गत 'बिसपी' गॉव मे हुआ था। शिवसिह जनश्रुति के अनुसार पचास वर्ष की अवस्था मे राजगद्दी के अधिकारी हुए। कुछ अवस्था मे विद्यापति उनसे बडे थे। यदि शिवसिंह २९३ लक्ष्मणाब्द अर्थात् सन् १४२२ मे गद्दी पर बैठे, तो उससे ५२ वर्ष पहले सन् १३७० ई० मे विद्यापति के जन्म का अनुमान किया जा सकता है। इनके तीन पुत्र थे, वाचस्पति, हरपति और नरपति। एक कन्या भी कही जाती है, जिसका नाम दुलही था। हरपति ठाकुर विद्वान् थे। 'दैवज्ञ-बान्धव' नामक इनका ज्योतिष का ग्रन्थ लिखा कहा जाता है। मैथिली मे भी इनकी ललित कवितायें मिलती है। इनकी पुत्र वधू चन्द्रकला ने संस्कृत और मैथिली मिश्रित भाषा मे रचनाये लिखी है। जिसकी ओर सकेत लोचन कवि ने 'राजतरगिणी'' मे किया है। उदाहरण के लिए कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैः–

अति रूप यौवन प्रथम संभव किं वृथा कथया प्रिये।
तेजह रूप विमोह परिहर शोक चिंतित चिन्तये।
उपयात मदन व्याधि दुस्सह दहए पावक सेवनम्।
पवन दिसें-दिसें दहए पावक युग्म दारजमम्बरम्।

महाकवि के मृत्यु के सबन्ध मे ऐसी प्रसिद्धि हैः—

विद्यापति क आयु अवसान। कातिक धवल त्रयोदसि जान।

ऐतिहासिक-दृष्टि से विद्यापति के आश्रयदाताओ मे सबसे अन्तिम भैरवसिह दिखाई देते हैं। "दुर्गा-भक्ति–तरंगिणी" की रचना इन्होने इन्ही के समय मे की है। ३२७ लक्ष्मणाब्द तक धीरसिह राज्य करते थे। उसके पश्चात् भैरवसिंह सिहासनासीन हुए। इससे जान पडता है, कि सन् १४४६ के बाद ही महाकवि की मृत्यु हुई होगी। इसके पश्चात् कही कोई चर्चा नही मिलती है।

विद्यापति शिव के अनन्य उपासक थे। इनकी शिवभक्ति के सबंध मे ऐसी जनश्रुति है, कि उगना या उदना नाम का इनका एक सेवक था। जिसे साथ लेकर ये बाहर किसी गॉव को जा रहे थे। मार्ग मे इन्हे प्यास लगी। उगना से इन्होने पानी लाने के लिए कहा। जङ्गल में कहीं पानी मिलना कठिन था। उगना रूप मे साक्षात् शिव थे। अतः उगना ने जटा से गङ्गा-जल लाकर विद्यापति को दिया। स्वाद से विद्यापति को जब गङ्गा जल का अनुभव हुआ, तब उन्होने उगना से पूछा। उगना ने सच्ची बात कह दी और कहा, जब तक इस समाचार को छिपा रखोगे, तब तक मै साथ रहूँगा। एक दिन

किसी काम मे विलम्ब होने पर जब विद्यापति की पत्नी उगना को मारने के लिए दौड़ीं, तब अकस्मात् यह बात प्रकट हो गई। विद्यापति ने कहा, साक्षात् शिव पर प्रहार करने जा रही हैं? फलस्वरूप उगना अन्तर्धान हो गया। विद्यापति इस घटना से अत्यन्त उद्विग्न हो गए और उनके हृदय-की वीणा से यह स्वर झंकृत होने लगा—

उगना रे मोर कतए गेला।
कतए गेला सिव कीदहु भेला।
भाँग नहि बटुआ रुसि वैसलाह।
जोहि हेरि आनि देल हँसि उठलाह।
जे मोर कहना उगना उदेस।
ताहि देबओ कर कँगना बेस।

\+ + + +

विद्यापति भन उगना सों काज।
नहि हितकर मोर त्रिभुवन राज।

इस प्रकार के कई पद मिलते हैं। इसी प्रकार गंगाजी की भक्ति के संबंध मे किवदंती मिलती है। मृत्यु का समय निकट जान कर विद्यापति गगातट पर शरीर त्यागने के संकल्प से पालकी पर बैठकर समीप पहुचे, तब पालकी वही रखवा दी और कहने लगे कि गङ्गाजी को पाने के लिए मै इतनी दूर आया, तो मुझे लेने के लिए क्या गगाजी इतनी दूर (दो कोश) भी नहीं आएँगी। उसी रात बाढ़ आई और गंगाजी की धारा विद्यापति के पास होकर बहने लगी। विद्यापति ने कार्त्तिक शुक्ला त्रयोदशी को वही स्वर्गीय-आतिथ्य के लिए संसार से प्रस्थान किया। इन किवदतियों से विद्यापति की भक्ति-निष्ठा की सत्यता का आभास मिलता है।

विद्यापति की अदृष्ट-दर्शन-शक्ति के सम्बन्ध मे भी इस प्रकार जन-श्रुति मिलती है। एक बार शिव सिंह ने पिता के राज्य काल मे दिल्ली के बादशाह को कर देना बन्द कर दिया। इसलिए वे विद्रोही समझे जाने के कारण दिल्ली में बन्दी बना लिए गए। विद्यापति उन्हे छुडाने के लिए दिल्ली पहुँचे। बादशाह से इन्होंने अनदेखी वस्तु का वर्णन करने की अपनी शक्ति का परिचय दिया। परीक्षा के लिए बादशाह ने एक काठ के सन्दूक मे विद्यापति को बन्द कर कुएँ मे लटकवा दिया और ऊपर एक सुन्दरी स्त्री आग फूँकती हुई खडी

की गई। इनसे कहा गया, ऊपर के दृश्य का वर्णन करो। संदूक के भीतर से गाने लगे—

> सजनी, निहुरि फुकु आगि।
> तोहर कमल भमर मोर देखल,
> मदन ऊठल जागि।
> जो तोहे भामिनि भवन जएबह,
> ऐबह कोनह बेला।
> जो ए संकट सौ जी बाँचत,
> होयत लोचन मेला।

बादशाह सन्तुष्ट हो गया और उसकी आज्ञा से शिवसिंह मुक्त कर दिए गये। इससे विद्यापति की अद्भुत-प्रतिभा का रोचक संकेत मिल रहा है।

प्रमुख आश्रय-दाता

यद्यपि कबिवर विद्यापति ने अपने जीवन काल के अनेक आश्रयदाताओ की सस्तुति की है, पर इनकी रागात्मक निष्ठा की सर्वाधिक मनोहारिणी प्रतीति शिव सिह और लखिमा देवी के नामोल्लेख से अन्वित है। अपने काव्य-रस का इन्हे महाकवि ने भावक माना है। निश्चय ही शिव सिह काव्य-रस के सच्चे ग्राहक जान पडते है। इनकी दान शीलता की अनेक कहानियो की प्रसिद्धि मिथिला मे अभीतक बनी हुई है। पिता का तुलादान कराया, अनेक तालाब खुदवाये। मधुवनी से दक्षिण "पतौल" मे इनका खुदवाया तालाब है, जिसकी स्मृति के साथ ऐसी लोकोक्ति बन गई है:—

पोखरि रजो खरि और सब पोखरा।
राजा सिवसिंह और सब छोकरा।

युवराज के रूप मे काम करते हुए भी शिवसिह को प्रजा अपना राजा समझती थी और "महाराज" कहती थी। इनकी अभिरुचि के अनुरूप महाकवि ने "कीर्त्ति पताका" एवम् "पुरुषपरीक्षा" का प्रणयन किया है। राज्योपलब्धि के तीन वर्ष बाद इन्हे पराजय का बदला चुकाने के लिए नितान्त उग्र सन्नद्ध यवन-सेना के घेरे मे घिर कर पराजित होना पड़ा। कुछ लोग युद्ध मे मारे जाने तथा कुछ लोग नैपाल के जंगल मे चले जाने की पुष्टि करते हैं।

लखिमा देवी संस्कृत भाषा की मर्मज्ञ विदुषी महिला थी। इनके गुण ही इनकी पट्टरानी होने मे प्राण हैं। इनकी रचित संस्कृत भाषा की कविताएँ मिथिला मे इधर-उधर सुनाई देती हैं। एक पनिहारिन और पथिक के सवाद की यह झाँकी देखी जा सकती हैं। पथिक कह रहा है—

कि मां हि पश्यसि घटेन कटिस्थितेन
वक्रेण चारु-परिमीलित लोचनेन।
अन्यं हि पश्य पुरुषं तव कार्य योग्यं
नाहं घटांकित-कटी प्रमदां स्पृशामि।

इसके पश्चात् पनिहारिन का यह प्रत्युत्तर कितना मार्मिक है—

सत्यं ब्रवीमि मकरध्वजवाणमुग्ध
नाहं त्वदर्थे मनसा परिचिन्तयामि।

दासोऽद्य मे विघटितस्तव तुल्यरूपः
स त्वं भवेन्नहि भवेदिति मे वितर्कः।

चक्रवाकी के विरह की यह कारुणिक व्यंजना कितनी हृदय-स्पर्शी है —

आवेपते भ्रमति सर्प्पति मोहमेति
कान्तं विलोकयति कूजति दीन रूपम्।
अस्ते हि भानुमधिगच्छति चक्रवाकी
हा! जीवितेरपि वरं मरणं वियोगे।

काव्य-रुचि की इसी सहृदयता के कारण विद्यापति ने लखिमा देवी को बार-बार स्मरण किया है। यद्यपि कविने भोगेश्वर, देवसिह आदि कई राजाओ का नाम दिया है, पर उनकी प्रशस्ति मे अपनी कल्पना की मौलिकता और अपूर्वता को कही दबने नही दिया है। अन्य राजाश्रित-कवियो की भॉति आश्रय दाताओ की चाटुकारिता मे ही अपनी प्रतिभा का अपव्यय इन्होने नहीं होने दिया है। सामान्य-जन-जीवन के मनोरजन और सन्मार्ग-दर्शन की सक्रियता सर्वथा स्तुत्य है।

उपासना की दृष्टि से इनमे साम्प्रदायिकता बिलकुल नही है। स्मार्त गृहस्थ की भॉति सभी देवी-देवताओ के प्रति इनमे आस्था मिलती है। शिव और विष्णु दोनों की अभिन्नता पर इनका पूर्ण विश्वास है:—

एक सरीर लेल दुइ बास।
खन बैकुठ खनहि कैलास।
भनइ विद्यापति विपरीत बानि।
ओ नारायन ओ सूलपानि।

विलास-कल्पना की सासारिक-अनुरूपता मे यौवन के क्षणो को दे देने के कारण इन्हे वृद्धावस्था मे आत्मग्लानि हुई है:—

जाबत जनम नहि तुअ पद सेविनु
जुबती मतिमयँ मेलि।
अमृत तजि हलाहल किए पीअल
सम्पद अपदहि भेलि।

रचनाएँ—प्रतिनिधि-काव्य-रचना "कीर्ति लता" और "पदावली" के अतिरिक्त संस्कृत, अवहट्ठ तथा देशी भाषा मैथिली मे अनेक रचनाये इनकी लिखी हुई मिलती हैं। संस्कृत रचनाओ का परिचय इस प्रकार प्राप्त होता है—

भू-परिक्रमा—की रचना राजा देवसिह की आज्ञा से हुई है। इसमे शाप-ग्रस्त बलराम जी के तीर्थ भ्रमण के रूप मे कवि के भौगोलिक ज्ञान का परिचय मिलता है। तीर्थाटन के पश्चात् मिथिला मे आने पर अनेक नैतिक-शिक्षा से भरी उन्हे कहानियाँ सुनाई गई हैं।

पुरुष-परीक्षा—का प्रणयन राजा शिवसिह की अनुमति से हुआ है। एक प्रकार से यह "भू-परिक्रमा" का ही परिवर्द्धित रूप है। इसके निर्माण के समय महाकवि के हृदय और बुद्धि का पूर्ण विकास दिखाई देता है। इसमे श्रृंगार की रजक कल्पना के साथ धार्मिक तथा राजनैतिक विषयो पर प्रकाश डाला-गया है। इसका अंग्रेजी मे अनुवाद १८३० ई० मे हुआ। फोर्ट विलियम कालेज मे पाठ्य-पुस्तक के रूप मे इसे स्वीकृति मिली थी। बुद्धिजीवियो मे इसे पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है।

लिखनावली—की रचना बनैली के राजा पुरादित्य की अनुमति से २९९ लक्ष्मणाब्द मे हुई। इसमे सस्कृत भाषा मे पत्र-व्यवहार की विधि का निरूपण हुआ है।

विभाग-सार—का निर्माण राजा शिवसिह के चचेरे भाई महाराज नरसिह देव के आदेश से हुआ है। सपत्ति के बटवारे की विधि का इसमे वर्णन है। इसके द्वारा उस युग की मिथिला की सामाजिक दशा का भी परिचय मिलता है।

वर्ष-कृत्य—मे द्वादश-मास के मगल-कर्म की विधि वर्णित है। दान, पूजा, व्रत आदि धार्मिक-कृत्यो का प्रमाण पूर्वक नियमोल्लेख हुआ है।

गयापत्तलक—मे गया सम्बन्धी श्राद्ध-विधि का विवरण है।

शैव सर्वस्वसार—शिवसिह की मृत्यु के अधिक समय बाद महाराज पद्मसिह की रानी विश्वास देवी के समय मे इसकी रचना हुई है। इसमे शिव पूजा के विधान का परिचय दिया गया है। राजा भवसिह से लेकर विश्वास देवी के समय तक के राजाओं की यशोगाथा भी गाई गई है।

प्रमाण भूत पुराण संग्रह—में "शैवसर्वस्वसार" की उपासना-विधि के प्रमाणो का संग्रह है।

गंगावाक्यावली—मे गंगाजी में स्नान तथा उनके तट पर दान की महिमा वर्णित है। रानी विश्वास देवी की अनुमति से इसकी रचना हुई है।

दानवाक्यावली—को कवि ने महाराज नरसिह देव की रानी धीरमती को समर्पित किया है। इसके द्वारा उस समय के व्यावहारिक-जीवन का अच्छा

परिचय प्राप्त होता है। अनेक प्रकार के वस्त्रो का उल्लेख हुआ है। जैसे—सरोम, क्षौम, कौशेय, कुश, कृमिज, मृगलोमज, वृक्षत्वक्-सभव आदि।

दुर्गाभक्ति तरंगिणी—का आरंभ महाराज भैरवसिह की अनुमति से कवि ने किया था, पर समाप्ति महाराज धीरसिह के राज्यकाल मे हुई।

कीर्त्तिपताका—का निर्माण महाराज शिवसिंह के लिए हुआ। दोहा छन्द तथा गद्य का प्रयोग इसमे हुआ है। शंकर तथा गणेश की वन्दना के बाद प्रेम विषयक कविताएँ है। बीच मै शिवसिंह की कीर्त्ति का भी वर्णन है। इसके अतिरिक्त कुछ स्फुट रचनाये भी मिलती हैं।

महाकवि के लोक-प्रतिनिधित्व की दृष्टि से इन रचनाओ का महत्त्व स्पष्ट है। संस्कृतज्ञ विद्वानो मे भी इससे इनकी प्रतिष्ठा उपेक्षित नही होने पाई है। साथ ही धर्म-तत्व-चिन्तनशीलता के कारण जीवन के विलास का अन्धकारमय-दृश्य-दर्शन कराते समय भी इनकी आराधना-निष्ठा सर्वथा विलुप्त नही होने पाई है। अपनी आराधना-बुद्धि की प्रबुद्धता के लिए विद्यापति ने ३०९ लक्ष्मणाब्द मे राज बनैली मे अपने हाथ से "भागवत" की प्रतिलिपि तैयार की। संयम और साधना के कारण ही इनको दीर्घायुष्य की उपलब्धि हुई है। धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, कलात्मक सभी ओर से इनकी प्रबुद्ध प्रतिभा का परिचय मिलता है। परम भाव योगी होते हुए भी ये उत्कट कर्मयोगी थे। उस समय मिथिला मे अनेक जन भाषा के कवि तारक-गण की भाँति इनकी कीर्ति कौमुदी की शोभा बढा रहे थे।

उत्तरकालिक-काव्य-धारा
पर
कवि विद्यापति का प्रभाव

जीवन प्रवाह के पूर्ण-द्रष्टा युग-प्रवर्त्तक कवि की कल्पना जीवन-सौन्दर्य का जिस रूप मे प्रत्यक्ष कराती है, उत्तर काल के कवि उससे अनुप्राणित हो, यह स्वाभाविक ही है। युग की जिन परिस्थितियो मे विद्यापति की प्रतिभा का उन्मेष हुआ था, उन परिस्थितियो मे रचना करने वाले उसकी अनुवर्त्तिता को तिरस्कृत कदापि नही कर सकते थे। कविवर विद्यापति ने यद्यपि साहित्य-शास्त्र-संबन्धी किसी लक्षण-ग्रन्थ का प्रणयन नही किया, पर उत्तरकाल के संस्कृत-साहित्य की प्रवृत्तियो और मान्यताओ से वे पूर्णतया परिचित थे, यह उनकी पाडित्य पूर्ण कला के अनुशीलन से भली भाँति स्पष्ट हो जाता है। कविवर सूरदास ने विषय-वस्तु और शैली मे वात्सल्य-रस की अनुपम-माधुरी भर कर भक्तिभाव की तन्मयता मे कोमल-कल्पना के चूडान्त चमत्कार का परिदर्शन कराया। राधा को परकीया के रूप मे न रख कर स्वकीया के रूप मे उन्होने उपस्थित किया, पर सूरदास के बाद वात्सल्य भक्ति का पक्ष दबता गया और स्वकीया के स्थान पर परकीया प्रेम के उन्माद का वेग बढता गया। कविवर नंददास ने रूप-मजरी, विरह-मजरी आदि के द्वारा नख-शिख, नायिका-भेद का निरूपण आरम्भ कर दिया। विद्यापति की अभिव्यंजन-शैली, धर्म-निष्ठा और शिव-भक्ति को तो लोगो ने नही अपनाया, पर उनके राधा-माधव-विलास की शृंगारिक-रुचि का प्रायः सभी ने अभिनन्दन किया। काव्य का काम-शास्त्र, सामुद्रिक-शास्त्र आदि की ऐहिक भोग-वृत्तियो से मिलन हुआ। राधा-कृष्ण के प्रति ईश्वरत्व की भावना उनके ऐहिक विलास का निरूपण करते हुए भी तिरोहित नहीं हुई—

राधा-नागर लाल कौ, जिन्हें न भावत नेह।
पारियौ मुठी हजार दस, तिनकी आँखिन खेह। "मतिराम"
आगे के कवि रीझिहैं तौ कविताई नतु,
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है। "दास"

नख-शिख-वर्णन—कविवर केशवदास से लेकर मतिराम, बिहारी, देव, घनानन्द, पद्माकर आदि रीति-युग के कवियो मे शृंगार की ही प्राधनता दिखाई देती है और शृंगार के आश्रय तथा आलवन के रूप मे राधा-कृष्ण की सर्वत्र झाँकी दिखाई देती है। नायिका-भेद की अनुरूपता के साथ शृङ्गार-रस की विविध परिस्थितियो का दृश्य-दर्शन कराया गया है। एक ओर शुक्लाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका, खडिता आदि अनेक प्रकार की नायिकाओ की विलास-रुचि का परिचय मिलता है, दूसरी ओर नारी की रूप-माधुरी का आकर्षण भरने के लिए उसके शारीरिक अवयवो की अपूर्वता का प्रत्यक्ष कराया गया है।

मुगल-काल तक आते-आते मुस्लिम-शासन बाहरी-शान-शौकत और ऐय्याशी के अनुकूल बहुलाश में शान्तिमय हो गया था। अकबर के दरबार मे लोकभाषा के कवियो को जब संमान मिलने लगा, तब भोग-विलास मे डूबे हुए देश के राजा-महाराजाओ की बेहोशी मे मनोरंजन का साधन राजाश्रित-कवियो ने प्रस्तुत किया। इसलिए विद्यापति की "सुरसा" भाषा के रस का उपभोग सभी ने किया। विपरीत-रति का चित्र अकित करते समय कविवर विद्यापतिने नारी के आभूषणो की ध्वनि का परिचय कराया है, कविवर बिहारीलालने भी विपरीत-रति का दृश्य-दर्शन कराते समय आभूषण की ध्वनि की ओर सकेत किया है। उदाहरण के लिए ये पक्तियाँ विचारणीय हैं:—

किंकिनि किनि किनि ककन कन कन
घन घन नूपुर बाजे।
रति-रन मदन पराभव मानल
जय-जय डिमडिम बाजे।

विपरीत-रति के समय किंकिणी (करधनी) का "किन-किन", कंकण का "कन-कन" और नूपुर का "घन-घन" शब्द हो रहा है। जान पडता है, रति रूपी युद्ध मे हारे हुए कामदेव के विरुद्ध जय की भेरी बज रही है। बिहारी की नायिका कि सखियाँ आपस मे कह रही है:—

परयौ जोरु विपरीत-रति, रुपी सुरत-रन धीर।
करति कुलाहल किंकिनी, गह्यो मौन मंजीर।

मेरी सखी का प्रतिद्वन्ती पराजित (नीचे आ गया) हो गया है, वह सुरति रूपी युद्ध मे गंभीरता पूर्वक डॅटी हुई है। नायिका के पक्ष की विजयिनी करधनी कोलाहल कर रही है और प्रतिद्वन्दी नायक के पक्ष के मंजीर ने मौन-धारण कर लिया है। स्पष्ट है, कि विद्यापति केवल कवि ही नही, किन्तु संगीत के मर्मज्ञ

गायक हैं, उनकी स्वर-झकृति प्रत्यक्षर में रसमंदाकिनी बन कर तरङ्गित हो रही है।

कविवर विद्यापति ने विरहिणी राधा की साधनामयी-महायोगिनी के रूप मे झाँकी दी है। कविवर देव ने विरहिणी की आँखो को योगिनी के रूप में इस प्रकार साधना-शील दिखाया है:—

> बरुनी बघंबर में गूदरी पलक दोऊ,
> कोएँ राते बसन भगोहैं भेष रखियाँ।
> बूड़ी जल ही में दिन यामिनिहूँ जागैं भौहैं,
> धूम सिर छायो, विरहानल बिलखियाँ।
> अँसुआ फटिक माल, लाल डोरी सेल्ही पैन्हि,
> भई हैं अकेली तजि चेली संग सँखियाँ।
> दीजिए दरस देव कीजिए सँयोगिनि ए,
> जोगिनि ह्वै बैठी हैं वियोगिनि की अँखियाँ।

रूप-सृष्टि—नारी की रूपमाधुरी की अपूर्वता का जिस प्रकार अनुपम दृश्य कवि विद्यापति ने अकित किया है, रीति-काल की कवि-परम्परा मे भी नारी की रूप-सृष्टि का उसके अनुरूप ही दृश्य-दर्शन मिलता है। कविवर बिहारी लाल ने नायिका की अनुपम-सुछबि का परिचय देने के लिये कहा है:—

> लिखन बैठि जाकी सबी,
> गहि गहि गरब गरूर।
> भये न केते जगत के,
> चतुर चितेरे कूर।

राधा के मधुर-हास्य की अनुत्तमता पर मुग्ध हो कविवर केशवदास ने अपनी संदेह-सृष्टि की चमत्कृति का कितना मार्मिक प्रत्यक्ष कराया है:—

> किधौ मुख कमल ये कमला की ज्योति होति,
> किधौ चारु-मुख चन्द्र-चन्द्रिका चुराई है।
> किधौ मृगलोचनि मरीचिका मरीचि किधौ,
> रूप की रुचिर रुचि सुचि सों दुराई है।
> सौरभ की, सोभा की दसन घन-दामिनी की,
> केशव चतुर चित ही की चतुराई है।
> एरी गोरी, भोरी तेरी थोरी-थोरी हाँसी मेरी,
> मोहन की मोहिनी कि गिरा की गोराई है।

देह-द्युति तथा शरीर के सुवास के साथ नायिका की सुकुमारता का युग की विलास-प्रिय रुचि के अनुरूप ही प्रत्यक्ष केशवदासजी ने कराया है:—

दुरिहै क्यो भूषन बसन दुति जोबन की,
देह हूँ की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाहक सुवास लागे ह्वै है कैसी केशव,
सुभावती की बास भौंर भीर फारे खाति है।
देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरति हूँ,
लालन के दृग देखिबे को ललचाति है।
चालिहै क्यों चन्द्रमुखी कुचन के भार भए,
कचन के भार ही लचकि लंक जाति है।

सुकवि मतिराम ने नारी की नव-नवोन्मेष-शालिनी सुषमा का इस प्रकार साक्षात्कार कराया है:—

कुंदन को को रँगु फीको लगै, झलकै अति अङ्गनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि चितौन में, मंजु बिलासनि की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहो, मतिराम लहैं मुसकानि मिठाई।
ज्यो ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यो-त्यों खरी निकरै सी निकाई।

नारी की रूप माधुरी की झाँकी दिखाने मे पद्माकर की कल्पना बड़ी मनोहारिणी है .—

छाजति छबीली छिति छहरि छरा कौ छोर,
भोर उठि आई केलि मदिर के द्वार पर।
एक पग भीतर सु एक देहरी पै धरै,
एक कर कंज एक कर है किवार पर।

प्रेम की पीर का गान करने वाले कविवर घनानन्द जी ने भी नारी की रूप-सृष्टि का नख-शिख वर्णन के अनुरूप ही प्रत्यक्ष कराया है, नायिका के नेत्रो से उनका हृदय घायल होकर इस प्रकार अपनी स्थिति का परिचय दे रहा है—

पैने नैन तेरे से न हेरे, मै अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लिए, छाती पै रहैं चढ़े।

नायिका के कटि-प्रदेश का आकर्षण दृश्य भी इस प्रकार है:—

चलल चित चौरै मुरि मनहि मरोरै सुठि,
सुभग सुदेश अलबेली तेरी लाँक है।

रीतिकालीन प्रतिनिधि कवियो के इन कतिपय उद्धरणो मे यह स्पष्ट हो जाता है, कि विद्यापति की कला का वक्तव्य, वातावरण और शैली की नूतनता के साथ प्रवर्तन का आलोक बन कर दिखाई देता है। भारतेन्दु एवं जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की कला मे भी 'चाकर गुनीजन को, गुलाम राधारानी को, का स्वर ही रूप-वैभव की अभिनव-सुषमा के साथ सुलभ होता है।

खडी बोली के छायावादी कवियो मे रूप-सृष्टि के विलास का पक्ष उभरा हुआ दिखाई देता है। 'निराला' जी की 'जुही की कली' प्रसाद की कामायनी की श्रद्धा-रूप-माधुरी, पन्त की 'भावी पत्नी के प्रति' आदि कल्पना की किरणें काव्योपवन की शोभा बढा रही हैं। नख-शिख की भाँति ही नायिका-भेद की परम्परा का भी, 'दशरूपक' 'रसमंजरी' आदि संस्कृत ग्रन्थों के प्रेरणा-स्रोत का समादर करने वाली उत्तरकाल की संस्कृत-भाषा की कल्पनाविभूति के रूप मे हिन्दी के आदिकाल से ही हमे परिचय मिलने लगता है। नारी की विविध-परिस्थितियो की कल्पना विभूति का हिन्दी के कवि विद्यापति आदिकाल से ही हमे परिचय कराते हैं। नारी की विविध-परिस्थितियो की रागात्मिका-प्रवृत्तियो का सम्बर्धन दूती के माध्यम से होता है। कभी कभी दूती का कार्य सखी भी सम्हालती है। विद्यापति की इस कला का अनुवर्त्तन रीतिकालीन कवियो ने यथेच्छ किया है। विद्यापति और सूरदास से जो नायिका-भेद-निरूपण की परिपाटी चलती है, वह नन्ददास की रसमंजरी, रहीम के "बखैनायिका-भेद" कृपाराम की "हिततरगिणी" आदि के द्वारा काव्याभिव्यंजन का स्वीकरणीय विषय बन गई है। रीति-काव्य-धारा के मूर्द्धन्य प्रतिनिधि कवियो ने नायिका-भेद का आश्रय-लेकर शृङ्गार का पल्लवन किया है।

विरह-व्यंजना—लौकिक-शृगार के वियोग-पक्ष के निरूपण मे हृदय की वृत्तियो की जैसी निसर्ग-प्रभविष्णुता विद्यापति और सूरदास मे मिलती है, उसकी अभिव्यजना, उत्तरकाल मे अरबी, फारसी के साहित्य से अनुप्राणित होकर नूतन चमत्कार विधायिनी बन गई है। विरह-जन्य-ताप की बाह्य-प्रकृति के नाप-जोख आदि पर कवियो की दृष्टि अधिक गई है। बिहारी, मतिराम आदि ने जहाँ विरहिणी की कृशता का परिचय कराया है अथवा उसके मानसिक ग्लानि की प्रतीति करायी है, वे स्थल स्वाभाविक मार्मिकता से युक्त हैं:—

कर के मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाय।
सदा समीपिनि सखिनहूँ नीठि पिछानी जाय।

यह बिहारी की विरहिणी है। कवि घनानन्द की अन्तर्व्यथा का दृश्य करुणा की मर्म-वेदना से सहज हृदयद्रावक है:—

लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तोसौं,
जगी है विकलताई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड़्यौ सो डोलै, हियरा धक्योई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।

आधुनिक काव्य-धारा के कवियो को भी यह अन्तर्व्यथा कसक उभाडती दिखाई देती है। "प्रसाद जी की विरहिणी कहती है—

वेदना विकल फिरि आई, मेरी चौदहो भुवन में।
सुख कही न दिया दिखाई, विश्राम कहाँ जीवन में।

कवयित्री महादेवी का हृदय भी प्रिय की प्रतीक्षा मे उद्विग्नता का अनुभव कर रहा है—

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
मुसकाता सकेत भरा नभ,
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं?

हिन्दी के आदि काल से ही पुरुष नारी की रूप-माधुरी पर सहज ही आत्म समर्पण करता आ रहा है। 'गीत-गोविन्द' तथा "सूर-सागर" मे कृष्ण पर राधा के शासन का अधिकार हमे आरम्भ मे ही मिल जाता है। विद्यापति के कृष्ण भी राधा के चरणो पर झुक जाते हैं। जायसी के रत्नसेन पद्मावती के रूपवैभव का समाचार सुनकर सब कुछ त्यागकरे योगि-वेष धारण कर लेते हैं। रसखान भाव मे तन्मय होकर कहते हैं :—

देख्यौ दुरयौ वह कुंज कुटीर में,
बैठ्यौ पलोटत राधिका-पॉयन।

बिहारी की राधा भी "पायन पारयो प्यौरु" (पॉव पर प्रिय को झुका लिया) का ही दृश्य उपस्थित करती है। बिहारी का यह विश्वास है कि—

"जा तन की झॉई परै, स्याम हरित दुति होय।"

देव की राधा भी आदिशक्ति के रूप मे ही दिखाई देती है:—

"आरसी से अम्बर में, आभासी उज्यारी लागै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द।"

भारतेन्दु एवं रत्नाकर की भाव-मूर्ति भी यही है। प्रसाद की 'कामायनी' के 'मनु' श्रद्धा के रूप-वैभव की तन्मयासक्ति मे मुखर दिखाई देते हैं :—

आज लेलो चेतना का, यह समर्पण दान।

विश्व रानी सुन्दरी, नारी जगत का मान।

जीवन के अन्त तक श्रद्धा का अवलम्ब ही मनु की कृतार्थता का आधार बनता है, जब वे कहते हैं :—

"साहस छूट गया है मेरा,
निःसम्बल भग्नाश पथिक हूँ।

इस प्रकार नारी की रूप-माधुरी विजयिनी ज्योति के रूप मे भारतीय-जीवनाकाश को ज्योतित करती हुई हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल से आधुनिक-युग तक कविवर विद्यापति की लोक-प्रवर्त्तिनी-प्रतिभा का स्पष्ट परिचय देती है।

नारी-विरह के निरूपण मे प्रकृति का उद्दीपनमय रूप विद्यापति की भाँति ही उनके परवर्त्ती-कवियो ने भी दिखाया है। नन्ददास की विरहिणी से ही इस दृश्य का परिचय प्राप्त किया जा सकता है:—

परजर उठत सरीर सब, चोवा-चन्दन लागि।
विधि गति जब विपरीत तब, पानी हूँ में आगि।

कविवर केशवदास की कल्पना की चमत्कृति ब्रज विरहिणी की पावस-कालिक अन्तर्दशा का इस प्रकार दर्शन कराती है :—

घोर घने घन घोरत सज्जल उज्वल कज्जल की रुचि राचैं।
फूले फिरे इभ से नभ पाइक सावन की पहिली तिथि पाँचैं।
चौहूँ कुघा तड़िता तड़पै डरपै बनिता कहि केशव साँचै।
जानि मनों ब्रजराज बिना ब्रज ऊपर काल कुटुम्बिन नाचै।

कविवर सेनापति ने भी विरहिणी की उद्दीपनता-वृद्धि मे प्रकृति की उत्तेजना का सुन्दर दृश्य अङ्कित किया है :—

जौ ते प्रान प्यारे परदेस को पधारे तौ ते,
विरह तै ऐसी भई ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहि कमलनैनी,
सेनापति अनमनी बैठियै रहति है।
कागहिं उड़ावैं कौहू-कौहू करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि के बासर गनति है।

पढ़ि-पढ़ि पाती कौहू फेरि कै पढ़ति कौहू,
प्रीतम को चित्र में सरूप निरखति है।

प्रकृति की उद्दीपनता मे "घनानद" की विरहिणी मरण-वरण का सकल्प भी स्वीकार करती हैं—

मुरझाने सबै अङ्ग, रह्यौ न तनक रंग,
बैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना।
इतै पै बसन्त सौ सहायक समीप याके,
महामतवारौ कहूँ काहू ते जु नयो ना।
तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै-लै,
बेधै मन को कपूत पिता-मोह-मयो ना।
पवन गवन संग प्राननि पठायहौ तौ,
जान घनऑनद को आवन जो भयो ना।

बिहारी, देव, पद्माकर आदि ने उद्दीपनशीलता का बहुश: दृश्य दर्शित किया है। पद्माकर की विरहिणी को वसन्त-कोकिला कसाइनि बनकर दिखाई देती है, उनके वसन्त ऋतु की यह व्यथा-पूर्ण झाँकी द्रष्टव्य है:—

ऐ ब्रजचन्द चलौ किन वॉ ब्रज लूकै वसन्त की ऊकन लागी।
त्यों पद्माकर पेखौ पलासन, पावक सी मनौ फूकन लागी।
वै ब्रजवारी विचारी वधू वनवारी हिये लौ सु हूॅकन लागी,
कारी कुरूप कसाइनै ये सु कुहु-कुहू क्वैलिया कूकन लागी।

किसी न किसी रूप मे आधुनिक युग तक विरह-वर्णन की यह परम्परा ब्रज-भाषा तथा खड़ी-बोली के दोनो विधाओ के निर्माताओ मे गृहीत दिखाई देती है।

"साकेत" की उर्मिला रात्रि-कालीन सन्तप्तता का परिचय सखी को करा रही है:—

बता अरी अब क्या करूँ, रुपी रात से रार।
भय खाऊँ ऑसू पियूँ, मन मारूँ झखमार।

कविवर "प्रसाद" की विरहिणी को भी प्रकृति के दुर्दिन मे हीं ऑसू बहाना पड़ा है:—

झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरदमाला,
पाकर इस शून्य-हृदय को, सबने आ डेरा डाला।

निरालाजी ने विद्यापति के साहित्य का समुचित अनुशीलन किया है, उनकी अनेक रचनाओ मे मधुर-भाव की मर्म-स्पर्शिनी व्यजना हुई है।

अभिव्यजना-वैचित्र्य की दृष्टि से कवि विद्यापति की गीतात्मक पद शैली को उत्तर काल के कवियो ने चाहे भले ही न अपनाया हो, पर आलंकारिक-चमत्कृति से जिस प्रकार विद्यापति ने भाषा के माधुर्य की अपरिमित वृद्धि की है, उत्तर-काल के प्रायः सभी प्रतिभा-सम्पन्न कवियो ने अनुरूप प्रेरणा ग्रहण कर भाषा के आकर्षण एवम् प्रभाव को बढाया है। विद्यापति ने अपने युग-जीवन की अराजकता के समय अक्षर रस के अनुभव करने वालो के अभाव का अनुभव किया है। यह अक्षर-रस ही रीतिकाव्य का आधार है। वाणी के रस-प्रवाह की गुणात्मक-प्रतीति भावानुरूप अपूर्वता के कारण काव्याभिव्यजन का प्राण होती है। "रीतिरात्मा काव्यस्य" का यही रहस्य है। इस अभि-व्यंजन-वैलक्षण्य की व्यापकता के साथ वक्रोक्ति, ध्वनि, अलकार आदि काव्य के मूलतत्त्वो का समन्वय हो जाता है। "रीति-काल" शब्द मे रीति शब्द का प्रयोग इसी दृष्टि से हुआ है।

विद्यापति की इस अभिव्यंजन-चमत्कृति का प्रभाव सूर के काव्य मे ही नही, गोस्वामी तुलसी दास जी मे भी यत्र-तत्र दिखाई देता है:—

जहॉ-जहॉ नयन विकास।
तहि-तहिं कमल प्रकाश। (विद्या०)

अंकुर तपन-ताप यदि जारब, कि करब वारिद मेहे। (विद्या०)

जहॅ बिलोकु मृग-सावक नयनी।
जनु तहॅ बरिस कमल सित श्रेनी। (तु०)
का बरषा जब कृषी सुखाने। (तु०)

विद्यापति ने राधा के विरह का प्रत्यक्ष कराने के लिए कहा है:—

तिला एक लागि रहल अछि जीबे,
विन्दु सनेह बरइ जनि दीपे।

केशव दास ने सीता जी के विरह का दर्शन इस प्रकार कराया है:—

अपनी दसा कहा कहौ, दीप दसा सी देह।
जरत जाति बासर-निसा, केशव सहित सनेह।

राधा के स्वप्न-दर्शन की झॉकी विद्यापति ने इस प्रकार दी है:—

सुतलि छलहुँ हम घरबा रे, गरबा मोतिहार।
राति जखनि भिनसरबा रे, पिया आयल हमार।
कर कौसल कर कँपइत रे, हरबा उर टार।
कर पंकजें उर थपइत रे, मुखचन्द निहार।
केहनि अभागिलि बैरिनि रे, भागलि मोर नीद।
भल कए नहि पेखि पाओल रे, गुनमय गोविद।

इसी स्थिति की प्रतीति के लिए कविवर मतिराम का कला-कौशल देखा जा सकता है :—

आवत मैं सपने हरि को लखि नैसुक बाट सकोचनि छोड़ी।
आगे ह्वै आड़े भए "मतिराम" चली सुचितै चख लालच वोड़ी।
ओठनि को रस लेन को मोहन, मेरो गह्यो कर काँपति ठोड़ी।
और भटू न भई कछु बात, गई इतने ही मे नीद निगोड़ी।

इस प्रकार विद्यापति की युग प्रवर्त्तिनी प्रतिभा वैदर्भी-रीति की रस-पेशलता, भाषा की आलकारिक छटा की समन्विति से आधुनिकयुग तक कवि-कर्मियों का मार्ग-दर्शन कराती है। छायावादी कवियो ने सादृश्य-मूलक अलंकारो का समुचित उपयोग कर खडी बोली के आकर्षण को बढ़ाया है। उनकी सादृश्य-कल्पना रूप-गुण-क्रिया-साम्य तक ही नही, विद्यापति की भाँति अन्तर्प्रभाव-साम्य की सूक्ष्मता भी प्राप्त करती है।

कवि का सन्देश

कवि 'कान्तासमितयोपदेशयुजे' (आचार्य मम्मट—काव्य-प्रकाश) मनोहरा नारी की अति, मधुर-उपदेश-ध्वनि समन्विति के रूप मे युग-प्रवर्तक सदेश एवं, उपदेश देने का मर्माधिकारी होता है। विनोद के बीच में भी जीवन का मर्म स्वर सुनाना कवि का ही काम है। आचार्य वामन ने ठीक ही कहा है:—

यथा दयितं गुरुमित्राद्यधीनमपि इतरजन-वैलक्षण्येन कटाक्षभुजक्षेपादिना सरसतामापाद्य स्वाभिमुखीकृत्य स्वस्मिन् प्रवर्त्तयति, एवं काव्यमपि सुकुमारमतीन् सुखिस्वभावान् नीतिशास्त्रपराङ्मुखान् राजकुमारादीन् ललितपदकदम्बकोपदर्शितशृङ्गारादि-रसेन मधुरपानादिना कटुकषायौषध-पान पराङ्मुखान् बालकानिव सदुपदेश-स्वरूपस्वार्थे प्रवर्त्तयति।

जिस प्रकार गुरु-मित्र आदि के अनुशासन मे रहते हुए भी प्रियतम को प्रियतमा अन्य-जनो से विलक्षणता के साथ आँख, हाथ आदि के द्वारा सरसता भर कर अपनी ओर आकृष्ट करती हुई अपनी इच्छा के अनुरूप प्रेरित करती है, उसी प्रकार काव्य भी कोमल बुद्धि, प्रसन्न मन, नीतिशास्त्र विरोधी राजकुमारादिको (सहृदयो) को, रमणीय पद समूह से प्रतीयमान शृंगारादि-रसो के लोकोत्तर आस्वादन द्वारा सदुपदेश के अनुरूप स्वार्थ मे वैसे ही प्रवृत्त करता है जैसे छोटे बालक को कडवी औषधि के स्थान पर मधुर-स्वाद के अनुभव द्वारा अनुकूल किया जाता है।

कविवर विद्यापति ने अपने इस कवि-सुलभ-अधिकार का सदुपयोग किया है। जीवन की सामाजिक तथा वैयक्तिक दोनो ही साधना-दृष्टियो का मर्म-प्रवाह विद्यापति की काव्य भाषा मे व्यक्त हुआ है। सामाजिक अधिकार भोग के लिये पुरुषत्व की गौरव-स्मृति का उद्बोधन करते हुये इन्होंने कहा है:—

सो पुरिसओ जसु मानो सो पुरिसओ जम्स अज्जने सत्ति।
इअरो पुरिसाआरो पुच्छ विहूना पसू होइ।

पुरुष वही है, जिसका सम्मान हो। पुरुष वही है, जो धनोपार्जन मे समर्थ हो, और लोग तो पुरुष के आकार के पशु हैं। भेद केवल इतना ही है, कि उनके पूँछ नही होती। पुरुषत्व-प्रयोग-शून्य जीवन के प्रति यह मार्मिक व्यग है। पशु भाव वृद्धि से बढने वाली देश की राजनैतिक पराधीनता के सुविधा-भोग-लाभ की नीति को कवि ने गर्हित कहा है:—

मान विहूना भोअना सत्तुक देब्बेल राज।
सरण पइट्ठे जीयना, तीनू काअर काज।

समानहीन भोजन, शत्रु-प्रदत्त-राज-भोग तथा शरणागति की जीविका ये कायरता के निन्दनीय कर्म है। इसलिये पुरुषत्व के गौरव वृत्त की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए इन्होने लिखा है कि:—

पुरुष हुअउँ बलिराए जासु कर कन्न पसारिअ।
पुरुष हुअउँ रघुतनअ जेन बले रावण मारिअ।
पुरुष भगीरथ हुअउँ जेन निज कुल उद्धरिउँ।
परसुराम अरु पुरिस जेन खत्तिअ खअ करिअउँ।

राजा बलि पुरुष थे, जिनके आगे कृष्ण ने हाथ पसारा। राम पुरुष थे, जिन्होने शक्ति से रावण का सहार किया। पुरुष भगीरथ थे, जिन्होने अपने कुल का उद्धार किया और पुरुष परशुराम थे, जिन्होने क्षत्रियो का नाश किया। पुरुपत्व के आत्मसम्मान को सामाजिक विभूति के रूप मे दिखाते हुये इन्होने वीर-पुरुष का परिचय इस प्रकार दिया है —

कित्तिलद्ध सूर संग्राम, धम्म पराअण हिअअ, विपयकम्म नहु दीन जंपइ।
सहज भाव सानन्द सुअण भुजइ जासु संपइ, रहसे दब्ब दये विस्सरइ।
सत्ते सरुअ सरीर। एत्ते लक्खन लक्खिअइ पुरुप पसंसब्बो वीर।

जिसने कीर्त्ति को प्राप्त किया हो, संग्राम में जो शूर हो, जिसका हृदय कर्मपरायण हो, विपत्ति मे भी जो दीन वाणी न बोले। सुजन जिसकी सम्पत्ति का आनन्दपूर्वक सहज भाव से भोग करे। जो गुप्त दान दे, वीर समझ कर उसकी प्रशंसा करता हूँ। अपने चरित नायक कीर्त्तिसिह के राष्ट्रीय गौरव भाव की व्यंजना इस प्रकार की है:—

दाने दलब्बो दारिद्द न भुण नहि अष्खर भासब्बो।
याने पाट वरु करब्बो न भुण निअ सत्ति पआसब्बो।
अभिमान जब्बो रष्खब्बो जीव सब्बो
नीच समाज न करब्बो रति।
ते रहउँ कि जाउँ कि रज्ज मम।

दान से दारिद्र्य का दमन करूँगा, किन्तु याचक से 'नही' न कहूँगा। युद्ध यात्रा मे कौशल दिखाऊँगा, शक्ति की हीनता न होने दूँगा, अपने अभिमान की रक्षा करके जीते जी नीच जन की संगति नही करूँगा। राज्य

चाहे रहे, चाहे सब लुट जाये। इस प्रकार के धीर जीवन की उद्योगनीति पर अपने अडिग विश्वास को स्पष्ट करते हुए इन्होने लिखा है:—

अवसओ उद्दम लक्ष्मि बस, अवसओ साहस सिद्धि।
पुरुष बिअष्खण चञ्चलइ, त तं मिलइ समिद्धि।

अवश्य ही उद्योग मे लक्ष्मी निवास करती हैं और अवश्य ही साहस मे सिद्धि का स्थान है। कुशल पुरुष जहाँ जहाँ जाता है, वहाँ वहाँ उसे समृद्धि मिलती है।

ऐसे उद्योगशील गौरव-पुरुष का मर्म पशु भी समझ सकते है। वदान्य कीर्त्तिसिंह के घोडे अपने स्वामी के लिए कैसे मर्मानुरागी हैं, इसका परिचय इन पंक्तियो मे द्रष्टव्य है:—

समथ्थ सूर ऊरपूर चारि पाब्वे चक्करे।
अनन्त जुज्झ मम्म बुज्झि, सामि काज संगरे।

शक्तिशाली, वीर तथा पुष्ट जवे वाले घोडे चारो पैरो से चक्कर काटते थे। युद्ध मे स्वामी की कार्य-सिद्धि के लिए अनन्त युद्धो का मर्म समझते थे।

मानव के इस सामाजिक अस्तित्व के साथ उनका वैयक्तिक-रागात्मक अस्तित्व भी है। जो सर्वथा अतृतिमय है। जिसके सम्बन्ध मे कवि ने अपना अनुभव इस प्रकार स्पष्ट किया है:—

विद्यापति कह प्राण जुड़ाएल
लाखे न मिलल एक।

इसलिये इस सहज अतृप्ति की ज्वाला की सुखात्मक परिणति के लिए तपः संकल्प की दृढ़ता नितान्त आवश्यक है, जिसे प्रेमी अपने प्रिया के प्रति आसक्ति की अनन्यता मे पाता है।

दूर कर दुरमति कहलम तोए।
विनु दुख सुख कबहूँ नहि होए।

× + +

भनइ विद्यापति गाओल ना।
दुख सहि-सहि सुख पाओल ना।

इस दुःखात्मक स्वीकृति का कारण अनुराग निष्ठ अनन्यता ही है।

एहि संसार सार बथु एक, तिला एक संगम जाव जिव नेह।

भोग की सुविधा के क्षण में भी इन्द्रियों के क्षयोन्मुख अन्तः क्षोभ पर संयम आवश्यक है, क्योंकि :—

बड़हु भुखल नहि दुहु कर खाये।

प्रेम की अनन्य-निष्ठा में यदि शिथिलता आ जाय, तो उसे सँभालना उचित होता है :—

सबतहु सुनिये अइसन बेवहार।
पुनु टुटये पुनु गाँथिये हार।

स्वच्छन्द प्रेम की साधना यद्यपि अपने युग के बन्धन की उपेक्षा के कारण निन्दनीय होती है, पर प्रेमिका अपने आत्मसम्मान को विस्मृत न करे, यही उचित है। इसलिये राधा कहती हैं कि:—

कुलटा भये जदि पेम बढ़ाओल, ते जीवन की काज।

रूप-सौन्दर्य और गुणज्ञता नारी की बहुत बडी विभूतियाँ हैं, सौभाग्य से ही किसी को प्राप्त होती हैं :—

बड़ पुन गुनमति पुनमत पावे।
+ + +
गुनमति धनि पुनमत जन पावे।

प्रेम की साधना मे जीव को वैयक्तिक सुख की उपेक्षा भी करनी पड़ती है।

पेम क कारन जीउ उपेखिये,
जग जन के नहि जाने।

प्रेमी पुरुष का पुरुषत्व, बचन की दृढ़ता मे ही प्राप्त होता है। जिसके संबंध मे कवि ने कहा है :—

पुरुब भानु जदि पछिम उदित
तइओ न विपरित सुजन पिरीत।

अथवा

सुपुरुष वयन विफल नहि होए।

सामाजिक समान के लिए आर्थिक-वैभव की महत्ता नितान्त वाछित है। पूँजीवादी व्यावसायिकता के युग मे धन ही व्यक्ति के समान का एक मात्र आधार होता है। इसलिये उन्होने कहा है:—

धनिक क आदर सब ठॅह होय,
निरधन बापुर पुछए न कोय।

जिस प्रकार जलहीन तालाब को कोई नही पूछता, उसी प्रकार निर्धन की दशा होती है।

वारि बिहुन सर के ओ नहि पूछ।

संपत्ति रहते हुये भोग न करने वाले कृपण मनुष्य का सर्वथा उपहास ही होता है।

कृपन पुरुष केओ नहि निक कह,
जग भरि कर उपहास।
निजधन अछइत नहि उपभोगब,
केवल परहिक आस।

पर राजनैतिक गौरवाधिकार का उपभोग करते समय मैथुनिक आसक्ति की विरक्ति मे ही 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' के आदर्श की सार्थकता है। इसलिये कृष्ण जब राजनैतिक गौरवाधिकार से सत्कृत होते हैं, तब वे करुणामयी वियोगिनी राधा के ध्यान मे तन्मय होकर अपने मैथुनिक भावावेश का नियत्रण करते हैं और कहते हैं कि:—

आनि रमनि सयँ राज सम्पद मोय
आछिए जइसे विरागी।

जिस प्रकार कविता के सबन्ध मे अपनी अन्तर्दृष्टि का परिचय साहित्य-सम्राट तुलसीदास ने दिया है:—

निज कवित्त केहि लाग न नीका।
सरस होउ अथवा अति फीका।
जो पर भनिति सुनत हरषाही।
ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं।

उसी प्रकार कवि विद्यापति ने सहृदयता की ऊँचाई का परिचय देते हुए कहा है:—

अपन अपन गुन सबे सब तहँ सुन, निज काचहु कह हेम रे।
से पुन सबहुँ चाहि गरुबि गनिय महि, जे कर परक गुन-प्रेम रे।

कुसंगति के अनर्थ के प्रति कितनी घृणा है:—

सपनहुँ जनु हो कुपुरुष संग।

जिस प्रकार गोस्वामी जी ने मूर्ख का परिचय दिया है:—

"मूरख हृदय न चेत, जौ गुरु मिलहिं विरंचि सम।"

उसी प्रकार कवि विद्यापति ने हृदय-शून्य का परिचय दिया है:—

कते जतने उपजाइऐ गून, कहल न बूझए हृदय क सून।

अपने बड़ो पर दोषारोपण प्रत्यक्ष को कौन कहे, परोक्ष मे भी करना उचित नहीं है:—

साजनि की कहब कान्ह परोख,
बोलि न करिए बड़ा कॉ दोष।

जिस कार्य का परिणाम पहले नही सोच लिया जाता है, उसे करने से हानि उठानी पडती है:—

आगे गुनि जे काज न करए, पाछे हो पछताओ।

प्रतिज्ञा-पालन मनुष्य के बड़प्पन का सूचक होता है:—

"बड़ा क वचन कबहुँ नहिँ विचलय निसिपति हरिन उपामे।"
"जाब जीव प्रतिपालब बोल।"
"अपन वचन जे प्रतिपालय, से बड़ सबहुँ चाहि।"

शोभन पुरुष के लिए क्रोध का त्याग ही उचित है:—

'सुपुरुष भए नहि करिए रोषे।'

मनुष्य जीवन सृष्टि-प्रवाह का सर्वाधिक महनीय-वैभव है:—

भनइ विद्यापति रूप, हे सखि, मानुष जनम अनूप।

परोपकार ही मानव-जीवन को सार्थक तथा महान् बनाता है:—

"साजनि, ताक जीवन थिक सार,
जे मन दए कर पर उपकार।"
"से सम्पति जे पर हित लागि।"
"थिर जनु जानह ई संसार,
एक पए थिर रह पर उपकार।"
"भनइ विद्यापति सखि कह सार,
से जीवन जे पर उपकार।"

इस प्रकार विद्यापति ने नीतिमय-जीवन का अभिनन्दन काव्य की सूक्तियो के द्वारा स्थल-स्थल पर किया है।

जीवन मे सुख-दुख के संघर्ष के बीच सिद्धि की उपलब्धि धैर्य से होती है। इसलिए कवि ने धैर्य के लिए बार-बार आशामय आश्वासन दिया है:—

"जामिनि सुफले जाइति अवसान, धैरज धरु विद्यापति भान।"
"भनइ विद्यापति गाओल रे, धैरज धरु नारी।"
"अचिर मिलत हरि रहु धैरज धरि, सुदिने पलटत भाग।"
"भनइ विद्यापति सुनु वर नारी, धरु मन धैरज मिलत मुरारी।"

इससे यह स्पष्ट है, कि कवि विद्यापति पूर्णतया आशावादी कवि हैं। और इसी का अमृत पिलाकर उन्होंने जीवन को निष्क्रिय होने से बचाया है:—

"भनइ विद्यापति पुनु पहु आस, जावत रहत देह तिल सॉस।"

इस प्रकार इन महाकवि ने युग की सहज प्रवृत्तियो मे माधुर्याकर्षण का दिव्यभाव भरने के लिए नैतिक-आदर्श का मंगलमय सदेश दिया है। युग की सहज वासना का निरोध नही, किन्तु अनन्यानुराग का संयम ही उचित और सर्वजन सुलभ है। इसीलिये प्रेम के सासारिक पक्ष के साथ इन्होंने उसकी आध्यात्मिक-गभीरता का मार्मिक प्रत्यक्ष कराया है। इतना ही नहीं—किन्तु यह भी स्पष्ट है, कि भोग के बाद ही त्याग मे सप्राणता आती है: —

संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने। (गो० तुलसीदासजी)

उपसंहार—देश की राजनैतिक-एकता की विश्रृङ्खलता ज्यो ज्यो बढती गई और पराधीनता के नैराश्य का अन्धकार जन-जीवन की सहृदयता को हत-प्रभ करता गया, त्यो-त्यो काव्य मे मुक्तक रचनाओ का विस्तार होता गया और मर्मस्पर्शी प्रसंगोद्भावना तथा अभिव्यंजन-चमत्कृति को प्रभाव-वृद्धि का अवसर मिलता गया। "अमरुककवेरेकः श्लोकः प्रबन्ध शतायते" जैसी उक्तियो की प्रसिद्धि बढ़ने लगी। दूसरी ओर ऐतिहासिक-प्रबन्ध काव्यो की परम्परा चली, जिनमे सामयिक प्रतिनिधित्व की कल्पना तथा कवि के जीवन की विवशताओ का सुन्दर मेल था।

कवि विद्यापति ने मुक्तक-काव्य के नीति-श्रृङ्गार तथा वैराग्य की अभिव्यंजन-परम्परा को सत्य और शिव की सौन्दर्य मे परिणति देकर सहज राग-मयी, विश्वमानव-मनोहारिणी झंकृति प्रदान की है। कला और सगीत का जैसा अपूर्व-मिलन इन्होंने दिखाया है, वह हमारे देश के इतिहास के लिए सर्वथा अकल्पनीय उपहार है। नारी और पुरुष दोनो ही अपने सौन्दर्य की स्पर्धाओ मे अनुपमेय एवम् परम दिव्य हैं। कवि की रूप-सृष्टि आकर्षण की रागात्मक चारुता मे जितनी नैसर्गिक है, उतनी ही अपूर्व भी। इसीलिए वह बाल-चन्द्र की शिव के मस्तक पर देदीप्यमान, सहज विश्वमानस-हारिणी, वन्दनीया ज्योति है। नीति और वैराग्य के साथ श्रृगार का जैसा अनुत्तम-

समन्वय इन महाकवि ने किया है, वह विश्व-कल्पना की प्रयोगशाला मे सर्वाधिक वरेण्य है।

विलास और आराधना की परस्पर विरोधिनी स्पर्धाओ मे आराधना की करुणामयी-ज्योति ही विजयिनी दर्शित हुई है। संस्कृत-भाषा मे अपने जिस वैदुष्य तथा गौरव-भाव को कवि ने अभिव्यक्ति दी है, यौवन के अन्धकार-जन्य चरम-उन्माद की बेहोशी मे भी कवि का हृदय उससे आलोकित है। विलास वासना के स्वच्छन्द रागावेश तथा सामाजिक-मर्यादा-सापेक्ष संयम का रसमय स्वरानुसन्धान प्रकृति की मनोहारिणी-दृश्यमयता के साथ इन्होने किया है।

शैशव और यौवन की मनोहारिणी आँख-मिचौनी की दृश्यानुभूति से ही कवि की स्वर-लहरी आकर्षण की अनुपम चारुता के साथ तरंगित हुई है। सौन्दर्य की रेखाये जितनी प्राकृत हैं, उतनी ही अप्राकृत भी हैं। अन्धकार और प्रकाश के लोकोत्तर-प्रभाव की जैसी रसमयी व्यंजना है, नादानुकृति की वैसी ही रमणीय झकृति भी है। इसलिए सर्वत्र व्यक्ति की आत्मा विश्वात्मा के रूप मे आलोकित हुई है। भारतीय संस्कृति की भास्वर स्मृतियों की प्रतीति जगाती हुई भी कवि की कला अपने आकर्षण मे देश-काल की सीमाएँ पार कर सार्वभौम तथा चिरन्तन ज्योतिष्मती है।

ऐतिहासिक-प्रबन्ध-काव्यो मे शक्ति और सौन्दर्य की स्पर्धाओ के दृश्य तो मनोहर थे, पर लोकादर्श-प्रतिष्ठापक शील का प्रायः अभाव ही था। कवि विद्यापति की लोक मंगल-विधायिनी प्रबन्ध-रचना ऐतिहासिक-तथ्य की अनुरूपता रखते हुए भी चमत्कृति की मौलिकता की दृष्टि से सर्वथा निरुपम है। रसात्मक-व्यंजना हृदय-स्पर्शिनी है।

इस प्रकार "सुअन पससइ कव्व मज्झु" यह कवि की उक्ति सर्वथा सार्थकतापूर्ण है। हिन्दी के आदिकाल मे आदिकवि के रूप मे विद्यापति की उपलब्धि "वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्" की भाँति "वन्दे मैथिल-कोकिलम्" की श्रुति झकृत करती है।